रामायणगत वैदिक सामग्री
एक समालोचनात्मक अध्ययन

[हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय द्वारा पी एच० डी०
उपाधि क लिए स्वीकृत शोध प्रबध]

डॉ० सतीश कुमार शर्मा 'आंगिरस'
आचाय वेद एव साहित्य' एम० ए०, पी एच० डी० स्वणपदक प्राप्त

दिल्ली-110032

प्राक्कथन

वाल्मीकिकृत 'रामायण संस्कृत-साहित्य का आदिकाव्य है। यह काव्य वदिक साहित्य तथा लौकिक साहित्य के मध्य सयोजक के समान है। अत इसमे वदिक सामग्री, सकता एव आप प्रयोगो की उपलब्धि स्वाभाविक ही है। रामायण' का अध्ययन सामाजिक, सास्कृतिक राजनतिक तथा भाषिक दृष्टि से हो चुका है। अभी तक रामायणगत वदिक सामग्री का अध्ययन नही हुआ था। पी-एच० डी० (संस्कृत) की उपाधि के लिए स्वीकृत रामायणगत वदिक सामग्री एक समालोचनात्मक अध्ययन नामक शोध प्रबन्ध म इसी दृष्टि से इस महनीय काव्य का आलोडन किया गया है।

यह अध्ययन मुख्यत रामायण के 'प्राच्यविद्या मन्दिर बडौदा' के सस्करण पर आधृत है। जहा मसूर विश्वविद्यालय तथा निणय सागर प्रेस क सस्करण व्यवहृत हैं वहा उल्लेख कर दिया गया है। 'रामायण की गोविन्द राजकृत 'भूषण टीका वष्णव सम्प्रदाय की मान्यताओ के आधार पर रचित है। कुछ टीकाकारो ने इसे प्रमाण रूप म उद्धृत भी किया है। इस प्रकार इसकी अधिक प्रमाणिकता के कारण इस प्रस्तुत प्रबन्ध म उद्धृत किया गया है। इसके अतिरिक्त 'तिलकटीका तथा अमतकतकटीका का उपयोग भी उचित स्थलो पर हुआ है। अत्यन्त प्रसिद्ध माधवयोगाकृत अमतकतकटीका वाला सस्करण अद्यावधि कवल 'किष्किन्धा-काण्ड पय त ही मसूर विश्वविद्यालय से प्रकाशित हुआ है। इसका प्रयोग उचित स्थलो पर किया गया है। हिन्दी टीकाओ म श्री पाद दामोदर सातवलेकर तथा चतुर्वेदी द्वारका प्रसाद शर्मा द्वारा कृत टीकाएँ सहायक रही हैं। वदिक साहित्य के अतिरिक्त महाभारत' तथा पुराणो से प्रमाण उद्धृत किए गए हैं।

विषय प्रतिपादन की सुविधा की दृष्टि स प्रस्तुत शोध प्रबन्ध आठ अध्यायो म विभक्त किया गया है। 'रामायण तथा वेद नामक प्रथम अध्याय म 'रामायण का रचना काल, 'रामायण म प्रक्षिप्त अश रामायणगत वेद वाचीविविध शब्द, 'वद-लक्षण, वेदत्रयीचतुष्टयत्व, 'वदो की शाखाए तथा वदोत्पत्ति विषयो पर विचार किया गया है। वदिक-साहित्य स सम्बद्ध रामायणगत विवरण नामक द्वितीय अध्याय म 'सहिता', 'ब्राह्मण, आरण्यक', उपनिषद' तथा 'वेदाग विषयक साहित्य से सम्बद्ध रामायणगत विवरण प्रस्तुत किया गया है। रामायण म वर्णित

वैदिक देवता' नामक तृतीय अध्याय रामायणगत वर्णनों के आलोक में 'देवोत्पत्ति', 'देवसंख्या', 'देवों', 'देवगणों', 'पितृदेवों', 'स्त्रीदेवताओं', 'अप्सराओं', 'गन्धर्वों' और 'असुरों', राक्षसों तथा पिशाचों का विवेचन प्रस्तुत करता है। 'रामायण में वर्णित वैदिक ऋषि' शीर्षक चतुर्थ अध्याय में ऋषितत्त्व के संकेत के पश्चात् रामायण में वर्णित ऋषियों का वर्णन किया गया है। 'रामायणगत वैदिक आख्यान' नामक पंचम अध्याय में देवसम्बन्धी, ऋषिसम्बन्धी तथा इतर आख्यानों का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। 'रामायण में वर्णित वैदिक यज्ञ-याग' नामक षष्ठ अध्याय श्रौतयज्ञों, गृह्ययज्ञों और इष्टियों से सम्बद्ध विवरण प्रदान करता है। 'रामायणगत आर्ष प्रयोग' नामक सप्तम अध्याय में नाम, कृदन्त, आख्यात तथा सन्धि से सम्बन्ध अपाणिनीय प्रयोगों पर विचार किया गया है। अष्टम अर्थात् अन्तिम अध्याय में शोध प्रबन्ध की उपसंहृति प्रस्तुत की गई है। शोध प्रबन्ध के अन्त में 'ग्रन्थ-सूची' में सहायक ग्रन्थों तथा लेखों की सूची दी गई है।

इस शोध प्रबन्ध में प्रस्तुत रामायणगत वैदिक सामग्री के आलोचनात्मक अध्ययन से निश्चय ही रामायण के एक महत्त्वपूर्ण पक्ष का उद्घाटन होगा। इससे वैदिकोत्तर संस्कृत साहित्य में प्रवाहमान वैदिक परम्परा भी अवलोकित होगी।

मैं अपने शोध निर्देशक परमादरणीय डॉ० मानसिंह जी प्रोफेसर एवं अध्यक्ष संस्कृत विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला का अत्यन्त आभारी हूँ जिनके विद्वत्तापूर्ण निर्देशन में मैं प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को पूर्ण कर सका। जिन विद्वानों के ग्रन्थों अथवा लेखों से मुझे इस शोध प्रबन्ध के प्रणयन में सहायता प्राप्त हुई है उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन मेरा पुनीत कर्तव्य है। इसके पश्चात् मुझ पर डॉ० गोकुल चन्द्र शर्मा 'आंगिरस' अध्यक्ष संस्कृत विभाग, महाविद्यालय सरस्वती नगर (शिमला) का ऋण भी कम नहीं जो बाल्यकाल से अब तक संस्कृताध्ययन के क्षेत्र में सतत प्रेरणा का स्रोत बने रहे हैं। मेरे परम मित्र तुलसी रमण और प्रकाशक श्री हरीश कुमार शर्मा के सहयोग से इस ग्रन्थ का प्रकाशन सम्भव हो सका है। इसलिए इन दोनों का अनुगृहीत एवं उपकृत हूँ।

—सतीश कुमार शर्मा 'आंगिरस'

सकेतिका

1 ग्रन्थ

अ०	अष्टाध्यायी	कू०पु०	कूर्मपुराण
अ०को०	अमरकोश	कृ०भा०भू०	कृष्णयजुर्वेद भाष्य भूमिका
अ०पु०	अग्निपुराण	कौ०सू०	कौशिकसूत्र
अ०भा०भू०	अथर्ववेदभाष्यभूमिका	ग०पु०	गरुडपुराण
अ०शा०	अभिज्ञान शाकुन्तल	गो०ब्रा०	गोपथ ब्राह्मण
अथर्व०	अथर्वसहिता	गौ०ध०सू०	गोतमधर्मसूत्र
आ०गृ०सू०	आश्वलायन गृह्यसूत्र	छा०उ०	छान्दोग्योपनिषद
आ०ध०सू०	आश्वलायन धर्मसूत्र	ज०उ०ब्रा०	जमिनीयोपनिषद्ब्राह्मण
आ०श्रौ०सू०	आश्वलायन-श्रौतसूत्र	ज०सू०	जमिनीयमीमासासूत्र
आप०गृ०सू०	आपस्तम्ब गृह्यसूत्र	ता०ब्रा०	ताण्डय ब्राह्मण
आप०ध०सू०	आपस्तम्ब धर्मसूत्र	त०आ०	तत्तिरीयारण्यक
आप०य०परि०	आपस्तम्ब यज्ञपरिभाषा	त०उ०	तत्तिरीयोपनिषद
आप०श्रौ०सू०	आपस्तम्ब श्रौतसूत्र	त०ब्रा०	तत्तिरीय ब्राह्मण
ऋ०	ऋक्सहिता	त०स०	तत्तिरीय-सहिता
ऋ०प्रा०	ऋग्वेद प्रातिशाख्य	ना०पु०	नारदीयपुराण
ऋ०प्रा०व०	ऋग्वेद प्रातिशाख्य वर्गद्वयवृत्ति	ना०शा०	नाटय शास्त्र
		नि०	निरुक्त
ऋ०भा०भू०	ऋग्वेदभाष्यभूमिका	प०ब्रा०	पर्चविश ब्राह्मण
ऋ०सर्वा०	ऋक्सर्वानुक्रमणी	प०पु०	पद्मपुराण
ऐ०आ०	एतरेयारण्यक	पा०गृ०सू०	पारस्कर गृह्यसूत्र
ऐ०उ०	ऐतरेयोपनिषद	पा०शि०	पाणिनीयशिक्षा
ए०ब्रा०	एतरेय-ब्राह्मण	पु०पु०	पुरुषोत्तम पुराण
का०गृ०सू०	काठक गृह्यसूत्र	ब्र०पु०	ब्रह्मपुराण
का०श्रौ०सू०	कात्यायन-श्रौतसूत्र	ब्रह्मा०पु०	ब्रह्माण्डपुराण
का०स०	काठक-सहिता	बृ०उ०	बृहदारण्यकोपनिषद्

ब०जा०	बृहज्जातक
ब०दे०	बृहद्देवता
बौ०ग०सू०	बोधायन गृह्यसूत्र
बौ०ध०सू०	बोधायनधर्मसूत्र
भा०पु०	भागवतपुराण
म०पु०	मत्स्यपुराण
म०स्म०	मनुस्मृति
महा०	महाभारत
मा०पु०	मार्कण्डेयपुराण
मु०उ०	मुण्डकोपनिषद
मु०चि०	मुहूर्त चिन्तामणि
म०स०	मैत्रायणी संहिता
या०स्म०	याज्ञवल्क्यस्मृति
या०शि०	याज्ञवल्क्यशिक्षा
रा०	रामायण
ल०शे०	लघुशब्देन्दुशेखर
ला०श्रौ०सू०	लाटायनश्रौतसूत्र
लि०पु०	लिंगपुराण
व०ध०सू०	वसिष्ठधर्मसूत्र
व०पु०	वराहपुराण
वा०प०	वाक्यपदीय
वा०पु०	वायुपुराण
वि०पु०	विष्णुपुराण
वे०ज्यो०	वेदान्त ज्योतिष
वे०सू०	वेदान्तसूत्र
श०ब्रा०	शतपथब्राह्मण
शां०ग०सू०	शांखायनगृह्यसूत्र
शा०श्रौ०सू०	शांखायनश्रौतसूत्र
शिवपुराण	शिवपुराण
ष०ब्रा०	षड्विंश ब्राह्मण
सि०कौ०	सिद्धान्त कौमुदी
ह०पु०	हरिवंशपुराण

2 रामायण टीका

अ०	माधवयोगीकृत अमृत कतकटीका
ति०	राजाराम वर्माकृत तिलकटीका
भू०	गोविन्दराजकृत भूषणटीका

3 संस्करण

नि०सा०	निर्णय सागर प्रेस
म०वि०	मैसूर विश्वविद्यालय मैसूर
ला०	लाहौर श्रीमद्दयानन्द महाविद्यालय संस्कृत ग्रन्थमाला

विषय-सूची

प्रथम अध्याय रामायण तथा वेद 9

1 रामायण का रचना-काल, 2 रामायण में प्रक्षिप्त-अंश 3 रामायण-गत वेदवाची शब्द, 4 वेदलक्षण, 5 वेदत्रयीचतुष्टयत्व 6 वेदों की शाखाएं 7 वेदोत्पत्ति।

द्वितीय अध्याय वैदिक साहित्य से सम्बद्ध रामायणगत विवरण 36

1 संहिताएं 2 ब्राह्मण, 3 आरण्यक, 4 उपनिषद, 5 वेदांग—शिक्षा कल्प व्याकरण निरुक्त छन्द, ज्योतिष।

तृतीय अध्याय रामायण में वर्णित वैदिक देवता 59

1 देवोत्पत्ति, 2 देव-संख्या, 3 देव—अग्नि, अश्विना, इन्द्र प्रजापति बृहस्पति मित्र यम वरुण वायु विष्णु शिव, सूर्य। 4 देवगण—आदित्यगण मरुद्गण, वसुगण, विश्वेदेव। 5 पितृदेव, 6 स्त्री-देवता—अदिति पृथिवी, रात्रि, सरस्वती। 7 अप्सराएँ—उर्वशी मेनका। 8 गन्धर्व 9 असुर, राक्षस तथा पिशाच—असुर, दिति नमुचि, वल, वत्र राक्षस, पिशाच।

चतुर्थ अध्याय रामायण में वर्णित वैदिक ऋषि 123

1 ऋषि तत्त्व, 2 ऋषि—अगस्त्य, अत्रि, ऋष्यशृंग, कश्यप, गौतम च्यवन जमदग्नि भरद्वाज भृगु मेधातिथि काण्व, वसिष्ठ वामदेव, विश्वामित्र शुनःशेप।

पञ्चम अध्याय रामायणगत वैदिक आख्यान 152

1 देव सम्बन्धी आख्यान—इन्द्र तथा वृत्र। 2 ऋषि सम्बन्धी आख्यान—वसिष्ठ-विश्वामित्र, अगस्त्यवसिष्ठोत्पत्ति, गौतम अहल्या तथा इन्द्र, शुनःशेप। 3 इतर आख्यान—पुरूरवा उर्वशी, इला, सृष्ट्युत्पत्ति।

षष्ठ अध्याय रामायण में वर्णित वैदिक यज्ञ-याग 165

यज्ञ—1 श्रौतयज्ञ—अग्निष्टोम, अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, अश्वमेध, राजसूय, वाजपेय। 2 महायज्ञ तथा कृत्य—अतिथि सत्कार, सन्ध्या वन्दन, नामकरण, विवाह, बलिकर्म, शालाकर्म, उत्तरक्रिया, अष्टका।

सप्तम अध्याय रामायणगत आर्ष प्रयोग 190

1 नाम—शब्दरूप, तद्धित, लिंग व्यत्यय, वचन व्यत्यय।

2 कृदन्त—क्त, शतृ तथा शानच्, क्त्वार्थक-कृदन्त।

3 आख्यात—परस्मैपद में प्रयुक्त आत्मनेपदी धातुएँ, आत्मनेपद में प्रयुक्त परस्मैपदी धातुएँ, सोपसर्ग धातुएँ, गण व्यत्यय, 'सेट्' तथा 'अनिट्' धातुएँ, अट् तथा आट् आगम।

4 सन्धि—दो पादों के मध्य सन्धि का अभाव—दीर्घ सन्धि, गुण सन्धि, वृद्धि सन्धि, यण सन्धि, पूर्वरूप सन्धि, अयादि-सन्धि, एक ही पाद में सन्धि का अभाव।

अष्टम अध्याय उपसंहार 222

सहायक ग्रन्थ सूची 226

1 संस्कृत ग्रन्थ-सूची

2 आलोचनात्मक ग्रन्थ सूची—

(क) संस्कृत तथा हिन्दी भाषाओं में उपनिबद्ध ग्रन्थ।

(ख) अंग्रेजी में उपनिबद्ध ग्रन्थ।

3 कोश, 4 पत्रिकाएं।

प्रथम अध्याय

रामायण तथा वेद

1 रामायण का रचना-काल

वदिक-साहित्य के पश्चात लौकिक-संस्कृत साहित्य मे 'रामायण' को 'आदि-काव्य' तथा महर्षि-वाल्मीकि को आदिकवि' माना जाता है। वदिक-साहित्य' के समापन क पश्चात सस्कत म जिस साहित्य की अवतारणा हुई उसम 'रामायण' महनीय रचना के रूप म समादत है। 'रामायण से ही सस्कत मे सजनात्मक धारा का प्रवतन हुआ जो साहित्यिक सवदनशीलता से अभिप्रेत है। इस आदिम रचना मे अलकृत भाषा के माध्यम से रामचरित प्रस्तुत किया गया है। इसका आधारफलक अत्यत विस्तत एव मानव की विराट तथा प्रबुद्ध सास्कृतिक चेतना स परिपुष्ट है। निषाद के बाण म विद्ध क्रौञ्च पक्षी के विरह म क्रौञ्ची का करुणक्रन्दन सुन कर वाल्मीकि का हृदय द्रवीभूत होकर काव्यधारा के रूप म प्रवाहित हो उठा[1]। इसम भारतीय जीवन पद्धति एव सास्कृतिक चेतना का मञ्जुल उदगीथ है।

यद्यपि रामायण क प्रणयन क साथ ही काव्य की नवीन शली का सूत्रपात हुआ जो वदिक शली से सवथा भिन्न है, तथापि इस वेदो की भाति पवित्र माना गया है। वेदो के उपब हुण के लिए इसकी रचना हुई[3]। 'रामायण' के बाल काण्ड[4] तथा 'उत्तरकाण्ड'[5] म इसके कलवर के विषय म उल्लख हुआ है।

---

1 रा० 1 2 14 15 निशाम्य रुदती क्रौञ्चीमिद वचनेमब्रवीत।
मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगम शाश्वती समा॥
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकेमवधी काममोहितम।

2 तदेव 1 1 77 इद पवित्र पापघ्न, पुण्य वेदश्च सम्मितम॥
(भू०) वेदश्च सम्मितम—सववेदसदृशमित्यथ।

3 तदेव 1 4 5 वेदोपवृणार्थाय तावग्राहयत प्रभु।

4 रा० 1 4 2 चतुर्विंशत्सहस्राणि श्लोकानुक्तवानृषि।
तथा सगशतान्पञ्च षटकाण्डानि तथोत्तरम॥ (म० वि०)

5 तदेव 7 94 26 सनिबद्ध हि श्लोकाना चतुर्विंशत्सहस्रकम।
उपाख्यानशत चव भागवेण तपस्विना॥
आदिप्रभति व राजन्पचसगशतानि च।
काण्डानिषट कृतानीह सोत्तराणि महात्मना॥ (नि० सा०)

तदनुसार यह उत्तरकाण्ड सहित छह काण्डयुक्त पाचसौ सर्गों तथा चौबिस हजार श्लोको मे उपनिबद्ध है। यह कथन प्रक्षिप्त होने के कारण विश्वसनीय नही है।[1]

'रामायण' का रचना-काल अत्यन्त विवादास्पद है भारतीय परम्परा के अनुसार 'रामायण' की रचना त्रेतायुग म आरम्भ म हुई थी। आधुनिक विद्वान इसे प्रमाणिक नही मानत और न ही भारतीय युगा का समय निरूपण हो सका है। इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि 'रामायण' की रचना वदिक साहित्य के पश्चात हुई। वदिक साहित्य की रचना छठा शताब्दी के पूर्व तक ही चुकी थी। 'रामायण' म महाभारत अथवा इसक किसी पात्र का उल्लख नही है जब कि महाभारत म 'रामोपाख्यान' उपलब्ध है, जिसम 'वाल्मीकि रामायण' के पात्रो के चरित वर्णित हैं तथा वहा रामायण स एक पद्य भी अविकल उद्धत किया गया है।[2] इसस सिद्ध होता है कि रामायण महाभारत स पूर्व की रचना है। 'महाभारत' को केवल रामकथा का ही नही अपितु 'वाल्मीकि रामायण' तथा इसके पात्रो और राम के विष्णु के अवतार होने का पता था। महाभारत को इसके कर्त्ता का भी ज्ञान था। मैकडानल[3] के अनुसार रामायण एक व्यक्ति की रचना नही है। 'बाल-काण्ड' तथा 'उत्तर-काण्ड' के अतिरिक्त भी पुनरुक्ति तथा अनावश्यक विस्तार यह मानने को विवश करता है कि रामायण का बहुत-सा भाग प्रक्षिप्त है। युद्ध काण्ड[4] म इस आदिकाव्य के प्राचीन काल म वाल्मीकि द्वारा लिखे जान का उल्लेख है। अयोध्या-काण्ड म एक स्थल पर रामायण स परवर्ती बुद्ध का उल्लख भी है[5] जो प्रक्षिप्त है। इससे यह विश्वास दृढ हो जाता है कि मूल 'रामायण' सक्षिप्त थी। यह सूतो कुशीलवो, गायको तथा लिपिको द्वारा परिमार्जित एव परिवर्द्धित होती रही। इसी कारण इसके विभिन्न सस्करणो म पर्याप्त

---

1 सत्यनारायण पाण्डेय सस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० 89

2 महा० 5 43 67 68 अपि चाय पुरागीत श्लोको वाल्मीकिना भुवि।

न हन्तव्या स्त्रियश्चेति यदब्रविषि प्लवगम ॥

पिडाकम अमित्राणा यत्स्यात्कर्तव्यमेव तत।

रा० 6 60 29 (ला०)

3 मकडानल हिस्ट्री आफ सस्कृत लिटरेचर पृष्ठ 306—309

4 रा० 6 1 26 106 आदिकाव्यमिद चाप पुरा वाल्मीकिना कृतम।

य श्रुणोति सदा लाके नर पापात प्रमुच्यते ॥

(नि० सा०)

5 तदेव 2 109 34 यथा हि चौर स तथा हि बुद्धस्तथागत नास्तिकमत्र विद्धि। (मै० वि०)

भिन्नता है।[1] इसका कारण भक्तिभावना एव स्वग-कामना है। वाल्मीकि-कृत मूल 'रामायण' का कलेवर कितना था, यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता तथापि, यह कहा जा सकता है कि मूल 'रामायण' सक्षिप्त थी। 'रामायण के युद्ध-काण्ड' म कई स्थला पर उल्लेख है कि इस आख्यान का पहले कभी वाल्मीकि ने रचा था।[2] रामायण म बहुत स अपाणिनीय प्रयोग इस बात के सूचक है कि इसका रचना काल पाणिनि स पहले है। पाणिनि का काल षष्ठशतक ईस्वी पूव माना गया है।[3] इस प्रकार 'रामायण का अन्तिम काल उसस भी पहले है यद्यपि विण्टरनित्स 'रामायण' मे बुद्ध का उल्लेख प्रक्षिप्त मानते हैं तथापि उस पर बौद्ध धम के प्रभाव को स्वीकार करने म अपनी सहमति व्यक्त करते है।[4] उनका अनुमान है कि रामायण' उस समय रची गई जब बौद्ध धम पूर्वी भारत म फल चुका था, जब बौद्धो के धम प्रथ लिखे जा रहे थे। यह रचना निश्चित रूप से बुद्ध से पूव की है क्योकि इस काव्य की भाषा उस समय प्रचलित सस्कृत ह। ईसा स 260 वप पूव अशोक के शिलालेख सस्कत म न होकर पालि म प्राप्त होत है। बुद्ध ने भी अपना उपदेश इस्वी पूव छठी शताब्दी म जनभाषा पालि म किया था। बुद्ध क समय म जनभाषा सस्कत नही थी। 'रामायण एव 'महाभारत दोनो के प्रणयन के समय सस्कत जनभाषा थी। अत साक्ष्य के आधार पर सिद्ध होता है कि रामायण की रचना 'महाभारत' स पूव है। महाभारत म बुद्ध धम या बुद्ध का नाम नही है, अत निश्चित है कि 'महाभारत का प्रणयन बुद्धदेव के पूव हो चुका था। 'रामायण' तो इससे भी पूव रची जा चुकी थी। ऐतिहासिक प्रमाण भी इस बात को दढ करते हैं।[5]

1 रामायण' म गगा तथा सोन पर बने पाटलिपुत्र का उल्लेख नही है। मगध नरेश अजातशत्रु ने 500 ईस्वी पूव बौद्ध साहित्य मे निर्दिष्ट पाटलि नामक ग्राम को नगर के रूप म बसाया था। इसस सिद्ध होता है कि पाटलिपुत्र नामकरण से पूव 'रामायण की रचना हो चुकी थी।

2 'रामायण' म कौशल जनपद की राजधानी का नाम अयोध्या है[6] तथा

---

1 सत्यनारायण-पाण्डेय, सस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ 28

2 रा० 6 128 110, 112, 117 120 (नि० सा०)

3 सत्यकाम वर्मा सस्कृत व्याकरण का उद्भव तथा विकास पृष्ठ 124

4 विण्टरनित्स, ए हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, भाग 1, पृष्ठ 178 181

5 राजवश सहाय हीरा, सस्कृत साहित्य का बहद् इतिहास भाग 1, पृष्ठ 150 151

6 रा० 1 5 [illegible] अयोध्यानाम नगरी तत्रासील्लोकविश्रुता (म० वि०)

लव की राजधानी का नाम श्रावस्ती है ।[1] परवर्ती बौद्ध तथा जन साहित्य मे कौशल जनपद की राजधानी का नाम मानेत मिलता है । बुद्ध के समसामयिक कौशल नरेश की राजधानी का नाम श्रावस्ती था इस आधार पर निश्चित होता है कि श्रावस्ती की स्थापना से पूव ही रामायण की रचना हो चुकी थी। उस समय कौशल जनपद की राजधानी अयोध्या ही थी ।

3 'रामायण' म गगा पार करते समय राम विशाला नामक स्थान पर पहुचे उस समय वहा के राजा का नाम सुमति था । विशाला नामक नगर को इक्ष्वाकु की पत्नी अलम्बुसा क पुत्र विशाल न बसाया था । रामायण म विशाला और मिथिला दो स्वतन्त्र राज्य हैं बुद्ध के समय दोनो एक हो गए और इसका नाम वशाली हो गया । इस दृष्टि स भी रामायण का रचना बुद्ध स पूव सिद्ध होती है।

4 वेबर ने 'रामायण' पर ग्रीक प्रभाव की कल्पना की थी जिसका खण्डन करते हुए याकोबी इन्हे प्रक्षिप्त मानत हैं ।[4]

इन सभी प्रमाणो के आधार पर सिद्ध होता है कि रामायण' की रचना 500 ईस्वी पूव से पहले हो चुकी थी ।

2 रामायण मे प्रक्षिप्त अश

'रामायण' की कथाओ के अध्ययन के पश्चात यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि 'रामायण' म समय-समय पर प्रक्षप हुए तथा 'रामायण' विस्तृत होती गई । ये सभी प्रक्षिप्त अश महाभारत को शतसाहस्री का रूप प्राप्त होने से पूव रचे जा चुके थे ।[5] जमन विद्वान याकोबी क अनुसार मूल रामायण म अयोध्या-काण्ड' स 'युद्ध-काण्ड' पयन्त पाच ही काण्ड थे ।[6] युद्ध-काण्ड क अत म जहा राम का राज्याभिषेक होता है वहा सुग्रीव सहित वानर किष्किधा तथा विभीषण सहित राक्षस लका को लौट जात है[7] । यहा ग्रथाध्ययन से प्राप्त होने वाले पुण्य को भी दर्शाया

1 तदेव 7 108 4 श्रावस्तीति पुरी रम्या श्राविता लवस्य ह। (नि० सा०)
2 तदेव 1 46 11 20
3 तदेव 1 46 11 12 इक्ष्वाकोस्तु नरव्याघ्र पुत्र परमधार्मिक ।
अलम्बुषायामुत्पन्नो विशाल इति विश्रुत ।
तेन चासोदिह स्थाने विशालेति पुरी कृता ।
4 विण्टरनित्स भारतीय साहित्य भाग 1, खण्ड 2, पृष्ठ 183
याकोबी, दस रामायण, पृष्ठ 101
5 राजवश सहाय हीरा, संस्कृत साहित्य का बृहद इतिहास, पृष्ठ 153
6 याकोबी दस रामायण, पृष्ठ 50 95 96
7 रा० 6 128 89 90 (नि० सा०)

गया है,[1] जो ग्रथ समाप्ति की सूचना है। उत्तर-काण्ड म पुन वानर और राक्षस कथा-श्रवण कर रहे हैं।[2] इसमे नात हाता है कि ग्रथ 'युद्ध-काण्ड क अत म ही समाप्त हो गया था। उत्तर-काण्ड की रचना कर किसी ने ग्रथ के अत म उसे जोड दिया। दो स्थलो पर ग्रथ समाप्ति की सूचना प्रश्न ही उत्पन्न नही हाता।

अधिकतर विद्वान यह मानने के पक्ष म है कि बाल-काण्ड तथा उत्तर काण्ड दाना ही प्रक्षिप्त है। इसके लिए तक दिया जाता है कि इन काण्डा म राम विष्णु के अवतार के रूप म आत हैं जबकि अयत्र मनुष्य के रूप मे।[3] विष्णु के अवतार की धारणा को लकर ही दानो काण्डा प्रक्षिप्त मान लेना उचित नही, क्योकि अयोध्या काण्ड[4] म भी राम का विष्णु का अवतार कहा है। 'युद्ध-काण्ड[5] मे सभी देव ब्रह्मा सहित राम की ईश्वर के रूप म वदना करते हैं हे राम! आप सपूण विश्व के उत्पादक, नानियो म श्रेष्ठ एव विभु हैं फिर भी आप आग म गिरी सीता की उपेक्षा कमे कर रहे हैं पूवकाल म वसुआ के प्रजापति, जो ऋतुधामा नामक वसु थे, वे आप ही है। आप तीना लाको के कत्ता रुद्रा म अष्टम रुद्र, तथा साध्या में पचम साध्य हैं। आपके कण अश्विना तथा सूय एव चद्र नेत्र हैं। आप सष्टि के आदि व अत म विद्यमान रहते है, फिर भी आप साधारण मनुष्य की भाति सीता की उपेक्षा कर रहे हैं। जिन दवा की सष्टि ब्रह्मा ने की है वे सभी आपके विराट् शरीर म रोम हैं। आपके नत्रो का खुलना व बद होना रात्रि एव

1 तदेव 6 128 106-128 (नि० सा०)

2 तदेव 7 1

3 सत्यनारायण पाडेय, सस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ 89
कृष्ण चतय, सस्कृत साहित्य का नवीन इतिहास, पृष्ठ 184

4 रा० 2 1 7 अथितो मानुषे लाके नरो विष्णु सनातन । (म० वि०)

5 तदेव ▮ 105 5 8 कत्ता सवस्य लाकस्य श्रेष्ठो नानविदा विभु ।
उपेक्षसे कथ सीता पतती हव्यवाहने ॥
ऋतुधामा वसु पूव वसूना त्व प्रजापति ।
त्रयाणामपि लाकानामादिकर्त्ता स्वयप्रभु ॥
रुद्राणामष्टमो रुद्र साध्यानामपि पचम ।
अश्विनौ चापि कर्णौ ते सूयचद्रमसौ दृशौ ॥
अन्ते चादौ च मध्ये च दृश्यसे च परन्तप ।
उपेक्षसे च वदेही मानुष प्राकृतो यथा ॥

6 105 21 22 दवा रामाणि गात्रेषु ब्रह्मणा निर्मिता प्रभो।
निमिषस्ते स्मृता रात्रिरुन्मेषो दिवसस्तथा।
सस्कारास्त्वभवन्वेदा नैतदस्ति त्वया विना॥

दिन है। वेद आपके सस्कार हैं।" यही पर राम का सतानत विष्णु दब महा बाहु, हरि, एव नारायण कहा है।[1] इसस यह विचार भी खडित हो जाता है कि केवल बालकाण्ड तथा 'उत्तरकाण्ड' म ही राम देवता अथवा विष्णु के अवतार के रूप म आए हैं। यह भी स्पष्ट होता है कि इस काव्य मे इन दो काण्डा क अतिरिक्त भी प्रक्षिप्त अश हैं। 'विण्टरनित्स' इन स्थला को भी प्रक्षिप्त मानत हैं।[2] इन स्थला पर भी राम के ईश्वर होने क प्रसग ढूढ जा सकत है जस बालिवध[3] कबध का वध[4] विराधवध तथा शबरी की कथा[6]। बालि, कबध एव विराध राम के हाथा मृत्यु पाकर दिव्यलोक पाते हैं। शबरी अग्निदग्ध होकर स्वग प्राप्त करती है। शरभग ने राम के दशन क पश्चात अग्नि म अपने को जला दिया।[7] ये सभी आख्यान रूप म हैं। बुद्ध विषयक पद्य प्राय प्रक्षिप्त कहा गया है जो 'अयोध्या-काण्ड' म मिलता है। 'किष्किन्धा-काण्ड' म तथा मनुस्मृति म राजधम बोधक दो पद्य समान है।[8] इसस पूव क एक पद्य म इन्ह मनुक्त कहा गया है[9], जिसस वाल्मीकि क मनु क पश्चात होन की भ्राति उत्पन्न हो जाती है।[10] इसे किसी मनुस्मृति के अभिमानी न प्रक्षिप्त किया और इस भ्राति को उत्पन्न किया। इस प्रकार रामायण म बहुत स प्रक्षिप्त अश है, जिन्ह ढूढ पाना एक कठिन काय है।

---

1 रा० 6 128 118 119

प्रीयत सतत राम सहि विष्णु सनातन ।
आदिदेवो महाबाहुहरिनारायण प्रभु ॥ (नि० सा०)

2 विण्टरनित्स, ए हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, पृष्ठ 167 168

3 रा० 4 16

4 तदव 3 66

5 तदव 3 4 (म० वि०)

6 तदेव 3 70

7 तदव 3 4

8 तन्व 4 18 30 राजभिध तदण्डास्तु कृत्वा पापानि मानवा ।
निमला स्वगमायान्ति सन्त सुकृतिनो यथा ।
4 18 34 शासनाद्वा विमो द्वा स्तन स्तेयाद्विमुच्यत ।
राजा त्वशासत्पापस्य तदवाप्नोति किल्बिषम् ॥ (म० वि०)
म० स्म० 8 318 316

9 रा० 4 18 32 श्रूयेत मनुना गीतो श्लाको चारित्र वत्सलो ।
गहीतो धमकुशलस्तस्तथा चरित हरे ॥ (मै० वि०)

10 मल्लादिसूयनारायण शास्त्री, सस्कृतकविजीवितम् पृष्ठ 4 5

यत्र-तत्र 'रामायण' म दो प्रकार की शैली प्राप्त होती है, पौराणिक तथा काव्यशास्त्रीय। पौराणिक शली म का यशास्त्रीय तत्वा का सवथा अभाव है। 'रामायण' म कुछ स्थला पर उत्कृष्ट काव्य के दशन हात हैं यथा सीताहरण वर्षा-वणन शरद वणन तथा लका वणन आदि। य इस काव्य के उत्तमाश कह जा सकत हैं। इ ह केवल गायका के गीत नहीं कहा जा सकता। वाल्मीकि ने बहुत स स्थला पर प्रकृति चित्रण किया है। जहा तक उत्तरकाण्ड' का प्रश्न है, वह तो प्रक्षिप्त ही है, क्योंकि युद्ध काण्ड' क अत म कथा के श्रवण का महात्म्य वानरा तथा राक्षसों का अपन स्थान का चल जाना एव काव्यशास्त्रीय नियमा क अनुसार नायक को फल प्राप्ति वर्णित हो चुकी है।[1] उत्तरकाण्ड' म सवथा पौराणिक शैली म आख्यान ही जोडे गए हैं। यहा राम की चारित्रिक हीनता के प्रसग भी मिलत हैं, जसे सीता का निर्वासन तथा ब्राह्मण शबूक का वध।

सपूण बालकाण्ड को प्रक्षिप्त मानना उचित नही है। यहा केवल व उपाख्यान ही जिनका मूल कथा स सबध नहीं है प्रक्षिप्त माने जा सकत हैं, यथा ऋष्यशृग, विश्वामित्र, गगावतरण एव त्रिशकु की कथा आदि। यदि सपूण बालकाण्ड का प्रक्षिप्त मान लें ता आदि कवि वाल्मीकि के मुख स निसत श्लोक का भी प्रक्षिप्त मानना होगा जिस 'आनदघन रसवाद' की स्थापना के लिए प्रमाण मानत हैं।[2]

अयोध्याकाण्ड म राम क राज्याभिषेक क लिए जो समय निश्चित किया गया था उस समय पुण्य-नक्षत्र, ककलग्न तथा कक राशिस्थ बहस्पति और चद्रमा जन्मकालिक दिवस क ही समान थे।[3] जन्मकालिक नक्षत्र तथा ग्रह स्थिति 'बाल काण्ड' म है।[4] यदि बालकाण्ड का प्रक्षिप्त माना जाए तो 'अयोध्याकाण्ड का वह भाग भी प्रक्षिप्त मानना पडेगा जहा इस प्रकार का विवरण प्राप्त होता है।

अरण्यकाण्ड म मारीच रावण को राम क प्रति सीताहरण रूपी अपराध करने से रोकन का परामश देत हुए अपन गत अनुभव बतलात हैं।[5] जब मारीच ने अपने साथिया सहित 'दण्डकारण्य म श्री राम पर आक्रमण किया तो राम न उनके साथिया का वध कर दिया था। उनके भय स त्रस्त होकर मारीच ने सयास ल लिया।[6] दण्डकारण्य में विश्वामित्र क यज्ञ म राम का मारीच तथा उसके

---

1 द्रष्टव्य प्रस्तुत शोध प्रबध, पष्ठ 8

2 ध्वयालाक 1 5

3 रा० 2 13 3 उदित विमल सूर्ये पुष्ये चाभ्यागतऽह्नि।
लग्न ककटके प्राप्ते ज म रामस्य च स्थित॥
2 23 8 अद्य बाहस्पत श्रीमा युक्त पुष्येण राघव।

4 तदेव 1 18 8 15 (म० वि०)

5 तदेव 3 34, 3 35 10

6 तत्रैव 3 36 37

साथियों के साथ संघर्ष का वर्णन 'बालकाण्ड' में है।[1] मारीच ने बाद में सीताहरण में स्वर्णमृग का रूप धारण कर रावण की सहायता की थी।

'रामायण' में जहां इसके कलेवर के विषय में लिखा गया है वहां भी षट्काण्ड के साथ 'उत्तरकाण्ड' कहा गया है, 'सप्तकाण्ड' नहीं।[2] यहां भी केवल 'उत्तरकाण्ड' ही अलग है।

संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि 'उत्तरकाण्ड' सर्वथा प्रक्षिप्त है। बालकाण्ड का वह भाग जो मुख्य कथा से संबंध नहीं रखता तथा वे अंश जो मुख्य कथा के विकास में सहयोग नहीं देते प्रक्षिप्त हैं। इसी प्रकार मुख्य कथा से असंबद्ध आख्यान अन्य काण्डों में भी मिलते हैं वे भी प्रक्षिप्त ही हैं।

'रामायण' में परिवर्तन एवं परिवर्धन हुए, इनका कारण कुश और लव जैसे गायक हैं। इसके पठन-पाठन, श्रवण, मनन एवं लेखन को बाद में पुण्य कार्य समझा जाने लगा।[3] लेखकों को 'रामायण' शीर्षक के अंतर्गत जो कुछ भी प्राप्त हुआ उन्होंने सभी का स्वागत किया। इसके पीछे भी स्वर्गप्राप्ति की भावना थी।[4]

'रामायण' के जो संस्करण संप्रति प्रचलित हैं उनमें पर्याप्त पाठ भेद है। आजकल इसके चार प्रामाणिक संस्करण हैं।

1. बंबई से प्रकाशित औदीच्य संस्करण।
2. कलकत्ता से प्रकाशित गौडीय संस्करण।
3. लाहौर से प्रकाशित काश्मीरी अथवा पश्चिमोत्तरीय संस्करण।
4. मद्रास से प्रकाशित दक्षिणात्य संस्करण।

बंबई एवं मद्रास के संस्करणों में समानता होने के कारण 'रामायण' को मुख्यतः तीन प्रकार के पाठों में विभक्त किया जा सकता है। दक्षिणात्य पाठ में 643 सर्ग, औदीच्य में 664 तथा गौडीय पाठ में 666 सर्ग हैं। गौडीय और पश्चिमोत्तरीय पाठों में भी समानता है। दक्षिणात्य पाठ को सभी विद्वान् वाल्मीकि के मूल पाठ के निकट मानते हैं। यह पाठ अनेक लिपियों में प्राप्त होता है। दक्षिण भारतीय टीकाकारों गोविंदराज, रामानुज, माधवयोगी तथा महेश्वरनाथ के पाठों में बहुत अधिक साम्य है, पर कहीं-कहीं अल्प मात्रा में पाठ भेद प्राप्त होते हैं।

---

1. तदेव 1.28
2. तदेव 1.4.2 षट्काण्डानि तथोत्तरम्। (म० वि०)
   7.94.27 काण्डानि षट्कृतानीह सोत्तराणि महात्मना। (नि० सा०)
3. रा० 6.128.106 यः शृणोति सदालोके नरः पापात् प्रमुच्यते। (नि०सा०)
   6.128.110 श्रुत्वा रामायणमिदं दीर्घमायुश्च विंदति॥ (नि० सा०)
   6.128.115 सर्वपापैः प्रमुच्येत दीर्घमायुराप्नुयात्॥ (नि० सा०)
4. तदेव 6.128.120 ये लिखंतीह च नरास्तेषां वासस्त्रिविष्टपे (नि० सा०)

3 रामायणगत वेदवाची विविध शब्द

श्रुति, वेद आम्नाय त्रयी और ऋक्-साम यजु ये वेद के पर्याय कहे गए हैं।[1] रामायण म मुख्यत वेद शब्द का प्रयोग है", कहीं-कहीं वेद के अपरपर्यायो का प्रयोग भी मिलता है। 'रामायण' म अधोलिखित वेदवाची शब्द प्रयुक्त हैं—

ब्रह्म—'रामायण' मे ब्रह्म शब्द का प्रयोग वेदार्थ मे हुआ है।[3] ऋषियो के भवनो का वर्णन ब्रह्मघोष से निनादित के रूप म किया गया है।[4] 'ब्रह्मघोष' का तात्पर्य वेद ध्वनि' स है।[5] प्राचीनकाल स व्यवहृत ब्रह्म के व्याख्यान के कारण ब्राह्मण शब्द का प्रचलन हुआ। दुर्गाचार्य ऋक्सामयजुष' को ब्रह्म राशि मानत हैं।[6] वेद के अर्थ म 'ब्रह्म शब्द का प्रयोग तैत्तिरीय-संहिता' की भूमिका[7] और मनुस्मृति[8] म भी हुआ है। वेद के ही अर्थ म 'ब्रह्म पुराणों म प्रयोग मिलता है"।

श्रुति—'श्रुति वेद का नामान्तर है। श्रुति नाम श्रवण के कारण पडा। चिरकाल स वेदो को लोग गुरु-परम्परा स सुनत चल आ रहे हैं। निरुक्त[10] तथा 'मनुस्मृति[11] म इस शब्द का प्रयोग वेदार्थ मे है। कूर्म पुराण' म पुरुषसूक्त का मन्त्र,[1] ब्रह्म पुराण म 'शतपथ' का वाक्य[13] और शिव-पुराण' म तैत्तिरीय-आरण्यक' के वाक्य[14]

---

1 अ० का० 1 3 श्रुति वेदाम्नायस्त्रयीधर्मस्तुतद्विधि ।
स्त्रियामृक्सामयजुषीति वेदास्त्रयस्त्रयी ॥

2 रा० 1 4 5 वेदोपबृंहणार्थाय ।

3 तदेव 2 7 5 ब्रह्मघोषाभिनादिताम । (म० वि०)

4 तदेव 3 1 8 तद्ब्रह्मभवनप्रख्य ब्रह्मघोषनिनादितम् ।

5 (भू०) ब्रह्मघोष —वेदध्वनि ।

6 नि० 1 4, ऋग्यजु सामात्मको ब्रह्मराशि ।

7 तै० स०, पृष्ठ 5, द्रष्टव्य, स्वाध्यायमण्डली ।

8 म० स्म० 4 91 पर मेधातिथिभाष्य ।

9 भा० पु० 2 1 8 पुराण ब्रह्मसम्मितम ।
1 11 19
9 1 17 पर श्रीधरी टीका ।
ह० पु० 3 48 9 ब्रह्मोक्ता ब्रह्मर्षेरिताम्, पर नीलकण्ठी टीका।

10 नि० 13 1 13 सेय विद्या श्रुति मति बुद्धि ।

11 म० स्मृ० 2 10 श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो ।
2 9 श्रुतिस्मृत्युक्तं धर्ममनुतिष्ठन्हि मानव ।

12 कू० पु० 2 38 73 सहस्रशीर्षा पुरुष इत्यादि श्रुति ।

13 ब्र० पु० 161 15 यज्ञो वै विष्णु इति श्रुति ।

14 शि० पु० 6 11 49 ओमितीदं सर्वम इत्यादि श्रुति ।
4 42 23 ईशान सर्वविद्यानाम् इत्यादि श्रुति ।

उद्धृत कर उसे 'श्रुति' कहा गया है। 'रामायण' म वद-वचन को श्रुति कहा गया है।[1]

'रामायण' म 'श्रुति' शब्द का प्रयोग लौकिक प्रवाद के लिए भी हुआ है।[5] अत जिसका प्रचार-काल निश्चित न हो और जिसका प्रामाणिक रूप म गुरु-परपरा के माध्यम स उपदेश प्राप्त होता रहे वह वचन लौकिक हो या वदिक 'श्रुति' ही कहलाएगा। इसम वचन के कथन या कहना के समय का उल्लेख नही होता। आग चलकर अनक कल्पित श्रुतियो का उल्लेख विद्वानो न किया है।[3]

अध्याय— रामायण म अथ म 'अध्याय' शब्द का प्रयोग भी हुआ है।[4] अध्ययन किए जाने के कारण वद का नाम अध्याय पडा।

स्वाध्याय— रामायण म 'स्वाध्याय' शब्द का प्रयोग भी हुआ है।[5] 'शतपथ ब्राह्मण'[6] तथा 'तत्तिरीय आरण्यक'[7] एव मनुस्मृति[8] म स्वाध्याय शब्द वद के लिए प्रयुक्त है। कुल-परम्परा म प्रचलित वेद विशष का अथवा वदविशष की शाखा विशष का अध्ययन स्वाध्याय है। मनुस्मति का वचन है कि जो ब्राह्मण वदाध्ययन न करक अय ग्र थो म परिश्रम करता है वह इस जीवन म सपरिवार शूद्र हो जाता है।[9] रामायणकाल म भी ब्राह्मण वदाध्ययन म रत रहत थ।[10]

त्रयी — रामायण म त्रयी का प्रयोग न होकर वदास्त्रय त्रिवेदी और त्रविद्य श दो का प्रयोग है।[11] त्रयी पद म त्रत्रयवाची है। ऋक साम तथा यजु य तीन

---

1 रा० 3 13 30 मुखतो ब्राह्मणा जाता उरस क्षत्रियास्तथा।
उरुभ्या जज्ञिरे वश्या पदभ्या शूद्रा इति श्रुति ।

2 तदव 2 102 15 द्वे चास्य भार्ये गार्भिण्यो बभूवतुरिति श्रुति ।

3 सत्यव्रत सामश्रमी वेदत्रयी परिचय, पष्ठ 9

4 रा० 2 48 34 नष्टज्वलनसतापा प्रशाताध्याय सत्कथा। (भू०) अध्यायोवद (नि०सा०)

5 रा० 7 9 40 स्वाध्यायनियताहार । (नि० सा०)
1 13 40 रता स्वाध्यायकरण वय नित्य हि भूमिप ।

6 श० ब्रा० 11 3 8 2 स्वाध्यायोऽध्यतव्य ।

7 त० आ० 2 15 7

8 म० स्मृ० 2 107 स्वाध्यायमधीतऽब्दम।

9 तत्रैव 2 168 योऽनधीत्य द्विजो वदानन्यत्र कुरुत श्रमम ।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वय ॥

10 रा० 1 13 40

11 तत्रैव 7 37 16 वेदास्त्रय 7 37 (प्र० 5) 48
त्रिगुण त्रिवदी त्रिधामा च त्रिराघव। (नि० सा०)

प्रकार के मन्त्र है।[1] त्रिविध मन्त्रो से यज्ञ सपादित होते है। ब्राह्मण भाग का साक्षात ग्रहण 'त्रयी' पद से नही होता किंतु मन्त्रानुगत होने के कारण कर्मकाण्ड का विधायक होने से गौण रूप से उसका भी अन्तर्भाव 'त्रयी' पद मे माना जाता है।

4 वेदलक्षण

रामायण मे वेदलक्षण तो प्राप्त नही होता, किंतु वेद सत्य के प्रतिष्ठापक है[2] तथा वेद सत्य और अक्षय हैं[3] ऐसे वचन मिलते है। वेदो मे धर्मादि पुरुषार्थ चतुष्टय की सत्ता का परिचय मिलता है। सायण ने 'कृष्णयजुर्वेद भाष्य भूमिका' मे यह लक्षण प्रदान किया है—"इष्टप्राप्ति तथा अनिष्टपरिहार के अलौकिक उपाय को बतलाने वाला वेद है।[4] उन्होने ऋग्वेद-भाष्य भूमिका मे वेद के यह लक्षण दिए है—'मन्त्रब्राह्मणात्मक शब्दराशि वेद है',[5] 'अपौरुषेय वाक्य वेद है'[6] तथा प्रत्यक्ष अनुमान तथा आगम प्रमाणो मे वेद अंतिम प्रमाण है।[7] ऐसा ही लक्षण 'आपस्तम्ब तथा कौशिक' ने भी किया है।[8] मुख्य रूप से मन्त्र और गौणत ब्राह्मण भाग भी वेद है।[9]

मन्त्र— यास्क' के अनुसार मनन के कारण मन्त्र को 'मन्त्र' कहते हैं।[10] सायण ने ऋग्वेद भाष्य भूमिका मे इस लक्षण को दोष युक्त बतलाया है, क्योकि इस लक्षण की अतिव्याप्ति ब्राह्मणग्रथो मे भी होगी।[11] 'शाबर भाष्य' मे भी इसे अतिव्याप्ति दोष-ग्रस्त बताया गया है।[12] वस्तुत सायण के समय तक मनन के स्थान पर जपादि क्रिया प्रचलित हो गई थी। रामायण मे मन्त्रकोविद, 'मन्त्रवित' तथा 'मन्त्रवत'

---

1 वा० रा० 4 67 1 त्रयी व विद्या ऋचायजूंषिसामानि।

2 रा० 2 101 14 वेदा सत्यप्रतिष्ठाना ।

3 तदेव 2 7 14 सत्यमेवाक्षया वेदा । (म० वि०)

4 कृ० भा० भू०, इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपाय यो ग्रन्था वेदयति स वेद ।

5 ऋ० भा० भू०, पृष्ठ 11 मन्त्रब्राह्मणात्मकशब्दराशिर्वेद ।

6 तदेव अपौरुषय वाक्य वेद ।

7 तदेव प्रत्यक्षानुमानागमेषु प्रमाणेषु अन्तिमो वेद ।

8 आप० य० परि० 24 1 31 कौ० सू० 1 3

9 युधिष्ठिर मीमासक, वैदिक सिद्धान्त मीमासा, पृष्ठ 158 178

10 नि० 13 1 17 मननात मन्त्रा ।

11 ऋ० भा० भू० पृष्ठ 68, मननहेतुमन्त्र इत्युक्तब्राह्मण अतिव्याप्ति ।

12 ज० सू० 2 1 63 पर शाबर भाष्य ।

आदि शब्दा का प्रयोग मिलता है।[1] इसकी व्युत्पत्ति गुप्तभाषणार्थक √ मन्त्रि स भी होती है। 'रामायण' म मन्त्र शब्द का प्रयोग मन्त्रणा के अथ म भी हुआ है।[2] मन्त्रो को गुप्त ही रखा जाता है। मन्त्रोच्चारण का प्रत्यक्ष प्रयोजन अथ प्रकाशन है।[3]

'रामायण म प्रयुक्त त्रयोमन्त्रा[4] पद स त्रिविध ऋक साम और यजु रूप मन्त्रा का सकेत है। ब्राह्मण-ग्रन्था म भी ऋक्सामयजु रूप मन्त्र त्रिविध ही मान गए हैं।[5] जमिनि न मन्त्राधिकारण म त्रिविध मन्त्रो क ही लक्षण कहे हैं। मन्त्रा के त्रिविध रूप का लक्ष्य कर त्रयी पद परपरा स वेद के लिए प्रयुक्त होता है। यह भेद गद्य, पद्य और गान रूप रचना प्रकार की दृष्टि से है।[6] जो मन्त्र पादवान हो, अक्षर की सख्या स युक्त हो तथा अवसान म स्वरयुक्त हो उस ऋक कहते हैं।[7] पूर्वमीमासा के अनुसार जिनम अथवश पाद्व्यवस्था हो वे छन्दोबद्ध मन्त्र 'ऋक' हैं।[8] वगद्वयवत्ति म परिमित पादाद्यवहित मन्त्र को ऋक' कहा गया है।[9] वस्तुत ऋड मन्त्रा म पाद की महत्ता के साथ अक्षरो की भी महत्ता है। अक्षर-सपद का निवेश इन मन्त्रो म होता है। पाद की महत्ता इसम विशष है। अथवश-पाद व्यवस्था होने के कारण अर्थानुसार पाठभेद भी इसम सभव होता है। इसम छदा भेद भी हो जाता है। ऋडमन्त्रो म अक्षरो की गणना का विशिष्ट महत्त्व है। अक्षर ही सवत्र बलवत्तर निमित्त है।[10]। ऋड मन्त्रा म अक्षरा की गणना से एक छद होता

1 रा० 2 5 4 मन्त्रम मन्त्रकोविदम (म० वि०)
2 5 11 मन्त्रवित्कारयामास । (म० वि०)
2 तदव 2 94 11 मन्त्रो हि विजय मूल राज्ञा भवति राघव ।
2 53 15 न मया मन्त्रकुशल सह विचारितम । 2 53 16 6 6 12
3 ज० सू० 1 2 53 पर शाबर भाष्य तस्माद्विवक्षितार्था मन्त्रा प्रयोग काल स्वार्थप्रकाशनायवाच्चारयितव्या ।
4 रा० 7 5 7 (नि० सा०)
5 श० ब्रा० 4 6 7 1, त्रयी व विद्या ऋचोयजूषिसामानि ।
त० ब्रा० 1 2 1 26 ऋच सामानि यजूषि ।
6 ऋ० भा० भू०, पष्ठ 76 एतमव मन्त्रावान्तरविशेषमुपजीव्य वेदानामग्वेदो यजुर्वेद सामवेद इति त्रविध्य सम्पन्नम ।
7 ऋ० प्रा० व०, पृष्ठ 6, य कश्चित्पादवा मन्त्रो युक्तश्चाक्षरसम्पदा ।
स्वरयुक्तोऽवसाने च तामच परिजानत ॥
8 ज० सू० 2 1 35 तपामक्यथार्थवशेन पाद्व्यवस्था ।
9 ऋ० प्रा० व० पृष्ठ 6
10 ऋ० प्रा० 17 21 अक्षराण्येव सवत्र निमित्त बलवत्तरम ।

है, पाद विभाग करने पर अन्य छन्द बन जाता है। एक ऋड मन्त्र[1] पाद के अनुसार अनुष्टुप होता है, किंतु अक्षर गणना करने पर उष्णिक बन जाता है।[2] इसी के साथ ऋडमन्त्रो मे अवसान की आवश्यकता होती है।[3] जो मन्त्र करणा से युक्त हो, पादाक्षर युक्त न हो, अतियुक्त तथा अवसान वाला हो उसे 'यजु' कहते है।[4] यजु मन्त्रो में पाद व्यवस्थित न होकर अनवस्थित होते हैं। उनमे विषमता रहती है। इस लिए एक यजु कण्डिका म मन्त्रा की गणना म पथक्ता मिलती है। प्रत्येक अनुवाक की यजु सख्या म शाकपूणि, यास्क तथा काशकृत्स्न के अनुसार मतभेद है।[5] यजु मन्त्रो मे अनियत अक्षर होते हैं। जहा छद नही होता वहा पादव्यवस्था भी नही होती। यजु गद्यात्मक होता है। 'अनतदेव यजुमन्त्रो मे भी छद की सत्ता मानते हैं। अनियताक्षर होने से छद का होना सभव नही।[6] नियताक्षर होने पर यजु मे भी छन्द स्वीकार किया जाता है।[7]

'रामायण' मे साम मन्त्रा के गाए जाने का उल्लेख है।[8] गाने के कारण ही ऋचाओ को साम कहते है।[9] अत यह निश्चित है कि 'साम शब्द' से वे मन्त्र अभिमत हैं। जो भिन्न भिन्न ऋचाओ पर गाए जाते हैं। सा तथा 'अम' से 'साम पद की निरुक्ति होती है।[10] स्वर साम का स्वरूप है।[11] जिन ऋचाओ पर साम गाए जाते हैं वे साम योनि कहे जाते है। पचविध सामो के नाम क्रमश हिंकार, प्रस्ताव उदगीथ प्रतिहार व निधन है।[12] सप्तविभक्तिक साम म हिंकार प्रणव, उदगीथ, प्रस्ताव प्रतिहार उपद्रव और निधन की गणना होती है।[13] गीयमान मन्त्र का प्रथम

---

1 ऋ० 8 69 2 नद व आन्तीनाम।

2 ब्रह्मदत्तजिज्ञासु यजुर्वेदभाष्यविवरण की भूमिका, पष्ठ 107

3 या० शि० 1 14 15

4 ऋग्यजु परिशिष्ट, पृष्ठ 500 पर उदधृत

य कश्चित करणमन्त्रो न च पादाक्षरैर्युत ।
अतियुक्तोऽवसानश्च त यजु परिकल्पयेत ।।

5 भट्टभास्कर कृत रुद्रभाष्य, पष्ठ 26

6 सर्वानुक्रमणी, पष्ठ 3, याजुषामनियताक्षरत्वादेको छन्दो न विद्यते।

7 *अनन्तदेव, सर्वानुक्रमणी पर टीका, पृष्ठ 6*

8 रा० 2 70 18 तत्र सामानि सामगा।

9 ज० सू० 2 36 गीतिषु सामस्या।

10 बृ० उ० 1 3 22 सा च अमश्चेति तत्साम्न सामत्वम्।

11 छ० उ० 1 8 4 'का साम्नो गति स्वर इति होवाच।

12 छा० उ० 2 2

13 तदेव 2 8 1 2

भाग जो प्रस्तोता गाता है वह 'प्रस्ताव' है। द्वितीय भाग उद्गाता द्वारा गीयमान 'उद्गीथ' है। इसके आरम्भ में ॐ लगाया जाता है। प्रतिहार को 'प्रतिहर्ता' नामक ऋत्विक गाता है। उपद्रव कभी-कभी दो भाग भी किए जाते हैं। उपद्रव को उद्गाता गाता है। 'निधन' में मन्त्र के दो पदांश या ॐ रहता है। इसका गायन तीनों ऋत्विक प्रस्तोता, उद्गाता तथा प्रतिहर्ता करते हैं।[1] दूसरा मत यह भी है कि गानारम्भ में सब ऋत्विक मिल कर हुम् का उच्चारण करते हैं वह हिंकार है। हिंकार के साथ प्रणव की भी गणना है।[2] साम के सभी स्वर स्तोभादियुक्त होते हैं। अतः साम का विशेषण 'स्तोभादिगीतिविशिष्ट' है।[3] ऋग्विलक्षण स्तोभ कहलाता है।[4] स्तोमों का प्रयोग यज्ञों में होता है। स्तोमों की संख्या नौ है। त्रिवृत्त पंच दश, सप्तदश, एकविंश, त्रिणव, त्रयस्त्रिंश, चतुर्विंश, चतुश्चत्वारिंश तथा अष्ट चत्वारिंश—ये स्तोम तृच पर हुआ करते हैं। तृचों को तीन पर्यायों में गाया जाता है। प्रत्येक पर्याय में तृचों पर साम के गान का नियम है। तृतीय पर्याय में स्तोभ का स्वरूप निष्पन्न होता है। आवृत्तियों को विष्टुति कहते हैं। नौ स्तोभों की समग्र विष्टुतियाँ संख्या में 28 हैं। मीमांसा ग्रन्थों में स्तोभ और साम पर पर्याप्त विचार किया गया है। साम शब्द ऋक्स्तोभ स्वरकाल और अभ्यास विशेष से गाए जाने पर प्रयुक्त किया जाता है।[6] यद्यपि स्तोभ साम पद वाच्य नहीं है तथापि सामगान की निष्पत्ति के लिए स्तोभों की उपयोगिता होने से सामलक्षण में स्तोभ का अंतर्भाव है।[7] सामगान सम्पादनार्थ ऋगक्षरों में कुछ परिवर्तन करना पड़ता है। ये साम विकार संख्या में छह हैं—विकार, विश्लेषण, विकर्षण, अभ्यास, विराम तथा स्तोभ।[8]

रामायण में आथर्वण मन्त्रों के प्रयोग करने का उल्लेख है।[9] अग्नि-पुराण[10] में ऋग्यजुः सामाथर्वाख्य चतुर्विध मन्त्र कहे गये हैं। रामायण में आथर्वण मन्त्र

---

1 बलदेव उपाध्याय वैदिक साहित्य और संस्कृति पृष्ठ 148
2 सत्यव्रत सामश्रमी त्रयी परिचय पृष्ठ 83
3 मु० उ० 2 1 8 पर शाबर भाष्य
4 सत्यव्रत सामश्रमी, पूर्वोद्धृत ग्रंथ, पृष्ठ 84
5 ता० ब्रा० अध्याय 2 3
6 ज० सू० 9 2 39 पर शाबर भाष्य, ऋक्स्तोभस्वर-कालाभ्यासविशिष्टायां गीते सामशब्दो वाचकः।
7 तत्रैव 7 2 1 पर शाबर भाष्य
8 सत्यव्रत सामश्रमी, पूर्वोद्धृत ग्रंथ, पृष्ठ 83
9 रा० 1 14 2 अथर्वशिरसि प्रोक्तमन्त्रैः।
10 अ० पु० 124 5 ऋग्यजुःसामाथर्वाख्यवेदमन्त्राः।

एक विशेष प्रकार का मत्र प्रतीत होता है। 'आथवण मत्र' का अथ है 'अथव-वेदोक्त मत्र'। आथवण मत्र रचना की दृष्टि से ऋड मत्रो के समान है। अथव मत्रो का प्रयोग अभिचार एव शातिपुष्ट्यादि कर्मों के लिए किया जाता है। त्रिविध मत्रो का प्रयोग श्रोतयन्ना म होन स अथवमत्रा की गणना पथक होती है।

रामायण म वेद मत्रो क लिए ब्रह्मघोष शब्द का प्रयोग मिलता है।[1] शत पथ-ब्राह्मण की उक्ति है कि ब्रह्म दवो का आह्वान करता है।[2] सायण के अनु सार ब्रह्म का अथ मत्र है।

रामायण म मत्र क लिए गाथा' शब्द का प्रयोग भी मिलता है[3]। विश्वा-मित्र शुन शेप को दो गाथाए गान को कहते हैं। गाथा शब्द भी वदिक साहित्य म महत्त्वपूण है इसका प्रयोग स्वय ऋग्वेद म भी मिलता है।[4] √ग धातु से निष्पन्न इस शब्द का अथ गीत होता है। अन्य वदिक ग्रथो म भी यह शब्द मिलता है।[5] गाथा मानव जीवन म सबध रखती है, जबकि ऋक दव से सबध रखता है। शुन शेप क लिए ऐतरय ब्राह्मण म शतगाथ शब्द का प्रयोग किया गया है।[6] इसकी गाथा 'ऋग्वेद' क कुछ मत्रो म मिलती है। गाथाए पद्यबद्ध होती है।[7] इन्ह वीणा के साथ गाया जाता है। विशषतया इनका गान विवाह के अवसर पर किया जाता है। गाथा किसी राजा की दान-स्तुति म भी प्रयोग की जाती थी। इनम वेद के विशष व्याकरण रूपो का सवथा अभाव है। इनम पद्य सरल होत है और उसम अथ की स्पष्ट अभिव्यक्ति होती है।[8]

ब्राह्मण—आपस्तम्ब, बौधायन कात्यायन, कौशिक तथा शबरादि ने 'वद' शब्द का प्रयोग मत्र तथा ब्राह्मण भाग क लिए किया है।[9] √ वह' वधते धातु से

---

1 रा० 3 1 8 ब्रह्मघोषनिनादितम।

2 श० ब्रा० 3 3 4 17 ब्रह्म हि देवान् प्रच्यावयति।

3 रा० 1 61 19 इम च गाथे द्वे दिव्ये गायेथा मुनिपुत्रक।
1 61 20 ते द्वे गाथ सुसमाहित।

4 ऋ० 8 3 1 8 71 14

5 त० स0 7 5 11 2, का० स० 5 2 ऐ० ब्रा० 6 32, श० ब्रा० 11 5 6 8

6 ऐ० ब्रा० 7 18

7 ऐ० ब्रा० 2 3 6

8 बलदेव उपाध्याय पूर्वोद्धृत ग्रथ, पष्ठ 268

9 आप० य० परि० 24 1 31 मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम।
बौ० ग० सू० 2 62 मन्त्रब्राह्मणमित्याहु।
कौ० सू० 1 3 आम्नाय पुनमन्त्राश्च ब्राह्मणानि च।
जै० सू० 2 1 33 पर शाबर भाष्य, मन्त्राश्च ब्राह्मण च वेद।

आरण्यक और उपनिषद । जिस प्रकार मत्र तथा ब्राह्मण वेद हैं उसी प्रकार विधि तथा अथवाद भी ब्राह्मण हैं ।

5 वेदत्रयीचतुष्टयत्व

'रामायण म 'वेदत्रय'[1] इस तथ्य को बतलाता है कि तीन वेद यज्ञ म आवश्यक रूप से विद्यमान रहते हैं। यहा वेद' शब्द मत्रपरक है। 'शतपथ म तीन प्रकार की विद्याओ का उल्लेख है—ऋक यजु तथा साम।[2] छन्दोबद्ध रचना ऋक है गद्यमयी यजु तथा गानमयी साम। त्रयी शब्द त्रिविध मत्रो को प्रकट करता है। त्रिविध का तात्पय है—तीन वेदो का ज्ञाता। मत्र भाग ही प्रमुखतया वेद, श्रुति समाम्नाय और त्रयी समझा जाता है। 'ब्राह्मण भाग गौण रूप से 'त्रयी नाम का अधिकारी है।[3] रामायण' मे रामचद्र को तीन वेदो का ज्ञाता कहा है।

चार प्रकार के ऋत्विजो को ध्यान म रखकर मत्रो का सकलन किया गया है।[4] इन सकलनो को सहिता कहा जाता है। यह काय वेदव्यास' ने किया है जिस कारण उन्हे 'वेदव्यास' की सज्ञा प्राप्त हुई।[5] 'रामायण म वेदचतुष्टय का भी सकेत मिलता है। दशरथ चार पुत्रो से उसी प्रकार प्रसन्न हुए जैसे वेदो से ब्रह्मा जी।[6] यहा वद की ऋक यजु, साम तथा अथव इन चार सहिताओ का सकेत है। रामायण म क्षत्रवद'[7] शब्द का प्रयोग भी अथव-वेद'[8] के लिए मिलता है। क्षत्रियो को शातिपुष्टयादि कर्मों के लिए अथव वेद की आवश्यकता होती थी, अत तादश मत्रो से युक्त 'अथव-वेद को 'क्षत्रवद सज्ञा से अभिहित किया जाता है। अथव-वेद म स्वय बहुवचनात वद' प्रयुक्त है।[9]

सहिता की दृष्टि से वेद का त्रित्व परम्परासम्मत नही है। वदत्रयी म वेद

---

1 रा० 7 37 16 वेदास्त्रय इवाध्वरम। (नि० सा०)
  6 105 13 ऋग्यजु सामपारग। (नि० सा०)

2 श० ब्रा० 4 6 7 1 त्रयी व विद्या ऋचो यजुषि सामानि।
  तै० ब्रा० 1 2 1 26 ऋच सामानि यजुषि।

3 सत्यव्रतसामश्रमी, वेदत्रयी परिचय पृष्ठ 1

4 नि० 1 10 पर दुर्गवत्ति 1, सुखग्रहणाय व्यासेन समाम्नातव त।

5 महा० 1 54 5 विव्यासैक चतुर्धा यो वेद वेदविदा वर।
  1 57 73 विव्यास वेदायस्माच्च तस्मात व्यास इति स्मत।

6 रा० 1 17 20 बभूव परम प्रीतो वेदैरिव पितामह। पाठान्तर-देव रिव

7 तत्रैव 1 64 15 क्षत्रवदविदा श्रेष्ठ।

8 (भू०) क्षत्रियाणा शातिपुष्टयादि प्रयोजनाथवणवेद तद्विदा श्रेष्ठ।

9 अथव० 4 35 6 यस्मिनवेदा निहिता विश्वरूपा।

शब्द मन्त्रपरक है। 'रामायण' में प्रयुक्त 'त्रयो मन्त्रा'[1] पद त्रिविध मन्त्रों का सूचक है। 'त्रयी' पद विद्या का विशेषण तथा स्त्रीलिंग है। 'अथर्व' का अन्तर्भाव मन्त्र त्रयी में हो जाता है। 'सायण' ने भी वेदों का त्रित्व मन्त्र परक माना है।[2] वेदचतुष्टय में भी ऋग्यजु साम से भिन्न मन्त्र नहीं है। षड्गुरुशिष्य ने वेदचतुष्टय में त्रिविध मन्त्रों को माना है।[3] 'जयतभट्ट' ने स्पष्ट किया है कि 'अथर्व-वेद' में ऋगादि के अतिरिक्त अन्य मन्त्र नहीं है।[4] 'मार्कण्डेय-पुराण'[5] में प्रयुक्त 'त्रयी' पद की व्याख्या में सप्तशती की चतुर्धरीटीका में 'अथर्व' का अन्तर्भाव 'वेदत्रयी' में माना है।[6] मन्त्रदृष्टि से 'त्रयी' पद में अथर्व-वेदानुप्रवेश है।[7] 'ऋग्वेद'[8] में ही चार वेदों का उपन्यास देखते हुए, यह मानना असंगत हो जाता है कि 'त्रयी' पद में अथर्व का अन्तर्भाव नहीं है। चार ऋत्विजों के विभिन्न कर्मों का उल्लेख भी ऋग्वेद में प्राप्त होता है।[9] 'छान्दोग्योपनिषद्'[10] में वेदों के नाम निर्देश करते हुए ऋक् यजु, साम तथा अथर्व यह क्रम बतलाया गया है। वैदिक व्यवहार के अनुसार 'अथर्व-वेद' को चतुर्थ कहा जाता है।

'त्रयी' में पूर्वोक्त मन्त्रदृष्टि के अनुसार ऋगादि मन्त्रात्मक अथर्व-वेद का अनुप्रवेश है। 'त्रयी' पदलक्ष्य मन्त्र श्रौतयज्ञार्थ ही है—यह भी न्यायतः सिद्ध होता है। यहां अनुमान किया जाता है कि 'अथर्व-वेद' का प्राचीनतम रूप श्रौतयज्ञानुष्ठान के ही किसी अंश को पूर्ण करता था। सम्भवतः उस समय 'ब्रह्मा' ऋत्विक् अथर्व वेद को यज्ञीय शान्ति क्रम में ही प्रयोग करता था। उस समय अथर्व का

---

1 रा० 7 5 9 त्रयो मन्त्रा इवाश्रुग्रा (नि० सा०)

2 ऋ० भा० भू०, पृष्ठ 76 एतमेव मन्त्रावान्तरविशेषमुपजीव्य वेदानामग्वेदो यजुर्वेद सामवेद इति त्रैविध्य सम्पन्नम्।

3 ऋक्सर्वानुक्रमणी की वेदार्थदीपिका नाम्नी टीका।

4 न्यायमंजरी, पृष्ठ 236, अन्ये पुन ऋक्प्रचुरत्वात्प्रविरलयजुर्वाक्यत्वादगीयमानसामम न्त्रावशाच्च ऋग्वेदमेवाथर्ववेदमाचक्षत। अयमपि पक्षोऽस्तु न कश्चित विरोध।

5 मा० पु० 84 9

6 अथर्वणस्तु शान्तिपौष्टिकाभिचारिकात्मकतया एतषु अन्तर्भावात्पृथङनाभिधानात्।

7 अ० भा० भू०, पृष्ठ 119, ननु यज्ञ व्याख्यास्याम। स त्रिभिर्वेदैर्विधीयते' इति स्मरणात ऋक्यजु साम्नामेव फलवत्कर्मशेषत्व अवसीयते।

8 ऋ० 8 53 3 चत्वारि शृंगा त्रयोऽस्य पादा।

9 तदेव 10 71 11

10 छा० उ० 7 1 2 ऋग्वेदो यजुर्वेदो सामवेद आथर्वण चतुर्थ।

अथर्व का राजपुरोहिता के साथ संबंध नहीं था, यह संबंध अवान्तर काल में हुआ। अथर्ववेद के ब्रह्मज्ञान प्रतिपादक अंश के कारण यह दार्शनिक मुनि सम्प्रदाय में प्रचलित हुआ। इसके पश्चात् यह वेद भी जनसमुदाय में प्रचलित हो गया। जन समाज में प्रचलित नानाविध विश्वास और आदि समाज में प्रचलित अभिचार कर्म भी इसमें अनुप्रविष्ट हुए। जहां अन्य वेद पारलौकिक फल देते हैं वहां अथर्ववेद इहलौकिक फल देता है।[1] रामायण में ऋष्यशृंग अथर्वमन्त्रों का प्रयोग दशरथ के पुत्रेष्टि-याग में पुत्र प्राप्ति के लिए करते हैं।

ऐसा भी अनुमान किया जाता है कि संहिता प्रणयन से पहले वेद इतस्ततः बिखरे हुए थे, उनका संहनन नहीं हुआ था। वेद का एक व्यवस्थित शास्त्र के रूप में अध्ययन-अध्यापन नहीं होता था। इस अवस्था को लक्ष्य कर महाभारत के सत्ययुग वर्णन में 'न सामयजुर्वर्ण'[3] कहा गया है। यह स्थिति 'एकवेदात्मक' थी ऐसा गौण रूप में कहा जा सकता है। वस्तुतः प्रचलित वेदसंहिताओं के निर्माण से पहले भी वेदसंहिताएं थीं प्रचलित ऋग्वेद से पहले भी सामादि की प्रसिद्धि हो चुकी थी यह निश्चित है। वैदिक ग्रन्थों में भी 'वेद' शब्द का बहुवचनान्त प्रयोग हुआ है[4]।

6 वेदों की शाखाएं

वेदों की शाखाओं के विषय में रामायण में पर्याप्त सामग्री नहीं मिलती। वाल्मीकि ने वसिष्ठाश्रम को ब्रह्मकल्प महात्माओं से युक्त बतलाया है[5]। 'गोविंदराज' के अनुसार 'ब्रह्मकल्प' का अर्थ वेदशाखा विभागकर्त्ता है[6]। 'ब्रह्म' शब्द का अर्थ वेद है। शाखाओं के लिए विकल्पक शब्द का प्रयोग विष्णु-पुराण में भी मिलता है[7]।

---

1 रामशंकर भट्टाचार्य, पुराणगत वेदविषयक सामग्री का समीक्षात्मक अध्ययन, पृष्ठ 118

2 रा० 1 14 2 इष्टिं तेऽहं करिष्यामि पुत्रीयां पुत्रकारणात् ।
अथर्वशिरसि प्रोक्तैर्मन्त्रैः सिद्धां विधानतः ।।

3 महा०, वनपर्व 149 14

4 अथर्व० 4 35 6 यस्मिन् वेदा निहिता विश्वरूपाः ।
तदेव 19 9 12 लोका वेदाः सप्तऋषयः ।
तै० सं० 7 5 11 2 वेदेभ्यः ।
गो० ब्रा० 1 1 16 सर्वांश्च वेदान् ।

5 रा० 1 50 26 सततं संकुलं श्रीमद्ब्रह्मकल्पमहात्मभिः । (म० वि०)

6 (भू०) ब्रह्मकल्पः —वेदशाखाविभागकर्त्तारः इति ।

7 वि०पु० 3 6 15 संहितानां विकल्पकाः ।

ये संहिताएं प्राचीन है। इस कारण देश, व्यक्ति तथा अध्ययन-अध्यापन मे अंतर से पाठ भेद हो गए। मन्त्रो की संख्या मे न्यूनाधिक्य हुआ। शाखा भेद के कारण हैं—आचार्यों की प्रवृत्ति में भिन्नता, देश-काल के भिन्न भिन्न अनुरोध तथा अपेक्षाएं। इन कारणों से अनुष्ठानो और कार्यों में पृथकता होती चली गई। मूल संहिता एक होने पर भी उसकी अनेक शाखाएं बनी[1]। 'भागवत पुराण' में शाखाओ की उपमा तरुशाखाओ से दी गई है[2]। इसका तात्पर्य है कि मूलभूत संहिता के आश्रय से अन्य शाखाओ का प्रणयन किया गया। शाखा शब्द समग्र वेदवाची है एक देशवाची नही। जैसे वृक्ष की शाखाएं उसकी अवयवभूत होती हैं और वृक्ष अवयवी वैसी स्थिति 'वेदशाखा' की नही होती। वेदविशेष की शाखा विशेष शाखान्तरनरपेक्ष्य भाव से स्वयं में समग्रवेद होती है, न कि वेद का अवयव मात्र। यज्ञ की आवश्यकता को देखकर व्यास जी ने चार शिष्यो को वेद पढाया। पैल को ऋग्वेद, जैमिनि को साम, वैशम्पायन को यजु और दारुण सुमंतु मुनि को अथर्व का अध्ययन कराया[3]। इन मुनियों ने गुरुमुख से अधीत संहिताओं का अपने शिष्यो प्रशिष्यों मे खूब प्रसार किया। इस प्रकार वेदकल्पतरु शाखासंपन्न बनकर विपुल विस्तार को प्राप्त हुआ[4]। 'महाभाष्य' के अनुसार ऋषियो को ऋग्वेद की 21, यजुर्वेद की 101, सामवेद की 1000 तथा अथर्ववेद की 9 शाखाओं का ज्ञान था[5]। इन 1131 शाखाओं में से अधिकतर अध्ययन-अध्यापन के अभाव में विस्मृति के गर्त में लीन हो गई। चरण व्यूह[6] में गणना भिन्न है। यहां ऋग्वेद की आश्वलायनी, शाखायनी, शाकल, बाष्कल और माडूकायनी पांच शाखाएं कही गई है। इनमे केवल शाकल शाखा ही पूर्ण उपलब्ध है, बाष्कल शाखा अपूर्ण है और अन्य शाखाओ का उल्लेख मात्र मिलता है। शाकल शाखा के प्रवर्तक शाकल ऋषि है।

---

1 सत्यव्रत सामश्रमी, वेदत्रयी परिचय, पृष्ठ 32

2 भा० पु० 2 7 36 वेदद्रुम विटपशो विभजिष्यति स्म।

3 भा० पु० 1 4 24 तत्रग वेदधर- पैल सामगो जैमिनि कवि।
वैशम्पायन एवको निष्णातो यजुषामुत॥
अथर्वांगिरसामासीत् सुमंतुर्दारुणो मुनि।

4 पारसनाथ द्विवेदी वैदिक साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 29

5 महाभाष्य पस्पशाह्निक एकशतमध्वर्युशाखा। सहस्रवर्मा सामवेद। एक विंशतिधा बाह्वृच्यम। नवधाथर्वणो वेद।

6 चरणव्यूह खण्ड 1

'महाभाष्य'[1] के अनुसार यजुर्वेद की 101, सर्वानुक्रमणी[2] एव कूर्म-पुराण[3] के अनुसार 100 शाखाए हैं। शौनक के अनुसार इसकी 86 शाखाए हैं। इनमे से द्वादश भेदो का नाम चरक हैं—चरक, आह्वरक, कठ, कपिष्ठलकठ, आष्ठल कठ चारायणीय, वारायणीय वार्तान्तवेया, श्वेताश्वर, औपमन्यव, और मैत्राय णीया। ये सात भेद मैत्रायणीय हैं—मानव, दुन्दुभा ऐकेया, वाराहा, हारिद्रवया, श्यामा और शामायणीया। ये मन्नह शाखाए वाजसनेय हैं—जावाला, बौधेया, काण्व माध्यंदिन, शापीया तापनीया कापाल पौण्ड्रवत्सा, आवटिका परमा वटिका, पाराशरीया वरेया, वैनेया, औधया, गालव, वजक और कात्यायनीया। दो भेद तत्तिरीयक के हैं—औख्या और काण्डिकेया। काण्डिकेया के भी पाच भेद हैं—आपस्तम्बी, बौधायनी, सत्यापाढी, हिरण्यकेशी और औधेयी। इसके अतिरिक्त यजुर्वेद के 44 उपग्रथ हैं।[4] आजकल कृष्ण-यजुर्वेद की चार-तत्तिरीय, मैत्रायणी कठ और कपिष्ठलकठ शाखाए तथा शुक्ल-यजुर्वेद की दो शाखाए 'वाजसनेयी' तथा काण्व' उपलब्ध हैं।

'सामवेद की आसुरायणीया, वासुरायणीया, वार्तान्तवेया और प्राञ्जला, ऋग्वणभेद—प्राचीनयोग्या और ज्ञानयोग्या है। राणायनीया के नौ भेद हैं—राणाय नीया, शाट्यायनीया, सत्यमुद्गला खल्वला, महाखल्वला, लागला कौथुम गौतमा, जैमिनीया।[5] इनम स तीन शाखाए विद्यमान हैं जिनम गुजरात म कौथुम, कर्णाटक म जमिनीया और महाराष्ट्र म राणायनीया प्रचलित है।[6]

अथर्ववेद की नौ शाखाए हैं—पप्पल, दात प्रदात स्नात, स्नौत, ब्रह्मदावल, शौनक देवदर्शी और चारणविद्या।[7] सम्प्रति इनम स पप्लाद और शौनक उप लब्ध हैं।

रामायण' म यजुर्वेद की तीन शाखाओ के नाम आए है—तत्तिरीय, कठ और कालाप।

'वाल्मीकि' ने तत्तिरीय शाखा के किसी आचाय का उल्लख किया है।[8] गुरु वशम्पायन के शाप से भयभीत होकर याज्ञवल्क्य ने स्वाधीत यजुषो का वमन कर

---

1 महाभाष्य, पस्पशाह्निक एकशतमध्वर्युशाखा।

2 षड्गुरुशिष्य, सर्वानुक्रमणी-वृत्ति, यजुरेकशताध्वकम्।

3 कू० पु० 49 51 शाखाना तु शतेनाथ यजुर्वेदमथाकरोत।

4 चरण व्यूह, खड 2

5 चरण व्यूह खड 3

6 सत्यव्रत सामश्रमी पूर्वोद्धत ग्रथ, पृष्ठ 34

7 चरण व्यूह, खड 4

8 रा० 2 29 13 आचार्यस्तैत्तिरीयाणामभिरूपश्च।

दिया। वशपायन के कुछ शिष्यो ने आदेश पाकर तितिरि का रूप धारण कर वात यजुषो का भक्षण कर लिया। याज्ञवल्क्य ने सूय को प्रसन्न कर शुक्ल-यजुषो की उपलब्धि की।[1] यह कथा रहस्य गभक है। सत्यव्रत सामश्रमी ने इसका रहस्य दिखाया है। आध्र प्रदेश म रहने वाले तित्तिर्यादि सज्ञक आचार्यो ने मत्रो के साथ कर्मोपयोगी ब्राह्मणवाक्या का पाठकर इस सहिता का निर्माण किया। जिस प्रकार भुक्तअन्न तथा व्यजन वात होने पर मिश्रित हो जाते हैं, उसी प्रकार 'तत्तिरीय-सहिता' मत्र-ब्राह्मणो का मिश्रण है।[2] यह वात यजुषो का सग्रह है। अत उच्छिट होने के कारण इस सहिता का नाम 'कृष्णयजुर्वेद' हो गया। इसका प्रसार दक्षिण भारत म है। इसम रावणकृत भाष्य का भी मिश्रण है। याज्ञवल्क्य न सूय की अराधना करके उनके अनुग्रह से शुक्ल-यजुषो को प्राप्त किया। सूय ने वाजि का रूप धारण कर दिन क मध्य म याज्ञवल्क्य को उपदेश दिया, इसी कारण उसका नाम 'वाजसनेयी सहिता' पडा। दिन के मध्य म ही उपदेश होने के कारण इसका अपर नाम 'मध्यदिन-सहिता' पडा तथा सूय के प्रकाश म उपदिष्ट इसका वण शुक्ल होने के कारण इसका नाम शुक्ल-यजुर्वेद है[3]। मैकडानल महोदय का कथन है कि 'वाजसनेयी-सहिता' मे केवल वे ही मत्र एव प्रयोग सकलित हैं जो शुद्ध यज्ञ से सबधित हैं। तत्तिरीय-सहिता' म मत्र-समुदाय विनियोगकल्प एव ब्राह्मण भाग का एकत्र सग्रह है। अत इसी सकीण रूप क कारण इसे कृष्ण-यजुर्वेद' कहते है।[4] विण्टरनित्स का कथन है कि शुक्लयजुर्वेद म जहाँ मत्र हैं वहा कृष्ण यजुर्वेद मे मत्रो के साथ-साथ यज्ञ प्रक्रिया तथा उस पर विवेचन भी है। क्योकि अध्वयु के लिए सगृहीत प्राथना पुस्तिकाओ म यज्ञीय कर्म-काड पर विस्तृत विचार करना आवश्यक था। तदनुसार यजुर्वेद की प्राथना-पुस्तको मे निर्देश बाहुल्य असगत नहा ठहराया जा सकता और इस बात म सदेह क लिए अवकाश नही रहता कि 'कृष्ण-यजुर्वेद' की सहिताए 'शुक्ल-यजुर्वेद' से प्राचीनतर हैं जिसका पुन सपादन आगे चलकर मत्रभाग को पृथक करके 'शुक्ल यजुर्वेद के रूप मे कर दिया गया।[5] यह भी अनुमान है कि कृष्ण यजुर्वेद म अवदिक तत्त्वा का प्रवेश होने लगा याज्ञवल्क्य शुद्धि प्रेमी थे। उन्होने उस धारा का परित्याग करके विशुद्ध वदिक कर्मोपयोगी अन्य याजुष धारा का प्रवचन किया।[6] इन दोनो का महत्त्व

---

1 काण्व सहिता की सायणकृत भाष्यभूमिका, श्लोक 6 12

2 सत्यव्रत सामश्रमी, निरुक्तालोचनम्, पृष्ठ 179

3 पारसनाथ द्विवेदी, पूर्वोद्धृत ग्रथ, पृष्ठ 96 97

4 मैकडानल ए हिस्ट्री आफ सस्कृत लिटरेचर, पृष्ठ 164

5 विण्टरनित्स ए हिस्ट्री आफ इडियन लिटरेचर, पृष्ठ 126

6 रामशकर भट्टाचार्य, पूर्वोद्धृत ग्रथ, पृष्ठ 288

पृथक्-पृथक वेदा के समान है। इसीलिए 'तत्तिरीय-सहिता' की व्याख्या के उपरात सायण ने 'कण्व-सहिता' की व्याख्या की अन्यथा 'यजुर्वेद' का भाष्य अपूर्ण समझा जाता[1]। 'महाभारत' म 'वशंपायन' के पूवज तित्तिरि का उल्लेख है[2] तथा जैमिनि पल और सुमतु के साथ तित्तिरि और याज्ञवल्क्य का उल्लेख है[3]। इस साहचय स तित्तिरि और याज्ञवल्क्य की समकालीनता सिद्ध होती है। 'तत्तिरीय शाखा' का 'लौगाक्षिस्मृति' मे महाशाखा कहा गया है।[4] 'चरण-व्यूह' के अनुसार मन्त्रब्राह्मणयुक्त त्रिगुण वेद जहाँ पढा जाता है उसे यजुर्वेद मानना चाहिए अन्य तो केवल शाखाए मात्र हैं।[5] इसस 'कृष्ण-यजुर्वेद' की महत्ता का अनुमान किया जा सकता है।

'रामायण' म कठ और कालाप शाखा के आचाय का भी उल्लेख है।[6] पतञ्जलि के अनुसार दोनो का अध्ययन गाव गाव म होता था[7] 'अग्नि पुराण' म यह नाम याजुषशाखानामगणना मे मिलता है।[8] 'कठशाखा' 27 प्रधान शाखाओ म अन्यतम है। शाखाकार कठ' का उल्लेख पाणिनि' न 'अष्टाध्यायी' म किया है।[9] कठ ऋषि मध्यदेशीय परपरा म अन्यतम थे। माध्यम नाम मे विख्यात काठक मध्य भारत म निवास करत थे। चरक शाखा के अतगत कठ, प्राच्यकठ और कपिष्ठलकठ का उल्लख मिलता है। कपिष्ठल' एक ऋषि है।[10] दुर्गाचाय न अपने को कपिष्ठल-वासिष्ठ' कहा है।[11] कपिष्ठल-कठ भी एक शाखा है जो अपूण रूप म मिलती है। कठ-सहिता और मत्रायणी-सहिता म बहुत कम अतर है। दाना म ही अनुवाक और मन्त्रा का सख्या समान है। दाना के अत म अश्वमेध-भाग का वणन है, किंतु 'कठ-सहिता' म उच्चारण चिह्न है जबकि मैत्रायणी सहिता म

---

1 काण्वसहिता की सायणकृत भाष्यभूमिका, पृष्ठ 105

2 महा०, शातिपव, 336 9

3 तदेव, सभापर्व, 4 11 12

4 लौगाक्षिस्मृति पृष्ठ-243

5 चरण व्यूह खड 2 मन्त्रब्राह्मणयोर्वेद त्रिगुण यत्र पठ्यत ।
यजुर्वेद स विज्ञेय अन्यशाखातरा स्मता ॥

6 रा० 2 32 18 कठकालाप बहवोदण्डमाणवा । (म० वि०)

7 महाभाष्य 4 4 101 ग्रामे-ग्राम काठक कापालक प्रोच्यत।

8 अ० पु० 271 4

9 अ० 4 3 107 कठचरकाल्लुक।

10 तत्रैव 8 3 91 कपिष्ठलोगोत्रे।

11 नि० 4 4 पर वृत्ति, अह च कापिष्ठलो वासिष्ठः।

उच्चारण चिह्न नही है।

7 वेदोत्पत्ति

'वेद का स्वरूप 'सत्यात्मक' बताया जा चुका है। अत वेद शब्दप्रमाणस्वरूप है। मनुष्य जाति को वद किस प्रकार मिले, इस विषय म कई सिद्धात प्रचलित हैं जिनका विवरण प्राचीन ग्रथो म मिलता है। वेदो को न मानने वाले कुछ सम्प्रदाय एसे भी हैं जो वेदो को निदय पुरुषो और धूर्तों के बनाए मानते हैं। इनका प्रति निधित्व चार्वाक दशन करता है। 'सवदशन सग्रह' मे चार्वाक के सिद्धाता म वेद के तीन कर्त्ता बताए गए हैं—भण्ड, धूत और निशाचर।[1] वेदो म अश्वमेध मे वर्णित कायकलाप तथा जभरी, तुफरी, पपरीका, जेमना, मदेरू आदि अनथक शब्दो का प्रयोग है इसलिए चार्वाक ने इस धूर्तों की रचना माना है। 'रामायण' मे भी एक ऐसा मत सकेतित है जो चार्वाकमत से समानता रखता है। इसके अनुसार वेदो के कर्त्ता मेधावी पुरुष हैं[2], जो दूसरा के द्रव्य-हरण म कुशल-बुद्धि हैं।[3] ऐसे वचनो को स्वय 'रामायण' म नास्तिक कहा गया है।[4] ये वचन वेद विरुद्ध भी हैं।[5] आस्तिक दशनपरपरा वेदो को शब्दप्रमाणस्वरूप मानती है। चार्वाकमत म केवल प्रत्यक्ष ही प्रमाण है। वे अनुमान तथा शब्द प्रमाणो पर विश्वास नही करत, अत उन्ह वेदो पर कहा से विश्वास होगा। 'रामायण' मे प्रत्यक्ष तथा अनुभव-सिद्ध सुखसाधन को मानकर तथा परोक्ष कल्पित धम को छोडकर राम को राज्य ग्रहण करने के लिए बाध्य किया जाता है,[6] जिसे व स्वीकार नही करत। इसी सदभ म यह भी कहा गया है, कि अष्टका नाम पितदवत्य कम म प्रवत होने वाला मनुष्य कवल अन्न का नाश करता है क्योकि कोई भी मतक भोजन ग्रहण नही कर सकता। यदि पृथिवि पर स्थित मनुष्य के द्वारा खाया गया अन्न लोकातर स्थित मनुष्य तक पहुच जाया करता, तो प्रवास के लिए घर से निकले मनुष्य तक अन्न

---

1 सवदशनसग्रह, पृष्ठ 4, त्रयो वेदस्य कर्त्तारो भण्डधूतनिशाचरा ।
जभरी तुफरीत्यादि पण्डितानां वच स्मतम ॥

2 रा० 2 100 16 ग्रथा मेधाविभि कृता ।

3 (भू०) मेधाविभि —परद्रव्यहरणकुशलबुद्धिभि ।
(श०)—मधाविभि —पामरजनप्रतारेण जीवनोपायतया ।

4 रा० 2 109 39 मया नास्तिक-वागुदीरिता। (मं० वि०)

5 तदेव 2 101 6 क्रिया विधिविवर्जिताम ।

6 रा० 2 100 16 प्रत्यक्ष यत्तदातिष्ठ परोक्ष पृष्ठत कुरु।
(श०) प्रत्यक्षानुभवसिद्ध यत सुखसाधन तदेवानुतिष्ठ।
परोक्ष-सुखसाधन-कल्पित धम पृष्ठत कुरु।

पहुचाने के लिए भी ब्राह्मणो को ही भोजन खिलाकर काय सिद्ध हो जाया करता। प्रवासी के साथ भोजन बाधने की आवश्यकता ही न होती।[1] यह सभी शास्त्र बुद्धि मान् धूर्तों ने अज्ञानियो को मूख बनाकर अन्न व धन एकत्र करने के लिए लिख दिए हैं। इस मत के अनुसार वेदो का कर्त्ता पुरुष ही सिद्ध होता है।

जमिनि के अनुसार वेद' स्वत आविभूत हैं अपौरुषेय है।[2] मीमासा के मत मे ईश्वर की सत्ता है ही नही अत कर्त्ता ईश्वर को नही माना जा सकता।[3]

वेद के ईश्वरक्त कत्व के विषय म 'रामायण' म विवरण नही मिलता, किन्तु दो पद्यो म ब्रह्मा से वेदो क सबध का अनुमान लगाया जा सकता है।[4] 'वाल्मीकि' को ब्रह्मा से वेदो का पुत्रवत सबध अभिप्रेत था। बृहदारण्यकोपनिषत्' के एक वचन से स्पष्ट है कि वेद परमात्मा के निश्वास भूत हैं। जिस प्रकार पावक से छोटे छोटे अग्निकण निकलते है उसी प्रकार परमात्मा के निश्वास से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथव वेद प्रकट हुए। नित्यवाणीरूप वेदो को स्वयम्भू ने प्रकाशित किया।[5] 'शतपथ-ब्राह्मण' म लिखा है कि यदि प्रजापति से परे कोई वस्तु है वह 'वाक' ही है[6] इस प्रकार वेदो की अनादिता प्रतिपादित की गई है। वेदो का ब्रह्मा के मुख स आविभूत होना पुराणो को भी अभिप्रेत है।[7] हरिवश पुराण मे कुछ स्थलो पर ब्रह्मा स वेदोत्पत्ति का उल्लेख है। एक स्थल पर कहा है कि त्रिलोको की रचना के बाद ब्रह्मा न वेदमाता गायत्री की सष्टि की और गायत्री स वेदो की उत्पत्ति की जिन्हे ब्रह्मा ने एकत्र कर लिया।[8] एक अन्य स्थल पर कहा है कि

---

1 तदेव 2 100 13 अष्टका पितृदवत्य इत्येव प्रसतो जन ।
अन्नस्योपद्रव पश्य मतो हि किमशिष्यति ॥
2 100 14 यदि भुक्तमिहान्येन देहमन्यस्य गच्छति ।
दद्यात्प्रवसत श्राद्ध न तत्पथ्यशन भवत ॥

2 ज० सू० 1 1 27 32

3 *गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, वदिक विज्ञान और भारतीय सस्कृति, पष्ठ 45*

4 रा० 1 17 20 बभूव परम प्रीतो वेदरिव पितामह ।
2 14 49 वेदा साङ्गाश्च विद्याश्च यथा ह्यात्मभुव प्रभुम (म० वि०)

5 ब० उ० 2 4 10 स यथार्द्रैधाग्नेरभ्याहितात्पृथग्धूमा विनिश्चरन्त्येव वा अरेऽस्य महतो भूतस्त निश्वसितमेतदयदृग्वदो यजुर्वेद सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहास ।

6 श० ब्रा० 5 1 3 11 यदि व प्रजापते परमस्ति वागेव तत ।

7 वि० पु० 1 5 54 56, भा० पु० 1 2 34 37 मा० पु० 99 1 7

8 ह० पु० 3 14 25 ततोऽसजद्व त्रिपदा गायत्री वेदमातरम ।
अकरोच्चव चतुरो वेदा गायत्रीसम्भवान ॥

ससार के मोक्ष के लिए ब्रह्मा ने एक दिव्य [पुरुष उत्पन्न किया, उस दिव्य पुरुष ने अपने नेत्रो से ऋग्वेद तथा यजुर्वेद को, जिह्वा के अग्रभाग से सामवेद को तथा मूर्द्धा से अथर्व-वेद को उत्पन्न किया।[1] एक अन्य स्थल पर ब्रह्मा के ब्रह्मकम से वेदो को उत्पन्न करने का उल्लेख है।[2] वेदात-दर्शन मे वेदो को अपौरुषेय बतलाया गया है। 'बादरायण' ने परमात्मा को सभी वेदो का उद्गम-स्थल माना है, क्योकि वेद नित्य हैं।[3] प्रदीप के समान अर्थों के प्रकाशक ऋग्वेदादि का कर्ता ब्रह्मा के अतिरिक्त कोई नही हो सकता।[4] रचयिता अपनी रचना से अधिक ज्ञानवान होता है। अत ब्रह्मा ही वेदो का कर्त्ता सिद्ध होता है। 'बृहदारण्यकोपनिषद्' की दृष्टि म जो शब्द प्रधान ज्ञान है वह परमेश्वर से उद्भूत है। शब्द तो 'ब्रह्म' ही है। ऋग्वेदादि शब्द प्रधान है।[5] शब्द के ब्रह्मत्व का प्रतिपादन भर्तृहरि ने अपने वाक्यपदीय म किया है। अनादि और निधनरहित अविनाशी शब्दस्वरूप जो 'ब्रह्म' है, वह अर्थ के भाव से विवर्त को प्राप्त होता है, उसी स जगत की उत्पत्ति हुई है। इस प्रकार नानारूपात्मक जगत की उत्पत्ति शब्दरूपात्मक-ब्रह्म से होती है।[6]

ऋग्वेद क एक मन्त्र से सकेत मिलता है कि तपस्या करते हुए ऋषियो को वेद ज्ञान मिला।[7] अति-सूक्ष्मार्थों के जानने वाले ऋषियो ने वेदरूपी वाक् को पाया। पहले ऋषियो के हृदय मे ज्ञान का प्रादुर्भाव हुआ। उन्होंने उस छदोबद्ध किया, वाक्य रूप म मुनियो को पढाया, मुनियो ने मनुष्यो मे प्रचार किया।[8] अत रामायण मे ब्रह्मा के मुख से वदनि सृति का समर्थन है।

---

1 ह० पु० 3 17 48 नेत्राभ्या जनयदेव ऋग्वद यजुषा सह।
सामवद च जिह्वाग्रदथर्वाण च मूर्द्धत ॥

2 तदेव 3 36 11 ऋक्सामाथर्वयजुषश्चतुरो भगवान्प्रभु।
चकार निखिलान् वदान्ब्रह्मयुक्तेन कर्मणा ॥

3 ब्र० सू० 1 1 3 शास्त्रयोनित्वात्।

4 तदेव 1 1 3 पर भाष्य, महद् ऋग्वेदाद शास्त्रस्य अनेक विद्या।
स्थानोपबृहितस्य प्रदीपवत सर्वार्थावद्योतिन सर्वज्ञकल्पस्य योनि कारण ब्रह्म।

5 बृ० उ० 4 5 10 सर्वेषा वेदाना वागेकायनम्।

6 वा० प० 1 1 अनादिनिधन ब्रह्म शब्दतत्त्व यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थ भावेन प्रक्रियाजगतायत ॥

7 ऋ० 10 71 3 तामन्वविदनृषिषु प्रविष्टाम।

8 नि० 2 11, 1 20 साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवु तऽवरेभ्यो साक्षात्कृत धर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान्सप्रादु। उपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे बिल्मग्रहणायेम ग्रन्थ समाम्नासिषु। वेद च वेदागानि च।

के नाम आए हैं। दशरथ ने पूर्व दिशा का राज्य होता को, पश्चिम का अध्वर्यु को, दक्षिण दिशा का राज्य ब्रह्मा को और उत्तर दिशा का राज्य उद्गाता को दक्षिणा के रूप मे दिया था[1] जिसे ऋत्विजो ने ग्रहण नही किया था।

ऋक्सहिता—'ऋग्वेद' शब्द का प्रयोग 'रामायण' म 'ऋक्सहिता' के लिए मिलता है।[2] ऋग्वेद के लिए 'प्रपाठक चतुःषष्टि' का प्रयोग 'कुमारिल' ने किया है।[3] 'वात्स्यायन' ने ऋग्वेद के चौसठ अध्यायो का उल्लेख किया है।[4] 'भागवत पुराण' मे 'बह्वचसहिता' शब्द का प्रयोग है।[5] व्यास ने पल का इस सहिता का प्रवचन किया[5] यह सहिता ऋक्समुदाय रूप है, अत यह 'बह्वच' कहलाता है।[6] 'निरुक्त' म इस वेद के लिए 'दाशतयी' शब्द का व्यवहार है।[7] शकर ने 'दाशतयी' शब्द का प्रयोग किया है।[8] 'रामायण' मे इस वेद से सबद्ध ऋत्विक होता को पूर्व दिशा का राज्य देने का उल्लेख है।[9] पुराणो म अनेकत्र ब्रह्मा के पूर्वमुख से 'ऋग्वेद' की उत्पत्ति कही गई है।[10] 'तैत्तिरीय-ब्राह्मण' म भी पूर्वदिक से ऋक का सबध प्रतिपादित किया गया है।[11]

'रामायण'[12] मे भी ऋग्वेद के 'पुरुष-सूक्त'[13] के समान विराट पुरुष के मुख से ब्राह्मण, भुजाओ से क्षत्रिय दोनो जघाओ स वश्य और चरणो स शूद्र की उत्पत्ति कही गई है।

---

1 तदेव 1 13 36 37 प्राची होत्रे ददौ राजा दिश स्वकुलवर्धन ।
अध्वर्यवे प्रतीची तु ब्रह्मणे दक्षिणा दिशम् ॥
उद्गात्रे च तथोदीचीम ।

2 रा० 4 3 38 नानृग्वेद विनीतस्य । (म० वि०)

3 तन्त्रवार्तिक, पृष्ठ 172

4 कामसूत्र 2 2 3

5 भा० पु० 12 6 60 62

6 तत्रैव 1 4 24

7 नि० 12 40 ख०

8 शारीरकभाष्य 1 3 30 दाशतय्यो दृष्टा ।

9 रा० 1 13 36 प्राची होत्रे ददौ ।

10 भा० पु० 3 12 37, वि० पु० 1 5 52, कू० पु० 1 7 57

11 त० ब्रा० 3 12 9 1 ऋचा प्राची महतीदिगुच्यत ।

12 रा० 3 13 30 मुखतो ब्राह्मणा जाता उरस क्षत्रियास्तथा ।
उरुभ्या जज्ञिरे वश्या पद्भ्या शूद्रा इति श्रुति ॥

13 ऋ० 10 90 13 ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्य कृत ।
ऊरू तदस्य यद्वश्य पद्भ्यां शूद्रोऽजायत ॥

यजु संहिता—'रामायण' मे 'यजुर्वेद' शब्द का प्रयोग है।[1] रामचद्र जी यजुर्वेदी थे।[2] 'यजुर्वेद' का सबध याजन से है।[3] 'यास्क' ने यजन के कारण 'यजु' माना है।[4] 'शतपथ-ब्राह्मण' का वाक्य भी इसी मत का द्योतक है।[5] यज्ञो का सबध अन्य वेदो की अपेक्षा 'यजुर्वेद से अधिक है। 'सायण ने यज्ञो म यजुर्वेद की प्रधानता बतलाई है।[6] इसी कारण यह वेद शीर्षभूत है।[7] 'अध्वयु नामक ऋत्विक् से सबधित होन के कारण इसका नाम आध्वयववेद भी है।[8] पुराणो के अनुसार इस सहिता का निर्माण व्यास शिष्य ने द्वापरात म किया था।[9] वेदो मे दो सप्रदाय हैं—ब्रह्म सप्रदाय तथा आदित्य-सप्रदाय। आदित्य शुक्लयजु के नाम से विख्यात हैं और याज्ञवल्क्य द्वारा आम्यात है।[10] कृष्णयजु ब्रह्मसप्रदाय का प्रतिनिधि है। शुक्लत्व और कृष्णत्व भेद उसके स्वरूप पर आधारित है। 'शुक्लयजुर्वेद' मे अनुष्ठाना के लिए केवल मत्रा का सकलन है, जबकि कृष्णयजुर्वेद मे तन्नियोजक ब्राह्मणों का भी मिश्रण है।[11] दोना मे ऋड्म त्रा का भी सकलन है। समवत याज्ञिक सुविधा के लिए अन्य आचार्यों ने ऋड्म त्रा का अनुप्रवेश इस सहिता म किया। 'रामायण' म इसके शुक्लत्व और कृष्णत्व का उल्लेख नही है। इससे सकेत मिलता है कि 'वाल्मीकि' के समय यह विभाग नही हुआ था। यह पहले ही बताया जा चुका है कि 'कृष्णयजुर्वेद' शुक्लयजुर्वेद से प्राचीनतर है और इसमे रावणकृतभाष्य का भी मिश्रण है।

भागवत-पुराण मे 'धनुर्वेद को 'यजुर्वेद' का उपवद कहा गया है।[12]

---

1 रा० 4 3 38 यजुर्वेदधारिण । (म० वि०)

2 तदेव 5 33 14 यजुर्वेदविनीतस्य वेदविद्भि सुपूजित ।

3 वि० पु० 3 4 11 पर श्लोकटीका, याजनाद्धि यजुर्वेद इति शास्त्रनिश्चय ।

4 नि० 7 12 ख० यजुयजत ।

5 श० ब्रा० 4 6 7 13 यजो ह व नामतद यद्यजुरिति ।

6 ऋ० भा० भू०, पृष्ठ 11, आध्वयवस्य यज्ञेषु प्राधा यात्।

7 तै० उ० 8 2 तस्य यजुरेव शिर. ।

8 तै० स० की सायणकृत भाष्यभूमिका, पृष्ठ 7

9 कू० पु० 1 52 18, वि० पु० 3 4 13, ब्रह्मा० पु० 1 34 22-24, वा० पु० 60 22 23

10 श० ब्रा० 14 9 5 33 आदित्यादिनामानि शुक्लानि यजूंषि याज्ञवल्क्येनाख्यायन्त ।

11 प्रस्तुत शोधप्रबन्ध 35 36

12 भा० पु० 3 12 22

महिदास ने 'धनुर्वेद' का अर्थ 'युद्धशास्त्र' माना है।[1] 'रामायण' में भी 'यजुर्वेद' के साथ 'धनुर्वेद' का उल्लेख सम्भवत इसी तात्पर्य से है।[2]

सामसंहिता— रामायण' म 'सामवेद'[3] पद के प्रयोग के अतिरिक्त 'सामवेदी' के लिए 'सामग' पद का व्यवहार हुआ है।[4] पुराणो म एतदर्थ 'छान्दोग' पद का व्यवहार है।[5] 'भागवत-पुराण' म छन्दोगसंहिता पद का प्रयोग 'सामवद' के अर्थ म हुआ है।[6] 'छदस' शब्द का 'सामवद' के साथ घनिष्ठ सम्बध है। गान छन्द का ही हो सकता है इसलिए साम को छद कहा जाता है। गेय पदो को साम कहते है। गाए जाने पर ऋचाएं ही साम हैं। ऐसी ऋचाओं का सकलन 'सामवेद' म किया गया है। इसका स्थान वदिक सहिताओ म नितात गौरवमय है। 'गीता' म श्रीकृष्ण ने स्वय अपना स्वरूप सामवेद बतलाया है।[7] 'ऋग्वेद' म 'सामवेद' की प्रशसा की गई है— जो मनुष्य जागरणशील है उसे साम प्राप्त है,[8] जो निद्रालु है उसे साम कभी प्राप्त नही होते। 'अथववेद' मे साम को परब्रह्म का लोमभूत कहा है।[9] ऋग्वेद के एक मन्त्र म पक्षियो का गान सामगान के समान मधुर बतलाया गया है।[10] अगिराओ के साम गान का उल्लेख मिलता है।[11] सामसहिताओ के मत्र रचना की दृष्टि से ऋक हैं। उन मत्रो के गान स्वतत्र रूप से अधीत और अध्यापित होते हैं, अत गान ही साम पद वाच्य हैं, मत्र नही। मत्र की दृष्टि से सामवेद श्रेष्ठ नही हो सकता। साम का रस उद्गीथ है उसकी महत्ता को लक्ष्यकर 'सामवेद' को श्रेष्ठ कहा जाता है। 'सामवेद' को सहस्रशाखासम्पन्न मानकर विपुलता की दृष्टि से भी 'सामवेद' की सवश्रेष्ठता सिद्ध होती है। साम सभी वेदो का रस है।[1]

---

1 कोदण्डमण्डन 1 3
2 रा० 5 33 14 यजुर्वेदविनीतश्च वेदविद्भि सुपूजित ।
धनुर्वेदे च वेदेषु वेदागेषु च निष्ठित ॥
3 तदेव 4 3 38 ना सामवदविदुष । (मै० वि०)
4 तदेव 2 70 18 तत्रसामानि सामगा ।
5 ग० पु० 30 43, व० पु० 39 52 ब्रह्मा० पु० 2 19 24
6 भा० पु० 12 ■ 53 पर श्रीधरी टीका, छद सुगीयमानत्वाच्छ दोगाख्या सहिताम ।
7 श्रीमद् भगवतगीता 10 42 वेदाना सामवेदोऽस्मि ।
8 ऋ० 5 44 14 यो जागार तमु सामानि यन्ति ।
9 अथव० 9 6 2 सामानि यस्य लोमानि ।
10 ऋ० 2 143 2 उद्गातेव शकुने साम गायसि ।
11 तदेव 1 107 2 अगिरसा सामभि स्तूयमाना ।
12 श० ब्रा० 1■ 8 323, गो० ब्रा० 2 5 3 सर्वेषा वेदाना रसो यत्साम ।

'उद्गातकम' 'सामवेद' का विषय है।[1] 'भागवतपुराण' मे 'सामवेद' के उपयोग के विषय म 'स्तुतिस्तोम' पद प्रयुक्त है।[2] स्तुति का अथ है सगीत और स्तोम का अथ है स्तुत्यथ ऋक्समुदाय। स्तोम त्रिवृत सप्तदशादि होते हैं जिनका प्रयोग 'उदगाता' करता है। 'भागवत पुराण' मे स्तोत्रस्तोम को छदोमय कहा गया है।[3] स्तोत्रस्तोम' 'वहदरथन्तर' आदि सामो से स्तुत होता है। स्तोत्र का अथ बहदादि साम होता है। रावण न सामपरिपूण विविध स्तोत्रों का प्रयोग किया था।[4] 'रामायण' म सामा के यथाकाल मे गाए जाने का उल्लेख है।[5] दशरथ के दाह सस्कार के अवसर पर यथाशास्त्र सामो को गाया गया था।[6] इससे अंतिम सस्कार के समय सामगान की परपरा का आभास होता है।

ग'धववेद' को 'सामवेद' का 'उपवेद' माना गया है।[7] 'गधव-वेद' का तात्पय सगीतशास्त्र' से है। भरत ने नाटयशास्त्र' म सगीत का मूल 'सामवेद' को माना है।[8] लव तथा कुश गायन म निपुण थे गधव के ज्ञाता थे ताल और लय के स्वर को जानत थे।[9]

अथवसहिता—'अथवन' शब्द वेदविशेष का वाचक है। 'रामायण' म प्रयुक्त 'अथवशिरस' शब्द से इसी का सकेत है।[10] 'क्षत्रवेद' शब्द का प्रयोग भी 'अथववेद' के लिए किया गया है।[11] पुराणा मे 'आथवण' पद अथववेदवित अथवा 'अथवमत्र' के लिए किया गया है।[12] अथर्वा द्वारा प्रोक्त वेद 'आथवण' है।[13] 'अथर्वा' एक ऋषि का

---

1 ला० श्रौ० सू० 4 10 उद्गाता सामवेदेन।

2 भा० पु० 3 12 37

3 भा० पु० 6 8 29 स्तोत्रस्तोम छदोमय'।

4 रा० 7 16 34 सामभि विविध स्तोत्र प्रणम्य स दशानन । (नि० सा०)

5 तदेव 4 27 34 अयमध्यायसमय सामगानामुपस्थित ।

6 तदेव 2 70 18 जगुश्च त यथाशास्त्र तत्र सामानि सामगा ।

7 भा० पु० 7 12 38

8 ना० शा० 1 17 सामभ्यो गीतमेव च।

9 रा० 1 4 9 तौ तु गान्धवतत्वज्ञौ मूर्च्छनास्थानकोविदौ।
भ्रातरौ स्वरसम्पन्नौ ग धर्वाविव रूपिणौ॥

10 रा० 1 14 2 अथवशिरसि प्रोक्त मत्र ।

11 तदव 1 64 25 क्षत्रवेदविदा श्रेष्ठ ।

12 वा० पु० 61 49, ब० पु० 1 5, वि० पु० 6 5 65, ब्रह्मा० पु० [illegible] 12 1

13 आ० ध० सू० 2 11 29 12 पर छायाटीका, अथवणा ऋषिणा प्रोक्तो वेद आथवण'।

नाम है।[1] अथर्वा द्वारा सकलित होने के कारण इस वेद का नाम 'आथवण' पड़ा।[2] 'अथववेद' यज्ञ की दृष्टि स अनुपयुक्त है और लोकापयोगी शातिपुष्ट्यादि कर्मों का प्रतिपादक होने क कारण अन्य वेदो से विलक्षण है।[3] वेदत्रय स पथकरण के सबध म 'गोपथ ब्राह्मण' का साक्ष्य भी अवलोकनीय है। तीन वेदो से यज्ञ के एक पक्ष का सस्कार किया जाता है ब्रह्मा मन से अन्य पक्ष का सस्कार करता है।[4]

'अथववद' म राजपुरोहित का सबध है। राजपुरोहित को अथववद का ज्ञान आवश्यक है क्योकि राजा क शाति और पौष्टिक कर्मों का सम्पादन इसी वेद से सम्भव है। अथव-परिशिष्ट' में तो यहा तक कहा गया है कि जिस राजा क जन पद म 'अथववदविद' निवास करता है वह राष्ट्र उपद्रवहीन होकर वृद्धि को प्राप्त होता है।[5] 'रामायण' म वसिष्ठ सभी वेदो के ज्ञाता हैं।[6] व रामचद्र जी के पुरो हित हैं। वसिष्ठ स 'अथववेद' से सबध का सकेत 'मल्लिनाथ ने किरातार्जुनीय' की टीका म भी किया है।[7] रामायण मे नि सतान राजा दशरथ के लिए द्विजश्रेष्ठ ऋष्यशृग ने अथवमत्रा से पुत्रेष्टियज्ञ किया था।[8] पुत्रोत्पत्ति के लिए आथवणमत्रा का प्रयोग भी मिलता है।[9] वेदप्रोक्त विधि से राम ने ब्रह्मास्त्र अभिमन्त्रित कर छोडा था।[10] सायण न 'अथवभाष्य भूमिका म श्रद्धापूवक अथवमत्र जप को फलदायी बतलाया है।[11] अथवमत्र जप क लिए विशेष रूप से उपयोगी है। अथव वेद म मत्र को बहुत ऊचे स्तर पर रखा गया है। मत्र म स्वय शक्ति है। अथव वेद के मत्रो का प्रयोग किसी वदिकयज्ञ के बिना स्वतत्र रूप मे भी किया जा सकता

---

1 छा० उ० 3 4 3 पर शाकरभाष्य
2 सत्यव्रत सामश्रमी पूर्वोद्धत ग्रथ, पृष्ठ 21 22
3 मधुसूदन सरस्वती प्रस्थानभेद, पृष्ठ 14
4 गो० ब्रा० 1 3 2 स वा एष त्रिभिर्वेद यज्ञस्यान्यतरपक्ष सस्क्रियते। मनसव ब्रह्मा यज्ञस्यान्यतरपक्ष सस्करोति॥
5 अ० भा० भू० में उद्धत, यस्य राज्ञो जनपदे अथर्वाशान्तिपारग। निवसत्यपि तद्राष्ट्र वधत निरुपद्रवम्॥
6 रा० 1 64 25
7 किरातार्जुनीय 10 10 कृतपदपक्तिरथवणो वेद।
8 रा० 1 14 2 इष्टि त ह करिष्यामि पुत्रीया पुत्रकारणात्। अथर्वशिरसि प्रोक्तमत्र सिद्धा विधानत॥
9 देवीभागवत ▮ 2 33
10 रा० 6 97 14 वेदप्रोक्तेन विधिना सदध कार्मुक बली।
11 अ० भा० भू०, पृष्ठ 122

है। अथर्व शब्द ✓अथर्व कौटिल्ये धातु से बना है जिसका अर्थ है अकुटिलता और हिंसावृत्ति से रहित मन वाला। 'अथर्ववेद' का नाम अथर्वांगिरस भी है।[1] अथर्व और अंगिरा ऋषि द्वारा आविष्कृत होने के कारण इसका नाम 'अथर्वांगिरस' पड़ा। 'गोपथब्राह्मण' में इसे 'भृग्वांगिरोवेद' कहा गया है।[2] भृगु अंगिरा के शिष्य थे। 'अथर्ववेद' के प्रचार में भृगु का विशेष हाथ है। 'अथर्ववेद' का संहितीकरण भले ही बाद में हुआ हो किन्तु उसमें निहित अनेक तथ्य प्राचीन हैं। 'जयन्तभट्ट' ने तो 'अथर्ववेद' को प्रथम वेद माना है।[3] 'नागरखंड' में शतकल्प शतभेद-अथर्ववेद को नवशाख और पंचकल्प बताने का उल्लेख है।[4] ऐसा जान पड़ता है कि 'अथर्ववेद' का कोई एक अतिप्राचीन रूप था, और बाद में उसका नूतन संस्करण किया गया होगा। यह भी अनुमान किया गया है कि पहले 'अथर्ववेद' का संग्रह 'अथर्वा' ने किया था और बाद में 'आंगिरस' ने।[5]

'भागवत-पुराण' में तो स्थापत्य को 'अथर्ववेद' का उपवेद माना गया है।[6] वास्तव में 'अथर्ववेद' का उपवेद 'आयुर्वेद' है क्योंकि 'अथर्ववेद' में स्वयं भैषज्य सूक्त हैं। 'सुश्रुतसंहिता' से 'आयुर्वेद' के 'अथर्ववेद' का उपवेद होने की पुष्टि होती है।[7] 'गोपथब्राह्मण' में अथर्ववेद को चिकित्सा का मूल माना गया है।[8] 'रामायण' में बृहस्पति द्वारा मंत्रों और औषधियों से चिकित्सा का उल्लेख है।[9] 'अथर्ववेद' के भैषज्य सूक्त चिकित्सा संबंधी मंत्र हैं और अनेक मंत्रों से रोगों को दूर करने के उपाय वर्णित हैं।

इसका संबंध राजाज्ञा से है।

2 ब्राह्मण

वेद को 'मन्त्रब्राह्मणात्मक' मानने की प्रवृत्ति बहुत प्राचीन है।[10] मन्त्रातिरिक्त वेद

---

1 पारसनाथ द्विवेदी, वैदिक साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 102
2 गो॰ ब्रा॰ 1 1 8
3 न्यायमञ्जरी पृष्ठ 237, तत्रवेदाश्चत्वारः प्रथमोऽथर्ववेदः।
4 नागरखण्ड 174 50 52
5 रामशंकर भट्टाचार्य पूर्वोद्धृत ग्रंथ पृष्ठ 186-187
6 भा॰ पु॰ 3 12 38
7 सुश्रुतसंहिता 1 6
8 गो॰ ब्रा॰ 1 3 4 येऽथर्वाणस्तद्भेषजम्।
9 रा॰ 6 40 28 तानार्तान्नष्टसंज्ञांश्च गतासूंश्च बृहस्पतिः।
विद्याभिर्मन्त्रयुक्ताभिरोषधीभिश्चिकित्सति।
10 प्रस्तुत शोधप्रबंध, 23 25

भाग ब्राह्मण' है ।[1] मेधातिथि,[2] कुल्लूक[3] तथा विज्ञानेश्वर[4] सदश स्मतिटीकाकार भी इसी मत के अनुयायी हैं। 'आपस्तब'[5] और 'पुरुषोत्तम-पुराण'[6] के अनुसार यज्ञयागादि कर्मों के प्रति प्रेरक ग्रथ 'ब्राह्मण' हैं। विधि ही कर्मों म प्रेरित करती है। सत्यव्रतसामश्रमी' के अनुसार इन लक्षणो से ब्राह्मण-ग्रथो का वेदत्व तो सिद्ध होता है परन्तु ब्राह्मण शब्द का स्वरूप प्रकट नही होता । वे 'आपस्तब' के कर्म प्रेरकत्व रूप लक्षण को भी दोषयुक्त मानत हैं क्योकि मन्त्रो से भी कर्मों म प्रवत्ति होती है।[7] अत महर्षियो द्वारा प्रोक्त वेदव्याख्यानस्वरूप यागविध्यादिबोधक वचन 'ब्राह्मण' हैं और इस प्रकार के वचनो का समूह जिन ग्रथो म हैं वे ग्रथ 'ब्राह्मण' हैं।[8] 'वाचस्पतिमिश्र' ने विनियोग निवचन प्रयोजन अथवाद तथा विधि को ब्राह्मण ग्रथो का प्रतिपाद्य विषय बतलाया है।[9] ग्रथवाची ब्राह्मण शब्द नपुसकलिंग म व्यवहृत होता है।[10] तत्तिरीय-सहिता म ब्राह्मण शब्द का सबसे प्राचीन प्रयोग है।[11] ब्रह्म का अथ है वेद मे निर्दिष्ट मन्त्र।[12] ब्रह्म का तात्पय यज्ञ भी है। अत 'ब्राह्मण' का अथ है, यज्ञयागपरक ग्रथ। विस्तार किए जाने के कारण भी यह 'ब्राह्मण' है। ब्राह्मणो का मुख्य विषय यज्ञ ही है। ब्राह्मण मन्त्रापेक्षया अर्वाक्कालिक भी है।[13] ब्राह्मणो म यज्ञ तथा कमकाड की विस्तत व्याख्या प्रस्तुत की गई है। ब्राह्मणो की अतरग परीक्षा करने पर स्पष्ट होता है कि ब्राह्मण-ग्रथो मे यज्ञो की वज्ञानिक, आधिदविक आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक मीमासा है।[14] 'भट्ट

---

1 ज० सू० 2 1 33 शेष ब्राह्मणशब्द ।
2 म० स्म० 2 6 2 165 पर मेधातिथि।
3 म० स्म० 2 6, 3 2 पर कुल्लूक।
4 या० स्म० 3 249 पर विज्ञानेश्वर।
5 आ० य० परि० 1 34 कर्मचोदनाब्राह्मणानि।
6 पु० पु० 46 14 वैदिककर्मप्रचोदका ।
7 सत्यव्रत सामश्रमी, ऐतरेयालोचनम पष्ठ 1 3
8 महाभाष्य 5 1 1
9 वाचस्पतिमिश्र, वदिक साहित्य, पष्ठ 175,
नरुक्त्य यस्य मन्त्रस्य विनियोग प्रयोजनम।
प्रतिष्ठान विधिश्चव ब्राह्मण तदिहोच्यते ॥
10 मदिनी-कोश 3 7 1 1 ब्राह्मण ब्रह्मसघाते वेदभागे नपुसकम।
11 त० स० 3 7 1 1 एतद ब्राह्मणान्येव पच हर्वीषि।
12 श० ब्रा० 7 1 1 5 ब्रह्म वै मन्त्र ।
13 ब्रह्मा० पु० 1 33 12 अनुमन्त्र तु ब्राह्मणम।
14 बलदेव उपाध्याय, पूर्वोद्धृत ग्रथ, पृष्ठ 176

भास्कर' ने ब्राह्मण-ग्रंथों को कर्म और मन्त्रों का व्याख्यान-ग्रंथ कहा है।[1] विधि ही कर्मों में प्रेरित करती है। सायणाचार्य के अनुसार विधियाँ दो प्रकार की हैं—अप्रवृत्तप्रवर्तक तथा अज्ञातज्ञापक। कर्मकाण्डगत विधियाँ अप्रवृत्तप्रवर्तन कराने वाली हैं। ब्रह्मकाण्डगत विधियाँ अज्ञातज्ञापन कराने वाली हैं।[2] विधि से अवशिष्ट भाग 'अर्थवाद' है।[3] इस प्रकार ब्राह्मण का यह स्वरूप 'विधि-अर्थवाद' के रूप में द्विधा[4] या 'विधि-अर्थवाद अनुवाद' के रूप में त्रिधा विभक्त है।[5] 'ब्राह्मण' की प्रतिपाद्य दस वस्तुओं का निर्देश 'शाबर भाष्य' में किया गया है। ये हैं हेतु, निर्वचन, निंदा, प्रशंसा संशय, विधि परक्रिया, पुराकल्प, व्यवधारणकल्पना और उपमान।[6]

'संहिता' और 'ब्राह्मण' में पार्थक्य स्पष्ट है। संहिताएं छंदोबद्ध हैं उनमें कुछ भाग ही गद्यात्मक हैं। 'ब्राह्मण' केवल गद्यात्मक ही हैं। मन्त्रों में या तो देव-स्तुति का प्राधान्य है या ऐहिक-पारलौकिक विषयों का विवेचन, परन्तु ब्राह्मणों का मुख्य विषय 'विधि' ही है। यज्ञ के विषय में कोई विरोध हो तो ब्राह्मण-ग्रंथों में उसका विवेचन किया गया है। ब्राह्मण-ग्रंथों में अन्यान्य विषय भी विधि के ही पोषकमात्र हैं। इन विषयों में निंदा स्तुति की प्रधानता रहती है। इन्हें 'अर्थवाद' कहते हैं। इनमें यज्ञ में निषिद्ध वस्तुओं की निंदा, उपयोगी वस्तुओं की प्रशंसा, यज्ञोपयोगी युक्तियाँ और अनुष्ठेय वस्तुओं की पुष्टि हेतु इतिहास एवं आख्यान हैं। शब्द विशेष की सिद्धि के लिए निर्वचन भी इनमें मिलते हैं। यज्ञों के विषय में सूक्ष्म विवेचन ब्राह्मण-ग्रंथों में मिलता है। 'समस्त कर्मों में यज्ञ ही श्रेष्ठतम कर्म है'।[7] ब्राह्मण ग्रंथों में यज्ञ की इतनी महिमा है कि प्रजापति को भी यज्ञ का ही रूप माना गया है।[8] 'विष्णु का प्रतीक भी यज्ञ ही है।[9] 'आकाश में देदीप्यमान आदित्य भी यज्ञ का ही रूप है।[10] ब्राह्मण-ग्रंथों में यज्ञ की जितनी महनीयता थी

---

1 तै० सं० 1 5 1 पर भट्ट भास्करकृतभाष्य, ब्राह्मण नाम कर्मणस्तन्मन्त्राणां च व्याख्यानग्रंथ।

2 ऋ० भा० भू०, पृष्ठ 71

3 जै० सू० 2 1 33 ब्राह्मणशेषोऽर्थवादः।

4 या० स्मृ० 1 4 पर वीरमित्रोदयव्याख्या।

5 न्यायसूत्र 2 1 62 पु० पु० 46 48

6 शाबरभाष्य 2 1 33, प्रस्तुतशोध प्रबंध पृष्ठ 23 24 पर विवरण।

7 श० ब्रा० 1 7 3 5 यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म।

8 तत्रैव 4 3 4 3 एष व प्रत्यक्षं यज्ञो यः प्रजापतिः।

9 तत्रैव 4 3 4 3 यज्ञो वै विष्णुः।

10 तदेव 14 1 1 16 यज्ञो सौ आदित्यः।

उतनी ही 'रामायण' में भी दृष्टिगोचर होती है। अग्निहोत्र से प्राणी सब पापों से छूट जाता है।[1] रामायणकाल में सध्या के पश्चात अग्निहोत्र का स्थान था।[2] शतपथ-ब्राह्मण के अनुसार 'अश्वमेध' यज्ञ करने वाला यजमान अपने समग्र पाप कर्मों तथा ब्रह्म-हत्या के पाप को दूर भगा देता है।[3] 'रामायण' में अश्वमेध को महायज्ञ कहा गया है।[4] अश्वमेध से राजा इन्द्र ने ब्रह्म-हत्या से निवृत्ति पाई।[5] 'रामायण' में दशरथ तथा राम के अश्वमेध का वर्णन है।[6] शतपथ-ब्राह्मणोक्त[7] पंचमहायज्ञ भी रामायण में यत्र-तत्र सकेतित है। इसमे होम रूप 'देव-यज्ञ' का प्रथम स्थान है। द्वितीय 'पितृयज्ञ' पितृतर्पणरूप है। तृतीय ब्रह्म-यज्ञ' को दैनिक स्वाध्याय के रूप में माना जाता है। चतुर्थ नयज्ञ' अतिथिसत्कार रूप है। पञ्चम भूतयज्ञ' में भूतो को बलि प्रदान की जाती है। रामायण' में पंचमहायज्ञ शब्द न मिलने पर भी होम तर्पण, जप, स्वाध्याय और अतिथि पूजन के प्रसग मिलते है। वास्तुशांति' के अवसर पर राम के जप, स्नान और भूतों को बलि प्रदान करने का उल्लेख है।[8] दैनिक होम तो रामचन्द्र का नियम ही था।[9] उन्होंने पितृतर्पण भी किया था।[10] दशरथ ने अतिथि सत्कार के रूप में विश्वामित्र का अर्घ्य दिया था।[11] सीता रावण का मन में द्वेष होने पर भी यथोचित सत्कार करती है।[12]

'रामायण' में ब्राह्मणोक्त विधियाँ भी मिलती हैं। 'षड्विंश-ब्राह्मण' में अभिचार के समय ऋत्विजों के वेशवर्णन से पता चलता है कि ऋत्विक यज्ञ के समय लोहित-उष्णीष तथा रक्तवर्ण किनारी वाली धोती पहनते थे।[13] 'महाभाष्य'[14] और

---

1 तदेव 2 3 1 6 सर्वस्मात् पाप्मनो निर्मुच्यते य एव विद्वानग्निहोत्रं जुहोति।

2 प्रस्तुत शोध प्रबंध पृष्ठ 256

3 श० ब्रा० 13 5 4 1

4 रा० 7 75 2 अश्वमेधो महायज्ञ।

5 रा० 7 75 3 ब्रह्महत्यावृतःशक्रो हयमेधेन पावित।

6 तदेव 1 13 7

7 श० ब्रा० 11 5 6

8 रा० 2 56 32 जप च न्यायत कृत्वा स्नात्वा नद्या यथाविधि।
पापसंशमन रामश्चकार बलिमुत्तमम ॥ (म० वि०)

9 प्रस्तुतशोध प्रबंध, पृष्ठ 278

10 रा० [illegible] 95 28 एतत्ते राजशार्दूल विमल तोयमक्षयम।
पितृलोकगतस्याद्य मद्दत्तमुपतिष्ठतु ॥

11 तदेव 1 17 28 राजा ततोऽर्घ्यमुपहारयत।

12 तदेव 3 44 31 34

13 ष० ब्रा० 4 22 लोहितोष्णीषा लोहितवाससो निवीता ऋत्विज प्रचरति।

14 महाभाष्य 1 1 27 2 2 24

'काव्यप्रकाश'[1] में इसी का संकेत है।

3 आरण्यक

'आरण्यक' ब्राह्मण-ग्रंथों के परिशिष्ट ग्रंथों के समान हैं। आरण्यकों में ब्राह्मणों से भिन्न विषय मिलते हैं। ब्राह्मण-ग्रंथों में यज्ञविधि की प्रधानता है, जबकि आरण्यकों में अध्यात्म विद्या का विवेचन है। सायण ने अरण्य में पढ़े जाने से इन्हें 'आरण्यक' माना है। अरण्यपाठ्य होने के कारण इनका 'आरण्यक' नाम सार्थक ही है। इन ग्रंथों के अध्ययन-अध्यापन के लिए अरण्य का शांत वातावरण ही उपयुक्त था। यद्यपि आरण्यकों का अध्ययन अरण्य में ही किया जाता है तथापि 'तैत्तिरीय-आरण्यक' से पता चलता है कि वैदिक-युग में इसे अरण्य में ही नहीं पढ़ा जाता था अपितु इसे ग्राम या नगर में भी पढ़ा जाता था। अरण्य में इनका पढ़ा जाना श्रेयस्कर था। कुछ समय पश्चात गृहादि में इन ग्रंथों का अध्ययन प्रतिसिद्ध समझा जाने लगा। राधाकृष्णन् के अनुसार आरण्यकों का स्थान ब्राह्मण-ग्रंथों और उपनिषदों के बीच का है। जैसा कि नाम संकेत करता है 'आरण्यक' उन महापुरुषों और ऋषियों के चिंतन के विषय थे, जो वनों में रहते थे। ब्राह्मण ग्रंथों में उन कर्मकाण्डों का विवेचन है जिनका विधान गृहस्थ के लिए आवश्यक था। वृद्धावस्था में जब वह वनों का आश्रय लेता था तब उसे जिस विषय की आवश्यकता होती थी, उसकी पूर्ति आरण्यक ही करते हैं। 'महाभारत' के अनुसार आरण्यक औषधियों से उद्भूत अमृत के समान वेदों का सार है। वस्तुतः 'आरण्यक' ब्राह्मणों के ही अंश हैं, परंतु अपनी विशिष्टता के कारण 'रहस्य-ब्राह्मण' पद से व्यवहृत होते हैं। भास्करी तथा मेधातिथि के अनुसार भी रहस्य-ग्रंथ 'आरण्यक' ही हैं। गोपथ ब्राह्मण, वसिष्ठ धर्मसूत्र[2] तथा मनुस्मृति में आरण्यक का नामान्तर 'रहस्य' व्यवहृत हुआ है। मेधातिथि तथा कुल्लूक ने रहस्य का अर्थ 'ब्रह्म विद्यात्मक-उपनिषद' किया है।

विषय की दृष्टि से 'आरण्यक' और 'उपनिषद' में कुछ साम्य है, इसीलिए बृहदारण्यक आदि आरण्यक-ग्रंथों को 'उपनिषद' ही माना जाता है। दोनों में पर्याप्त समानता होने पर भी पार्थक्य लक्षित होता है। 'आरण्यक' का मुख्य विषय प्राण विद्या तथा प्रतीकोपासना है, जबकि उपनिषदों का विषय ब्रह्म अथवा आत्म विद्या का विवेचन करना है अतः एव दोनों रहस्य-ग्रंथ हैं। ब्राह्मण के 'आरण्यक' नामक अंश का अध्ययन वानप्रस्थाश्रम में अरण्य में किया जाता था। पचास वर्ष के अनन्तर वानप्रस्थाश्रम का आरम्भ होता है। इसमें निवृत्ति-मार्ग की उपयोगी विद्या का अभ्यास उपासना, चित्तशुद्धि के लिए व्रतोपासन तथा

1 काव्य प्रकाश 5 आहिताग्निरपि ऋत्विज प्रचरति।

तपान्ि क्रिया का अनुष्ठान किया जाता था। निवत्ति माग म योग्यता प्राप्त कर लेने पर चतुर्थाश्रम सयास म प्रवेश होता था। अरण्य म मनुष्य वानप्रस्थाश्रम प्राप्त कर लेने पर ही जाता था, अत इसी आश्रम म आरण्यकाध्ययन होता था।

'रामायण' म यद्यपि आरण्यक शब्द का प्रयोग नही मिलता तथापि अरण्य म जाकर अध्ययन का उल्लेख मिलता है। जिहोने गहमेधी के रूप मे अपना जीवन व्यतीत कर लिया होता वे अरण्यवास के लिए चल देते थे। देवता अरण्यवासिया के तपोभग के लिए समय-समय पर उपस्थित होत थे जिससे ऋषि अपने लक्ष्य को प्राप्त न कर सकें। देवराज इद्र ने गौतम ऋषि को क्रोध उत्पन्न किया था। विश्वामित्र ने हजारो वर्षों तक मौन रहकर अपने मन मे काम और क्रोध का प्रवेश नही होने दिया था। कठोर तप करके वे ब्रह्मर्षि पद पाने म सफल हुए। उनके तपोभग के लिए भी मेनका और रभा नामक अप्सरा को भेजा गया था। मेनका के साथ उनका दस वर्षा तक वास प्रसिद्ध है।

4 उपनिषद

उपनिषद' आरण्यको के विशिष्ट अश हैं। उपनिषद शब्द 'उप पूवक नि' उपसगक √सदल् धातु स निष्पन्न है। √सद का अथ है विशरण (नाश होना) गति (पाना-या जानना) और अवसादन (शिथिल होना)। उपनिषद मुख्यत ब्रह्म विद्या का द्योतक है। जिससे मुमुक्षुओं की बीज भूता अविद्या नष्ट हो जाती है जो ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति करा देती है तथा जिससे मनुष्य के गभवासादिक दु ख सवथा शिथिल हो जाते हैं। आजकल उपनिषद का अथ प्राय गुरु के समीप बठकर प्राप्त किया गया ज्ञान माना जाता है। 'रामायण मे विश्वामित्र महादेव से 'सरहस्य सागोपाग उपनिषद प्राप्त करने की कामना करत हैं। उपनिषद का तात्पय रहस्यमत्रा से है। उपनिषद को 'रहस्यशास्त्र' माना जाता है। तत्ति रीय उपनिषद म इसका अथ सायण ने रहस्य सारभाग किया है। रहस्यविद्या ही वस्तुत ब्रह्मविद्या है। इसे अध्यात्मविद्या भी कहते हैं। वेद का अतिम भाग तथा सारभूत सिद्धाता का प्रतिपादक होने से उपनिषद वेदान्त' नाम से विख्यात है। शकर ने उपनिषदा के लिए वेदात' शब्द का प्रयोग किया है। इसी प्रकार रामा यण' तथा पुराणा मे भी वदात' शब्द का प्रयोग किया गया है। 'रामायण' के अनुसार ब्रह्मविद' ऋषि आश्रमो मे रहत थे। जो अनादि-अनन्त ब्रह्मविभूति मय सकलप्रपच को देख सकता है उसे 'ब्रह्मविद्' कहेंगे।' उपनिषदो मे 'ब्रह्म का प्रतिपादन किया गया है।

उपनिषदा म 'ब्रह्म के दो स्वरूपो का विशद विवेचन मिलता है— सविशेष अथवा सगुण और निर्विशेष' अथवा निगुण। ब्रह्म का निर्विशेष रूप वह है जिसे किसी लक्षण अथवा विशेषण द्वारा सूचित नही किया जा सकता और सवि

शेप वह है जिसे किसी लक्षण अथवा चिह्न द्वारा सूचित किया जा सकता है। 'रामायण' म ब्रह्मा युद्ध की समाप्ति के अवसर पर राम के विषय म कहते हैं कि जिस अव्यक्त अक्षर ब्रह्म को दवताओ का अतर्यामी और गुह्य-तत्त्व बतलाया गया है, वह शत्रु विनाशी राम ही तो है। ब्रह्म सत्य है। उपनिषदो मे पर ब्रह्म का स्वरूप अनिवचनीय बतलाया गया है। इसे व्यक्त नही किया जा सकता। गुणा के अत्यत अभाव के कारण इसका वणन नही हो सकता। इसी कारण श्रुति इसका परिचय निषेधमुख से देती है।

उपनिषदा मे मानवीय व्यवहार पर बडे मनोरम विचार हैं। दमन, दान, और दया की शिक्षा दी गई है। सत्य से विजय तथा देवलोक प्राप्ति होती है। असत्य की निंदा की गई है। सत्य के बाद शम, दम उपरति, तितिक्षा तथा समाधान की प्राप्ति आवश्यक है।

5 वेदाग

'रामायण म वेद के साथ 'वेदाग श द का भी प्रयाग है।[1] वेद के अथ जानने मे, कमकाण्ड के प्रतिपादन मे जो उपयोगी हैं उन्हें वदाग' कहत हैं। आचाय-दुग के मत म वदाग विनान से वेदाथ भासित अथवा प्रकाशित होता है। वेदाग वेदपुरुष के प्रशस्त अग हैं। 'रामायण' मे प्रयुक्त षडग' शब्द से वेदाग-सख्या का सकेत मिलता है।[3] वेदाग-साहित्य का ज म उपनिषत्काल म ही हो गया था। वेदागो के नाम तथा क्रम का उल्लेख मुण्डकोपनिषत मे मिलता है। इनके नाम तथा क्रम इस प्रकार हैं—शिक्षा, कल्प, व्याकरण निरुक्त छन्द और ज्योतिष।

शिक्षा — वेदो के पठन-पाठन के लिए सवप्रथम वेदमत्रो के शुद्ध उच्चारण की आवश्यकता है। वदमत्र शब्दमय हैं उनमे सवप्रथम उच्चारण को महत्व दिया जाता है। इस उच्चारण के निमित्त प्रवतमान वेदाग शिक्षा' कहलाता है। यह वेद रूपी पुरुष की घ्राण कही गई है। जिस प्रकार घ्राण के बिना पुरुष शोभा नही देता उसी प्रकार शिक्षा के बिना वेद-पुरुष भी शोभा नहीं देता है। वह नितात असुदर लगता है। शिक्षा का व्युत्पत्तिलभ्य अथ है 'वह विद्या जो स्वर वर्णादि का उपदेश करे।' वद का अय नाम वशपरपरा अथवा गुरुमुख से श्रवण किए जाने के कारण अनुश्रव है। 'पाणिनीय शिक्षा' के अनुसार लिपिबद्धवेदग्रथ का पाठक निदा का पात्र समझा जाता है। वेद के ज्ञान के लिए स्वर के ज्ञान की नितांत आवश्यता है। वेद के अशुद्ध उच्चारण से अनथ की सम्भावना रहती है।

---

1 रा० 1 1 14 वेदवेदागतत्वज्ञ।
2 नि० 1 20 पर दुगवृत्ति, वेदागवि
3 रा० 1 13 21, 1 16 2

शुद्ध उच्चारण के लिए शिक्षा का ज्ञान नितात आवश्यक है। 'रामायण' म भरद्वाज मुनि शिक्षा ग्रथो म प्रतिपादित उच्चारण लक्षणा से युक्त वाणी से मन्त्रोच्चारण करत हुए देवताओ का आह्वान करते हैं। 'याज्ञवल्क्य शिक्षा' म प्रयोग के लिए मध्यम स्वर का उपदेश है। हनुमान सस्कारयुक्त, क्रमयुक्त, शीघ्रतारहित, विलम्बरहित कल्याणी और मनोहर वाणी बोलता था। इससे रामायणकाल मे शिक्षा नामक वेदाग की व्यापकता का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

कल्प—वेद का मुख्य प्रयोजन वदिक कमकाण्ड तथा यज्ञयाग का यथाथ अनुष्ठान है। इसके लिए प्रवत्त होने वाले अग का नाम कल्प है। वेदरूपी पुरुष के हाथ कल्प है। जिस प्रकार हाथो के बिना मनुष्य कोई काय नही कर सकता उसी प्रकार कल्पज्ञान के बिना वदिक क्रिया कलाप नही हो सकते। रामायण' मे अश्वमेधयज्ञ के 'कल्पसूत्र के अनुसार तीन दिन सवन क्रिया क बतलाए है। कल्प के चार अग हैं—श्रौतसूत्र, गह्यसूत्र शुल्वसूत्र तथा धम सूत्र। श्रौतसूत्रा मे श्रौतयागो गह्यसूत्रो मे गह्य यागा, शुल्वसूत्रो मे वेदिनिर्माण तथा धमसूत्रा म वर्णाश्रमधर्मों का विवेचन है। कात्यायन के अनुसार देवता को उद्देश्य कर द्रव्यत्याग ही यज्ञ है। 'ऐतरेय आरण्यक' के अनुसार यज्ञ पाच प्रकार के हैं—अग्निहोत्र, दशपूणमास चातुर्मास्य, पशु और सोम। श्रौत तथा स्मात यज्ञो की सख्या 21 है जो सात सात की तीन सस्थाओ मे विभक्त हैं।

पाकसस्थागतयागो का विवरण गह्यसूत्रो मे है। इनका सम्पादन गह्याग्नि म होता है। हवि तथा सोमसस्थागत कर्मों का विवेचन श्रौतसूत्रा म है। इनका सम्पादन 'श्रौताग्नि' म किया जाता है। श्रौताग्नि गाहपत्य आहवनीय दक्षिण तथा सभ्य भेद से चार प्रकार की है। रामायण म त्रेताग्नि का उल्लेख है जिसका अभिप्राय गाहपत्य, आहवनीय और दक्षिण अग्नियो से है सभ्याग्नि की स्थापना वकल्पिक है।

व्याकरण—'रामायण' मे हनुमान सम्पूण व्याकरण के ज्ञाता हैं। उनके बहुत देर तक भाषण करते रहने पर भी कोई अशुद्धि नही हुई। व्याकरण के लिए 'रामायण मे वाक्यज्ञ' शब्द का प्रयोग किया है। व्याकरण वेदपुरुष का मुख है। प्रातिशाख्यसहित 'शिक्षा' और निरुक्त के जो ग्रथ आज उपलब्ध हैं उनमे बहुत से वचन पाणिनि की अष्टाध्यायी से मिलते हैं और पाणिनि पर पडे प्रभाव के सकेतक हैं। व्याकरण का अथ है शब्दो की मीमासा करने वाला शास्त्र। व्याकरण परम्परा के रूप म वषभ के रूप मे व्याकरण का ही सकेत है। इसके चार सीग नामाख्यातो पसर्गनिपात हैं। तीन काल इसके पाद हैं। इसके दो सिर सुप और तिङ हैं। इसके हाथ सप्तविभक्तिया है। यह उर कण्ठ और सिर तीन स्थानो स बधा है। रामायण की रचना समाससन्धियुक्त मधुर तथा प्रसन्न करने वाले वाक्या मे की गई है। रामायण के अनुसार व्याकरण का अध्ययन करने के लिए कपीन्द्र हनुमान् सूय

के सम्मुख हुए और विशाल ग्रंथ स्वीकार करने के लिए उदयाचल से अस्ताचल तक घूमते रहे। सूत्र, वृत्ति, वार्तिक, भाष्य एवं संग्रह इन सबका अध्ययन करने से वे शास्त्रों में प्रवीण हुए।[1] विद्याओं में हनुमान् बृहस्पति से स्पर्धा करने वाले थे।[2] 'ऋक्तंत्र' के अनुसार व्याकरण के इतिहास में ब्रह्मा के बाद बृहस्पति का स्थान आता है। व्याकरण का ज्ञान ब्रह्मा से बृहस्पति को और बृहस्पति से इंद्र को प्राप्त हुआ।[3] इंद्र ने 'ऐंद्र' व्याकरण लिखा। कपींद्र के सूर्य के पास जाने से प्रतीत होता है कि सूर्य का भी व्याकरण से कोई संबंध था। 'ऋग्वेद' के अनुसार भाषा और व्याकरण के तीन चरणों को पणियों ने पहचान लिया।[4] इनमें से एक को इंद्र ने तथा दूसरे को सूर्य ने प्राप्त किया था।[5] तीसरे को इन्होंने स्वयं प्राप्त किया था। यहां इंद्र के साथ-साथ सूर्य का भी व्याकरण से संबंध प्रकट होता है।

'वररुचि' ने व्याकरण के पांच प्रयोजन बतलाए हैं—रक्षा, ऊह, आगम, लघु और असंदेह।[6] व्याकरण का प्रथम प्रयोजन वेद की रक्षा है। जो मंत्र में आए पदों को पहचानता है वही उसके अर्थ को जानता है। ऊह का अर्थ नवीन पदों की कल्पना है। विभक्ति आदि का ज्ञान व्याकरण से ही हो सकता है। आगम का तात्पर्य है स्वयं श्रुति ही व्याकरणाध्ययन के लिए प्रमाण है। लघुता के लिए भी व्याकरण पढ़ना चाहिए। वैदिक विषयों में जो संदेह होता है उसका निराकरण भी व्याकरण ही कर सकता है। पतञ्जलि ने त्रयोदश प्रयोजनों का उल्लेख किया है। ये प्रयोजन आनुषंगिक हैं—शुद्ध भाषण, अदुष्ट शब्द का प्रयोग, अर्थज्ञान, व्यवहारोचित शब्द प्रयोग अभिवादनज्ञान, विभक्तियोजनाज्ञान, वेदवाणीविभाजनज्ञान, उचित वाणी का प्रयोग, मंत्ररहस्यज्ञान, वाणी की पवित्रता, अप्रायश्चित्त योग्यता, नामकरण

---

1 रा० 7 36 45 46 असौ पुनः व्याकरणं ग्रहीष्यन् सूर्योन्मुखो प्रष्टुमना कपीन्द्रः।
उद्यद्गिरेरस्तगिरिं जगाम, ग्रंथं महद्धारयनप्रमेयः ॥
ससूत्रवृत्त्यर्थपदं महार्थं ससंग्रहं सिद्ध्यति वै कपीन्द्रः।
(नि० सा०)

2 तदेव 7 36 47 सर्वासु विद्यासु तपोविधाने प्रस्पर्धतेऽयं हि गुरुं सुराणाम्।
(नि० सा०)

3 ऋक्तंत्र 1 4 ब्रह्मा बृहस्पतये प्रोवाच बृहस्पतिरिंद्राय।

4 ऋ० 1 164 45 त्रीणि निहिता गुहायाम्।

5 ऋ० 4 58 4 इंद्र एकं सूर्य एकं जजान वेनादेकं स्वधया निष्टतक्षुः।

6 ऋ० भा० भू०, पृष्ठ 115, रक्षोहागमलघ्वसंदेहाः प्रयोजनम्।

तथा उच्चारणज्ञान।[1] शुद्ध भाषण के कारण ही हनुमान के व्याकरणज्ञ होने का अनुमान लगाया गया।

व्याकरणाध्ययन के लिए सूत्र, वत्ति, वार्तिक और भाष्यादि आधारशिला है। अल्पाक्षरो म अभीष्ट भाषण 'सूत्र' है। अल्पाक्षर प्रयोग प्राचीन आचार्यों की परपरा रही है। वे इस विषय म इतने सतर्क थे कि एक भी शब्द या अक्षर का प्रयोग व्यथ नहीं होने देते थे। पूवकाल से सूत्रशैली चली आ रही है। 'रामायणकाल' मे कौन-सा ग्रथ प्रचलित था, इस विषय म कोई निश्चित सकेत नहीं मिलता परतु सूत्र, वत्ति, वार्तिक, भाष्य तथा सग्रह के एकत्र होने का सकेत है। हनुमान अञ्जनी के पुत्र थे। अञ्जनी वायु की पत्नी थी। वायु के व्याकरणज्ञ होने का उल्लेख 'तत्तिरीय सहिता'[2] तथा 'वायु-पुराण'[3] म मिलता है।[4] किसी वक्तव्य का जो अथ समझा जाए वही वत्ति है। वत्ति का लेखक वास्तव म स्वाभिप्राय को या अपनी समझ म आए सार को स्पष्ट करता है।[5] उक्त, अनुक्त दुरुक्त विषयो की चर्चा जिस ग्रथ म की जाती है उसे वार्तिक कहते हैं।[6] 'कात्यायन' ने पाणिनिव्याकरण पर जो वार्तिक लिखे हैं उन पर यह लक्षण पूरा उतरता है। भाष्य म अपने कथनो क अतिरिक्त अन्य कथनो का उल्लेख होने के कारण विस्तार होता है। आधार की व्यापकता क कारण यह भेद वत्ति और भाष्य म अतर स्पष्ट करता है। बाद म न्यायबीजो का प्रवेश भाष्य म होता रहा। जिसस सूत्र कारिका आदि सब कुछ हो उसे सग्रह कहते है। 'व्याडि' के ग्रथ को परवर्ती आचार्यों ने सग्रह माना है।[7] वाक्य-पदीय के टीकाकार के अनुसार सग्रह नामक निबध एक लक्ष

---

1 महाभाष्य 1 1 1 तऽसुरा । दुष्ट शब्द । यदधीतम । यस्तु प्रयुङ्क्त । अविद्वास विभक्ति कुर्वन्ति । यो वा इमाम । चत्वारि । उत त्व । सक्तुमिव । सारस्वतीम् । दशम्या पुत्रस्य । सुदेवोऽसि वरुण इति ।

2 त० स० 6 4 7

3 वा० पु० 2 44

4 ब्रह्मानन्द त्रिपाठी व्याकरणशास्त्रतिहास, पष्ठ 16
"तत्र स इन्द्र सवज्ञान वायोरधिजगे। एष वायु शब्दशास्त्रविशारद इति ख्याति बभार।

5 सत्यकाम वर्मा, सस्कृत व्याकरण का उद्भव तथा विकास पृ० 26।

6 तदेव, पष्ठ 185 पर उद्धृत, उक्तानुक्तदुरुक्ताना चिन्ता यत्र प्रवतते।
त ग्रन्थ वार्तिक प्राहु वार्तिकज्ञा मनीषिण ॥

7 महाभाष्य 1 1 1 पर त्रिपदीभाष्य, चतुर्दशसहस्राणि वस्तूनि अस्मिन् ग्रन्थे परीक्षितानि।"

ग्रथ परिमाण का था।[1] तात्पय यह है कि 'सग्रह' म सूत्र, वत्ति, वार्तिक तथा भाष्य सभी कुछ सगहीत होता है।

निरुक्त—वसे तो सभी वेदाग अतीव उपयोगी हैं तथापि वेदाथ की दष्टि से व्याकरण तथा 'निरुक्त' की उपयोगिता सर्वातिशायी है। पदा की मीमासा करने के कारण वदिकपदो के बोध-हेतु व्याकरण का अतीव महत्त्व है। 'निरुक्त' का प्रमुख उद्देश्य तो वदार्थानुसधान ही है। महामति 'यास्क' के मत म 'निरुक्त के अध्ययन के बिना मन्त्राथप्रत्यय असम्भव है। वस्तुत 'निरुक्त' व्याकरण की भी पूणता है क्योकि अथज्ञानोपरान्त ही व्याकरण शब्दविशेष की उस अथविशेष म सरचना का विश्लेषण करने म प्रयुक्त होता है। व्याकरण का स्वरसस्कारोदेश अथ प्रतीति म असम्भव है। निरुक्त' वेदपुरुष का श्रोत्र है।[3]

'रामायण मे पूवनिर्दिष्ट 'षडग के अतगत आने वाला निरुक्त यास्क प्रणीत है कि पूववर्ती नरुक्ता का निरुक्त, यह कह सकना कठिन है। यदि यास्कीय निरुक्त महाभारत-काल की रचना मानी जाए तो 'रामायण म सकेतित षडग का अन्त पाती निरुक्त इससे पूववर्ती निरुक्त-परम्परा का परामशक माना जाएगा।[4] 'आचायदुग के मतानुसार निरुक्तो की सख्या 14 थी। सम्प्रति हम केवल यास्कीय निरुक्त ही उपलब्ध होता है जो निघण्टु टीका के रूप म है। इसम आग्रयण औपमन्यव, औणवाभ, क्रौष्टुकि, गाग्य गालव, चमशिरा, तटीकि, शत बलाक्ष मौद्गाल्य, शाकटायन शाकपूणि, शाकपूणिपुत्र, और स्थौलाष्ठीवि इन नरुक्ता का उल्लेख किया है। इनके बाद सम्भवत यास्क' का ही स्थान आता है। इसस स्पष्ट होता है कि 'यास्क' के समय तक नरुक्त सम्प्रदाय स्थापित हो चुका था और उसका साहित्य पर्याप्त समद्ध हो चुका था। आचाय-यास्क ने 'निरुक्त म नरुक्ता का लगभग 20 बार उल्लेख किया है। नैरुक्त परम्परा के आचाय वेदमन्त्रा का अथ निवचन प्रणाली पर करते थे और वैदिक देवो की व्याख्या प्रकृति के विभिन्न रूप मानकर करते थे। वदिक आख्याना की व्याख्या आलकारिक अथवा अथवाद के रूप म और तथाकथित ऐतिहासिक नामा की व्याख्या

---

1 वा० प०, पृष्ठ 283

2 नि० 1 15 अथापीदमन्तरेण मन्त्रेष्वथप्रत्ययो न विद्यते। अथमप्रतीयतो नात्यन्त स्वरसंस्कारोदेश। तदिद विद्यास्थान व्याकरणस्य कात्स्न्य स्वाथसाधक च।

3 पा० शि० 1 41 निरुक्त श्रोत्रमुच्यते।

4 शिवनारायण शास्त्री निरुक्त मीमासा, पृष्ठ 79

5 नि० 1 13 पर वृत्ति, निरुक्तम् चतुदशप्रभेदम।
1 20 पर वृत्ति निरुक्त चतुदशधा।

नित्यसृष्टि के रूपो म की जाती थी ।[1] अधुनोपलब्ध यास्कीय निरक्त वस्तुत निघण्टु म सकेतित वैदिक पदो की व्याख्या के रूप मे है । निघण्टु के तीन काण्ड हैं —नघण्टुक, नगम तथा दवत । निघण्टु क पाच अध्यायो म आद्य तीन नघण्टुक, चतुथ अध्याय नगम और पचम अध्याय दवत काण्ड के नाम स अभिहित है । इन्ही की व्याख्या निरक्त अपने 14 अध्यायो म करता है। इस प्रकार निरुक्त का मुख्य उद्देश्य निवचनरीत्या वदिक पदो की व्याख्या एव वैदिक देवताज्ञान है ।

निरुक्त' म यास्क ने 440 मन्त्रो की समग्रस्पेण कि वा खण्डश व्याख्या की है। इससे न केवल मन्त्रो का ही अथ स्पष्ट हुआ है प्रत्युत वेद के अय मन्त्रो को समझने म भी सहायता मिली है। इसके अतिरिक्त 'निरुक्त' म विविध वेदाथ सप्र दायो अथवा पद्धतियों का भी उल्लेख है—नैरुक्त, ऐतिहासिक, याज्ञिक परि व्राजक, अधिदवत, नदान तथा आख्यान-समय । निरुक्त' महाभारत मे प्राचीन है क्योकि महाभारत' म यास्क के निरुक्तकार होने का उल्लेख है ।[3] सस्कृति साहित्य म आसुरि के नाम से 'साख्यदशन' के एक बहुत प्रसिद्ध आचाय हैं ।[4] यास्क इनक शिष्य आसुरायण क समकालिक हैं।

वररुचि प्रणीत निरुक्त-समुच्चय'[5] म कतिपय वेदमन्त्रो की व्याख्या है ।

छन्द— छन्द वेद का पचम अग है। वेदमन्त्रो के उच्चारण के निमित्त छदो का ज्ञान आवश्यक है। कात्यायन' का कथन है कि जो व्यक्ति छन्द, ऋषि और देवता क ज्ञान स हीन होकर मन्त्र का अध्ययन अध्यापन, यजन तथा याजन करता है उसका प्रत्येक काय निष्फल ही होता है ।[6] वदिक छद म गद्य भी छदो युक्त माना जाता है। 'दुर्गाचाय' ने ब्राह्मण वचन उद्धृत कर कहा है कि छद के

---

1 विशेषहेतु द्रष्टव्य मानसिंह 'वेदव्याख्या पद्धति'—सस्कृत स्मारिका—पृष्ठ 32 36 माच 1978

2 मानसिंह पूव सकेतित लेख पृष्ठ 33 39

3 महाभारत, शान्तिपव 342 72 73

> यास्को मामपियज्ञो नकयनेषु गीतवान ।
> शिपिविष्ट इति ह्यस्माद गुह्यनामधरो ह्यहम् ॥
> स्तुत्वा मा शिपिविष्टेन यास्क ऋषिरुदारधी ।
> मत्प्रसादात्ततो नष्ट निरुक्तमभिजग्मिवान् ॥

4 तदेव शान्तिपव, 218 10 14 ।

5 सपादक युधिष्ठिर मीमासक, निरुक्त समुच्चय ।

6 सर्वानुक्रमणी 1 7 यो ह वा अविदितार्षेयच्छन्दोदवतब्राह्मणेन मन्त्रेण याजयति वा अध्यापयति वा स्थाणु वच्छति गर्तं वा पात्यते स पापीयान् भवति ।

बिना वाणी उच्चरित नहीं होती।[1] भरतमुनि कहते हैं कि छंदोहीन न तो कोई शब्द है न कोई छन्दशब्दवर्जित है।[2] कात्यायन मुनि के नाम से प्रख्यात 'ऋग्यजु परिशिष्ट' पूर्वोक्त तथ्य को स्वीकृति देता है। वेद का कोई ऐसा मंत्र नहीं जो छंद के माध्यम से निर्मित नहो।[3] फलत 'यजुर्वेद' के जो मंत्र निश्चयेन गद्यात्मक हैं छन्दोहीन नहीं हैं। इसलिए प्राचीन आचार्यों ने एक से लेकर एक सौ चार छंदों का विधान अपने ग्रंथों में किया है।[4] 'रामायण' में छंद के भेदों का उल्लेख है।[5] 'यास्क' ने 'छन्द' शब्द का निर्वचन √ छन्द धातु से माना है।[6] छंद कहे जाने का तात्पर्य यही है कि ये वेदों के आवरण हैं। गायत्री, उष्णिक, अनुष्टुप बृहति, पंक्ति, त्रिष्टुप् और जगती, ये सात वैदिक हैं। प्रमुख वैदिक छंदों की अक्षर-संख्या इस प्रकार है।[7]

गायत्री	24	उष्णिक	28	अनुष्टुप	32
बृहति	36	पंक्ति	40	त्रिष्टुप	44
जगती	48				

गायत्री द्वारा ब्राह्मण त्रिष्टुप द्वारा क्षत्रिय तथा जगती द्वारा वैश्य के आधान करने का विधान है।[8] 'छन्द' वेदों के पाद हैं।[9] जिस प्रकार पैरों के बिना मनुष्य नहीं चल सकता उसी प्रकार बिना छन्द के वेदों की स्थिति होगी, इसका अनुमान सहज ही किया जा सकता है। वैदिक छंदों का विवेचन 'प्रातिशाख्य ग्रंथों' के अतिरिक्त पिंगलरचित 'छन्द शास्त्र' में मिलता है।

ज्योतिष—वेदांगों में ज्योतिष अंतिम है। वेद की प्रवृत्ति यज्ञ के सम्पादन के लिए है। यज्ञ का विधान विशिष्ट समय की अपेक्षा रखता है। यज्ञ-याग के

---

1 नि० 7 2 पर दुर्गवृत्ति, नाच्छन्दसि वागुच्चरति।

2 ना० शा० 14 45 न छन्दहीनो शब्दोऽस्ति न छन्द शब्दवर्जित ।

3 ऋग्यजु परिशिष्ट, छंदोभूतमिदं सर्वं वाङ्मयं स्याद्विजानत ।
नाच्छन्दसि न चापृष्टे शब्दश्चरति कश्चन ॥

4 युधिष्ठिर मीमांसक, वैदिक छन्दोमीमांसा पृष्ठ 39

5 रा० 7 85 6 छन्दस्सुपरिनिष्ठितान्।
7 36 40 छन्दगतीतथव।

6 नि० 7 19 छन्दांसि छादनात्।

7 ऋ० भा० भू०, पृष्ठ 128
भ० पृ० 329 1 5

8 तै० ब्रा० 1 1 9 6 7 गायत्रीभि ब्राह्मणस्याध्यात् त्रिष्टुभीराजन्यस्य जगतीभिर्वैश्यस्य।

9 पा० शि० 1 41 छन्द पादौ तु वेदस्य।

लिए समय शुद्धि की बड़ी आवश्यकता रहती है। कुछ कृत्य ऐसे हैं जिनका अनुष्ठान किसी विशेष ऋतु अथवा सम्वत्सर में होता है। तैत्तिरीय-ब्राह्मण' का कथन है कि ब्राह्मण वसन्त में अग्नि का आधान करे, क्षत्रिय ग्रीष्म में तथा वैश्य शरद में करे।[1] कुछ यज्ञविशिष्ट मासों तथा पक्षों में किए जाते हैं। प्रातःकाल के समय अग्निहोत्री के लिए अग्नि में घृत अथवा दूध से हवन करने का विधान है।[3] नक्षत्र, तिथि, पक्ष, मास तथा सम्वत्सर का विधान वेदों में पाया जाता है। इन नियमों के यथार्थ निर्वाह के लिए ज्योतिष शास्त्र का ज्ञान नितांत आवश्यक है। यज्ञ के विधान के समय सूर्यादि ग्रहों की स्थिति शुभ राशियों तथा भावों में होनी चाहिए। इस समय शुभ नक्षत्र तथा तिथि का होना आवश्यक है। नीचस्थ ग्रह यज्ञकाल में अशुभकारक होते हैं।[4] वेदांग-ज्योतिष' के अनुसार जिस प्रकार मयूर की शिखा उसके शीर्ष पर रहती है उसी प्रकार ज्योतिष मूर्धस्थानीय है।[5] ज्योतिष वेद पुरुष का चक्षु है। ज्योतिष के ज्ञान के बिना मनुष्य वैदिक कार्यों में चक्षु विहीन पुरुष के समान सर्वथा दृष्टिहीन ही होगा। रामायण' में अन्य विद्वानों के साथ ज्योतिषशास्त्र के ज्ञाताओं का भी उल्लेख है।[6] अश्वमेधयज्ञ में दशरथ शुभदिवस और नक्षत्र में गए थे।[7]

'रामायण में ज्योतिष' का उपयोग यज्ञीय कार्यों के अतिरिक्त भी हुआ है। रामचन्द्र का जन्म चैत्र मास नवमी तिथि को पुनर्वसु नक्षत्र में हुआ था। उस समय कर्क लग्न में बृहस्पति और चन्द्रमा थे। सूर्य, मंगल बृहस्पति, शुक्र और शनि अपने-अपने उच्च स्थानों में थे।[8] सूर्य मेष के दस अंश तक मंगल मकर के अट्ठाईस अंश तक बुध कन्या के पन्द्रह अंश तक, बृहस्पति कर्क के पांच अंश तक, शुक्र मीन के सत्ताईस अंश तक और शनि तुला के बीस अंश तक उच्च कहा गया

---

1 तै० ब्रा० 2 1 1 वसन्ते ब्राह्मणोऽग्निमादधीत, ग्रीष्मे राजन्यो आदधीत शरदि वश्यो आदधीत।
2 ता० ब्रा० 5 9 17 एकाष्टकाया दीक्षेरन् फाल्गुनी पूर्णमासे दीक्षेरन।
3 तै० ब्रा० 2 1 2 प्रातर्जुहोति सायं जुहोति।
4 मु० चि० 9 1 3
5 वे० ज्यो० 4 यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद्वेदांगशास्त्राणां गणितं मूर्ध्निस्थितम्।
6 रा० 7 85 7 ज्योतिषे च परं गतान्।
7 तदेव 1 12 33 दिवसे शुभनक्षत्रे निर्यातो जगतीपतिः।
8 तदेव 1 18 7 6 ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावमिके तिथौ।
नक्षत्रे दितिदवत्ये स्वोच्चसंस्थेषु पंचसु॥
ग्रहेषु कर्कटे लग्ने वाक्पतिन्दुना सह। (म० वि०)

है।[1] इसी प्रकार पुष्य नक्षत्र म प्रसन्नधी भरत का ज म हुआ।[2] उस समय मीन लग्न था। श्लेषा नक्षत्र और कक लग्न म सूर्योदय के समय लक्ष्मण और शत्रुघ्न का ज म हुआ।[3] इससे स्पष्ट है कि 'रामायण के समय ज मकालिक ग्रहो पर विचार किया जाता था। विवाह के लिए भी शुभ समय देखा जाता था। विवाह के लिए उत्तराफाल्गुनी उत्तम नक्षत्र है, जिसका स्वामी भग है।[4] विजय नामक मुहूत म रामच द्र को भ्राताओ सहित मगलाचार रीति कराई गई।[5] आश्विन मास म शुक्लपक्ष की दशमी तिथि विजया' कहलाती है।[6] जब भरत ने गगा को पार किया तथा वन को प्रस्थान किया उस समय 'मत्र' नामक मुहूत था।[7] रामच द्र की युद्ध के लिए यात्रा 'उत्तराफाल्गुनी' नक्षत्र और विजय' मुहूत म हुई।[8] जब 'उत्तराफाल्गुनी' का हस्त' स सयोग हुआ तब सुग्रीव सारी सेना लेकर चल पडे।[9] सुपार्श्व ने रावण को 'कृष्णपक्ष' की 'चतुदशी' के दिन तयार होने तथा अमावस्या के दिन सेना सहित प्रस्थान का परामश युद्ध मे विजय प्राप्ति के लिए दिया था।[10] जटायु न राम को विश्वास दिलाया कि वे सीता को ढूढने म समथ रहग क्योकि सीता का अपहरण विद' नामक मुहूत म हुआ, इसम गुम हुई वस्तुए शीघ्र ही मिल जाया करती हैं।[11]

राम के राज्याभिषेक के लिए जो समय निश्चित किया गया था उस समय

---

1 ब० जा० 1 13 अजवृषभमृगाङ्गनाकुलीरा ।
झषवणिजौ च दिवाकरादितुगा ॥
दशशिखिमनुयुक तिथीन्द्रियांशे।
स्त्रिनवकविंशतिभिश्च तऽस्तनीचा ॥

2 रा० 1 18 4 पुष्ये जातस्तु भरतो मीनलग्ने प्रसन्नधी । (म० वि०)

3 तत्त्व 1 18 14 सार्पे जातौ तु सौमित्री कुलीरेऽभ्युदिते रवौ। (मै० वि०)

4 रा० 1 71 13 उत्तरे दिवसे ब्रह्मन् फल्गुनीभ्या मनीषिण ।
वैवाहिक प्रशसन्ति भगो यत्र प्रजापति ॥

5 तदेव 1 72 8 युक्ते मुहूर्ते विजये सर्वाभरणभूषितै ।
भ्रातृभि सहितो राम कृतकौतुकमगल ॥

6 मु० चि० 11 74 इषमासितादशमी विजया शुभकमसु सिद्धिकरी कथिता।

7 रा० 2 83 21 मत्रे मुहूर्ते प्रययौ प्रयागवनमुत्तमम ।

8 तत्र्व 6 4 3 युक्तो मुहूर्ते विजये प्राप्तो मध्य दिवाकर ।

9 तदेव 6 4 6 उत्तराफाल्गुनी ह्यद्य श्वस्तु हस्तेन योक्ष्यते।

10 तदव 6 80 55 अभ्युत्थान त्वमद्यव कृष्णपक्षचतुदशीम ।
कृत्वा निर्याह्यमावस्या विजयाय स्वबलवृ त ।

11 तदेव 3 64 13 14

पुष्य नक्षत्र[1] और कक लग्न ज म समय के समान ही थे।[2] उस समय चद्रमा एव बृहस्पति ज म समय क समान ककराशिस्थ थ।[3]

दशरथ स्वय अपन विषय म कहते हैं कि सूय, मगल और राहु का ज म नक्षत्र को घरना ठीक नहीं ऐसी स्थिति होने पर या तो व्यक्ति की मत्यु होती है या घोर विपत्ति आती है।[4] उन दिनों ग्रह-नक्षत्रकृत अपशकुनो पर भी विचार किया जाता था। सारे ग्रहो का प्रभावहीन होना तथा 'विशाखा नक्षत्र का धूमयुक्त होना अयोध्या-वासियो के लिए अहित का सूचक था। इक्ष्वाकुदेश का नक्षत्र विशाखा' कहा गया है।[5] इसके साथ ही त्रिशकु, मगल, बुध, बहस्पति और शनश्चरादि ग्रह रात्रि को वक्री होकर चद्रमा के निकट आने लगे थे।[6]

इन विवरणो से सिद्ध होता है कि रामायण के युग म 'ज्योतिष वेदाग का सम्यक अध्ययन और अध्यापन होता था।

---

1 रा० 2 4 2, 2 4 21 22, 2 8 3, 2 13 3, 2 22 8

2 तदेव 2 15 3 उदिते विमले सूर्ये पुष्ये चाभ्यागत हनि।
सग्ने ककटक प्राप्त ज मराशस्य च स्थित ॥ (म० वि०)

3 तदेव 2 23 8 अद्य बाहस्पत श्रीमानुक्तो पुष्यो नु राघव।

4 तदेव 2 4 18 19 आवदयन्ति दवज्ञा सूर्यागारकराहुभि।
राजा हि मत्युमाप्नोति घोरा वाऽपन्मच्छति।

5 तदेव 2 36 10 11 नक्षत्राणि गतार्चीषि ग्रहाश्च गततेजस।
विशाखास्तु सधूमश्च नभसि प्रचकाशिरे॥
(भू०) विशाखा इक्ष्वाकुदेशनक्षत्रम्।

6 तदव 3 36 10 त्रिशकुर्लोहिताङ्गश्च बहस्पतिबुधावपि।
दारुणा सोममभ्येत्य ग्रहा सर्वे व्यवस्थिता।

तृतीय अध्याय

रामायण मे वर्णित वैदिक देवता

1 देवोत्पत्ति

वदिक-साहित्य मे प्राकृतिक शक्तिया को मानवीय शरीर, रूप, रग, गुण धम, वस्त्राभूषण, वाहन एव शस्त्र धारण करते हुए बतलाया गया है। ये मनुष्यो के समान खान-पान युद्ध तथा प्रेमादि करत वर्णित किए गए हैं। ये देवता किसी जाति की अपक्षा प्राकृतिक-दृश्यो के अधिक निकट होने के कारण प्राकृतिक है। अपने सम्मुख वतमान प्राकृतिक शक्तियो और दृश्या को ऋषियो ने देखा तथा देवरूप मे उनका वणन किया[1]। 'ऋग्वेद' म ता देवताआ का ही प्रमुख रूप स वणन हुआ है, अन्य सहिताआ मे कमकाण्ड तथा यातुविद्या आदि विषय प्रधान हो गए है। वदिक देवशास्त्र और उसी के साथ वदिक भाषा इतनी स्वच्छ और पारदशक है कि उसम बहुधा एक देव तथा उसके भौतिक आधार वाले नाम के साथ सबध स्पष्ट दीख पडता है। ऋषियो की कल्पना शक्ति ने देवा को इतन ऊचे स्थान पर पहुचा दिया कि ये शक्तिया मनुष्या के समान जन्म लेती तथा यज्ञ म हविष्य सोम आदि के लिए आती थी।

वदिक देवताओ के चरित्र प्राय नतिक और निर्दोष हैं। इनके दीघकाल जीवित रहने का रहस्य भी नतिकता ही है। नतिकता का यह ऊचा स्तर वदिक सभ्यता की प्राचीनता की ओर सकेत करता है। केवल देवताआ के ज्ञान से ही ऋषियो को सतोप नही हुआ। उनमे सष्टि के उपादान कारण को जानने की इच्छा भी हुई।

'रामायण' म स्वर्गीय देवताओ के साथ मानवो के सबध का ज्ञान होता है। यहा भी देवता समय-समय पर हव्य-पदाथ ग्रहण करने के लिए आते थे। ये राक्षसो के सहार के लिए मनुष्यो की सहायता करते थे। प्रसन्नता के समय पुष्पवर्षा और तुमुलध्वनि स स्वागत करते थे।

दार्शनिक सूक्तो म देवो की उत्पत्ति बहुधा जल से बतलाई गई है। 'अथर्ववेद' म उनका उद्भव असत् से माना गया है।[3] 'ऋग्वेद' के अनुसार दवो का

1 शिवनारायण शास्त्री निरुक्त मीमासा, पृ० 258

2 मैक्डानल वदिक देवशास्त्र, पृ० 3

3 अथर्व० 10 7 25 बृहन्तो नाम ते देवा येऽसत परिजज्ञिरे।

उत्थान विश्व की उत्पत्ति के अनंतर हुआ है।[1] 'ऋग्वेद' में उनका उदगम ससार के तीन विभागो के अनुसार तीन तत्त्वो से अर्थात अदिति जल और पृथिवी से बताया गया है। एक धारणा के अनुसार देवता एक-दूसरे से उत्पन्न हुए। एक स्थल पर उषा से[3] एक पर ब्रह्मणस्पति से[4] तथा एक पर सोम से[5] देवताओ की उत्पत्ति कही गई है। अथर्ववेद[6] मे कुछ देवता पिता तथा कुछ पुत्र माने गए हैं।[6] 'रामायण' के अनुसार देवता अदिति देवताओ की माता है। अतिम प्रजापति का विवाह प्रजापति दक्ष की आठ कन्याओ के साथ हुआ जिनमे दो के नाम अदिति तथा दिति थे। अदिति से ततिस देवता तथा दिति से दत्य उत्पन्न हुए।[7] देवो तथा दत्यो ने अमत प्राप्ति के लिए वासुकि नाग को डोरी तथा मदराचल पवत को मथनदण्ड बनाकर क्षीर-सागर का मथन किया। इससे सवप्रथम विष उत्पन्न हुआ जिसे भगवान् शकर ने ग्रहण किया। इसके बाद विष्णु ने कच्छप का रूप धारण करके मदराचल पवत को अपनी पीठ पर धारण किया। इसके बाद हजारो वर्ष मथन करने पर क्रमश आयुर्वेद के आचार्य धन्वन्तरि, अप्सराए परिचारिकाए वारुणी, उच्चै श्रवा नामक अश्व, कौस्तुभमणि तथा अमत निकला। वारुणी अर्थात सुरा ग्रहण करने के कारण अदिति के पुत्र 'सुर' कहलाए तथा दिति के पुत्र न ग्रहण करने के कारण 'असुर'।[8] अमत प्राप्ति के लिए देवो और दत्यो मे घोर सग्राम हुआ।[9] विष्णु ने अमत छीनकर मोहिनी रूप धारण किया और अमत देवो को पिला दिया जिससे वे अमर हो गए[10] इसके बाद दत्य युद्ध म मारे गए और स्वग पर दवताओ का राज्य हो गया जिसके राजा इन्द्र बने।[11]

---

1 ऋ० 10 129 6 अर्वाग देवा अस्य विसजनेनाथा को वेद यत आबभूव।
2 तदेव 10 63 2 ये स्थ जाता अदितेरद्भ्यस्परि ये पृथिव्यास्ते म इह श्रुता हवम।
3 तदेव 1 113 19 माता देवानामदितेरनीक यज्ञस्य केतुब हती वि भाहि।
4 तदेव 2 26 3 देवाना य पितरमाविवासति श्रद्धामना हविषा ब्रह्मणस्पतिम।
5 तदेव 9 87 2 पिता देवाना जनिता सुदक्षो विष्टम्भो दिवो धरुण पृथिव्या।
6 अथव० 1 30 2 ये वो देवा पितरो ये च पुत्रा सचेतसो मे शृणुतदमुक्तम।
7 रा० 3 14
8 तदेव 1 44 22 23 दित पुत्रा न ता राम जगहुवरुणात्मजाम।
अदितेस्तु सुता वीर जगहुस्तामनिन्दिताम॥
असुरास्तेन दतेया सुरास्तेनादित सुता।
9 तदेव 6 18 10 पुरा दवासुरे युद्धे।
10 तदेव 2 3 28 स ध्यामतमिवामरा।
11 तदेव 1 44

2 देवसख्या

ऋग्वद' एव 'अथववेद' म देवताओ की सख्या ततीस बतलाई गई है ।[1] इस सख्या को एकादश का तीन गुना भी कहा गया है ।[2] एक मत्र के अनुसार स्वग, अतरिक्ष तथा पथिवी पर ग्यारह ग्यारह देवता रहत हैं ।[3] 'अथववेद' के अनुसार देव द्युस्थानी, अतरिक्षस्थानी और पथिवीस्थानी इन तीन वर्गों मे विभक्त हैं यद्यपि इस प्रसग म सख्या का निर्देश नही आता ।[4] ततीस सख्या क अतगत सभी देवता नही आते क्योकि इसके अतिरिक्त भी दवा का उल्लख मिलता है ।[5] एक स्थल पर देवताओ की सख्या 3339 भी कही गई है ।[6] शतपथ-ब्राह्मण म भी देवो की सख्या ततीस दी गई है जिसके अनुसार अष्ट वसु एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, द्यावापथिवी और चौतीसवा प्रजापति मान गए हैं ।[7] एक अय स्थल पर द्यावा पथिवी के स्थान पर इद्र एव प्रजापति के नाम तैंतीस देवताओ म मिलते हैं ।[8] ऋग्वदोक्त 3339 सख्या भी 'शतपथ ब्राह्मण म 3333 रह गई है ।[9] रामायण' म भी देवताओ की सख्या ततीस कही गई है ।[10]

ऋग्वेद' के तीन विभागा का अनुसरण करके 'यास्क'[11] ने विभिन्न देवताओ

---

1 ऋ० 3 6 9 पत्नीवतस्त्रिशत त्रीश्च देवाननुष्वधमा वह मादयस्व ।
अथव० 10 7 13 यस्य त्रयस्त्रिशददेवा अग सर्वे समाहिता ॥

2 ऋ० 8 35 3 विश्वदेवस्त्रिभिरेकादशरिह ।

3 तदेव 1 139 1 ये देवासो दिव्येकादश स्थ पथिव्यामध्येकादश स्थ ।
अप्सुक्षितो महिनकादश स्थ त देवासो यज्ञमिम् जुषध्वम ।

4 अथव 10 9 12 ये देवा दिविषदो अतरिक्षसदश्च ये चेम भूम्यामधि ।

5 ऋ० 3 9 9 6 51 2

6 तदव 3 9 9 त्रीणि शता त्रीसहस्राण्यग्नि त्रिशच्च देवा नव चासपयन ।

7 श० ब्रा० 4 5 7 2 अष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशादित्या इमे एव
द्यावापथिवी त्रयस्त्रिश्यौ त्रयस्त्रिशदव देवा प्रजा
पतिश्चतुस्त्रिश ।

8 तदव 11 6 3 5 अष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशादित्यास्त एकत्रिशदिन्द्र
श्चव प्रजापतिश्च त्रयस्त्रिशाविति ।

9 श० ब्रा० 11 6 1 4 त्रयश्च त्री च शता त्रयश्च त्री च सहस्रेति ।

10 रा० 2 10 21 त्रयस्त्रिशदवा, 3 13 14, 5 23 10

11 नि० 7 5 तिस्र एव देवता इति नरुक्ता । अग्नि पृथिवीस्थान । वायुर्वेन्द्रो
वान्तरिक्षस्थान । सूर्यो द्युस्थान

को पृथिवीस्थानीय[1], अंतरिक्ष या मध्यमस्थानीय[2] और द्युस्थानीय[3]—इन तीन वर्गों मे बाटा है। इस धारणा का आधार ऋग्वेद का एक मत्र हो सकता है जिसमे कहा गया है कि सूय द्युलोक से, वात अतरिक्ष से तथा अग्नि पृथिवी से हमारी रक्षा करे।[4] नरुक्तो के अनुसार भी प्रत्येक लोक का एक एक ही देवता है। वस्तुत तात्त्विक रूप म कोई भी भेद नही, विभिन्न रूपा मे हम एक ही देवता की स्तुति करत हैं।[5] अन्य देवता एक ही आत्मा के अग हैं।[6]

3 देव

अग्नि—वदिक देवताओ मे अग्नि सवप्रमुख है। यह पृथिवीस्थाना देवता है। यज्ञ से 'अग्नि का घनिष्ट सबध है। ये स्वय हवि ग्रहण करने के पश्चात अन्य देवताओ को हवि पहुचाते हैं। 'यास्क'[7] एव 'शौनक'[8] ने 'अग्नि' को अग्रणी होने के कारण सवप्रथम प्रणयन के कारण तथा अगनयन क कारण 'अग्नि माना है। स्थौलाष्ठीवि' अवनोपन अर्थात अस्नेहन के कारण अग्नि को निष्पन्न मानते हैं।[9] रामायण मे अग्नि[10] के लिए पावक[11] चित्रभानु[12], हुताशन[13], हव्यवाहन[14] तथा अनल[15] शब्द मिलत हैं। अग्नि' का नाम भौतिक अग्नि से अभिन्न है परतु उसकी कल्पित मानवीय आकृति वदिक परपरा को स्पष्ट करती है।

---

1 तदेव 7 14 9 43 अग्नि पथिवीस्थान ।
2 तदव 10 1 11 50 अथातो मध्यस्थाना देवता ।
3 तदेव 12 1 46 अथातो द्युस्थाना देवता ।
4 ऋ० 10 158 1 सूर्यो नो दिवस्पातु वातो अतरिक्षात। अग्निन पार्थिवेभ्य ।
5 नि० 7 4 महाभाग्यात्देवताया एक एव आत्मा बहुधा स्तूयत ।
6 तदव 7 4 एकस्यैवात्मनान्ये देवा प्रत्यगानि भवन्ति ।
7 नि० 7 4 अग्रणीभवति । अग्र यज्ञषु प्रणीयत । अग नयति सन्नमान ।
8 ब० दे० 2 14 जातो यदग्रे भूतानामग्रणीरध्वरे च यत ।
नाम्ना सन्नयते वागस्तुतोऽग्निरिति सूरिभि ।
9 नि० 7 4 अवनोपनो भवतीति स्थौलाष्ठीवि ।
10 रा० 1 36 10, 2 38 12, 6 7 14
11 तदव 1 36 12, 1 36 14, 7 9 11, 6 77 28
12 तदेव 2 21 8 6 26 16
13 तदेव 1 30 21 1 35 17, 1 36 11 1 36 7 1 36 16, 2 2019, 2 58 27, 5 30 8
14 तदेव 5 51 25, 6 61 62 6 10 16 (नि० सा०)
15 तदव 3 12 9, 5 51 28

अरणियो के मथन से 'अग्नि' की उत्पत्ति होती है।[1] शुष्ककाष्ठ से जीवन्त 'अग्नि' उत्पन्न होता है।[2] इसकी महिमा निराली है। ज्योही यह उत्पन्न होता है त्यो ही अपने माता पिता को खा जाता है।[3] अग्नि उष्णता[4] तेज[5] एव प्रभा[6] के लिए विख्यात है। सूर्य के साथ अग्नि की समानता उष्णता, तेज एव प्रभा के कारण ही है। इस प्रकार सूर्य भी अग्नि का एक रूप माना गया है। अग्नि रात्रि के समय पृथ्वी और प्रात काल के समय उदित होता हुआ सूर्य बन जाता है।[7] 'ऐतरेय-ब्राह्मण' के अनुसार अस्त होता हुआ सूर्य अग्नि म समा जाता है और उसी से आविर्भूत होता है।[8]

'रामायण' मे त्रिविध अग्नि का उल्लेख मिलता है।[9] अग्नि के त्रिविध-जन्मा होने के कारण उसे त्रिविधस्वरूप माना गया है।[10] इसके जन्म भी त्रिविध हैं।[11] अग्नि त्रिप्रकाश है।[12] इसके तीन सिर[13], तीन जिह्वाए, तीन शरीर और तीन सधस्थ हैं।[14] त्रयी प्राय एक ही ढग से नही बल्कि अनेक प्रकार से वर्णित है। अग्नि के आवास

---

1 ऋ० 3 29 2 अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इव सधितो गर्भिणीषु।
3 23 2 अमन्थिष्टा भारतारेवदग्नि देवश्रवा देववात सुदक्षम।
7 1 1 अग्नि नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युती जनयन्त प्रशस्तम्।
2 तदेव 1 62 2 आग्निन् ते विश्वे अनु जुषन्त शुष्काद यद् देव जीवो जनिष्ठा।
3 तदेव 10 79 4 जायमानो मातरा गर्भो अत्ति।
4 रा० 3 38 12
5 तत्रैव 1 16 31 हुताशनादित्यसमनजस। (म० वि०)
6 तत्रैव 1 20 10 अग्निसमप्रभ। (म० वि०)
7 ऋ० 10 88 5 मूर्धा भुवो भवति नक्तमग्निस्तत सूर्यो जायते प्रातरुद्यन्।
8 ऐ० ब्रा० 8 28 9 आदित्यो वा अस्त यन्नाग्निमनुप्रविशति।
9 रा० 2 96 24 त्रयोऽग्नय, 4 13 22 त्रेताग्नयो यत्र दीप्यन्ते।
7 5 7 त्रेताग्निसमविग्रहान्। 7 5 8 त्रेताग्निसमतेजस।
10 ऋ० 1 95 3 त्रीणि जाना परि भूषन्त्यस्य समुद्र एक दिव्येकमप्सु।
11 तत्रैव 4 1 7 त्रिरस्य ता परमा सन्ति सत्या स्पार्हा देवस्य जनिमान्यग्ने।
10 88 50 तमू अकृण्वन् त्रेधा भुवे क स ओषधी पचति विश्वरूपा।
12 तत्रैव 3 26 7 अर्कस्त्रिधातू रजसो विमानोऽजस्रो घर्मो हविरस्मि नाम।
13 तत्रैव 1 146 1 त्रिमूर्धान सप्तरश्मिं गृणीषेऽनूनमग्नि पित्रोरुपस्थे।
14 तत्रैव 3 20 2

अग्ने त्री ते वाजिना त्री षधस्था तिस्रस्ते जिह्वा ऋतजात पूर्वी।
तिस्र उ ते तन्वो देववातास्ताभिर्न पाहि गिरो अप्रयुच्छन्।

का क्रम स्वग पृथिवी और सलिल है ।[1] यास्क' के अनुसार उनके पूववर्ती शाक पूणि इसी आधार पर इसे पथिवी अतरिक्ष और द्युस्थानीय मानते हैं ।[2] आकाश मे सूय रूप अग्नि, अतरिक्ष म विद्युत रूप अग्नि तथा पथिवी पर भौतिक अग्नि ही इस मायता का आधार है । ब्राह्मण-काल म यह त्रिविध अग्नि गाहपत्य दक्षिण तथा आहवनीय के रूप म प्रसिद्ध हुई ।

'रामायण' म अग्नि क बहुत से काय हैं जिनम अग्नि का लोकसादृय दशनीय है । सीता की अग्नि परीक्षा के समय अग्निदेव ने स्वय राम के समक्ष सीता की शुद्धता का प्रमाण दिया था ।[3] सीता द्वारा हनुमान की रक्षा के लिए प्रायना करने पर अग्नि तीव्र, अव्यग्र और सीधी ज्वालाओ म जलन लगा ।[4] इद्रजित क युद्ध मे जान स पहल अग्नि धूमरहित और तीव्र जलकर विजय सूचना देता था ।[5] अग्नि की पत्नी स्वाहा है ।[6] दवताओ के अनुरोध पर अग्नि ने रुद्र के तेज म प्रवश किया जिसस तज सिमटकर श्वत पवताकार बन गया, फिर अग्नि और सूय की भाति चमकीला होकर वह सरपत का वन हो गया । वहा तजस्वी कार्तिकेय की उत्पत्ति हुई ।[7] अग्नि न तज देवताओ के अनुरोध पर स्त्रीरूपधारी गगा म छोडा जिसे गगा ने हिमालय पवत पर छोडा । इससे स्वर्णादि सभी धातुओ की उत्पत्ति हुई । यहा कुमार कार्त्तिकेय का जन्म हुआ । देवताओ न इसे कृतिकाओ द्वारा दूध पिलाने के कारण कार्तिकेय कहा ।[8] वानर नील अग्नि के पुत्र हैं ।[9]

---

1 तदेव 8 44 16 अग्निमूर्धा दिव ककुत पति पृथिव्या अयम ।
अपा रेतासि जिन्वति ।

2 नि० 7 28 पृथिव्यामन्तरिक्षे दिवीति शाकपूणि ।

3 रा० 6 106 4 अब्रवीत्तु तदा राम साक्षी लोकस्य पावक ।
एषा त राम वदेही न पापमस्या विद्यते ॥

4 तदेव 5 51 28 ततस्तीक्ष्णार्चिरव्यग्र प्रदक्षिणशिखोऽनल ।
जज्वाल मृगशावाक्ष्या शसन्निव शुभ कप ॥

5 तदेव 6 67 9 शरदहोमसमिद्धस्य विधूमस्य महार्चिष ।
बभूवुस्तानि लिगानि विजय दशयन्ति च ॥

6 तदेव 5 22 20 अग्न स्वाहा यथा देवी ।

7 रा० 1 35 18 तदग्निना पुनर्व्याप्त सजात श्वतपवतम् ।
दिव्य शरवण चव पावकादित्यसन्निभम ॥
यत्र जातो महातजा कार्तिकेयोऽग्निसम्भव ।

8 तदेव 1 36

9 तत्रैव 1 17 13 पावकस्य सुतो श्रीमान्नीलोऽग्निसदृशप्रभ । (म० वि०)
4 40 8 नीलमग्निसुतम ।

'रामायण' म 'वश्वानर' नामक अग्नि का नाम भी आया है।[1] इसे यास्क प्रमुखतया पार्थिव अग्नि मानते हैं।[2] अग्नि का वश्वानर' नाम मनुष्यो को परलोक ले जाने के कारण अथवा सभी मनुष्यो को प्राप्त करने के कारण पडा।[3] अतरिक्ष मे स्थित वद्युत ज्योति तथा द्युलोक मे स्थित आदित्य ज्योति दोनो ही विश्वानर हैं। पार्थिव अग्नि इन दोनो से उत्पन्न होने के कारण वश्वानर है।[4] कुछ मत्रा मे अग्नि को आदित्य के रूप म और आदित्य को अग्नि के रूप मे वर्णित किया गया है। जहा वश्वानर को हवि प्रदान करने का विधान है वहा तो पार्थिव अग्नि ही 'वश्वानर है। इस नाम से जहा ज्योतियो वद्युत-अग्नि और आदित्य का वणन आता है वहा इस नाम स स्तुति गौण अथ म ही है।

अश्विनौ—वेदो मे वर्णित द्युस्थानी देवताओ मे इन्द्र के बाद युगल-देवता अश्विनो का स्थान बहुत महत्त्वपूण है। यद्यपि प्रकाश के देवताओ मे उनका स्थान विशिष्ट है तथापि प्रकाश के किसी भी दश्य से उनका सम्बन्ध इतना अस्पष्ट है कि उनके मौलिक स्वरूप का निर्धारण कठिन हो गया है। अश्विन शब्द √ अश धातु स निष्पन्न होता है। अश्विनद्वय सम्पूण जगत का अशन अर्थात व्यापन करते हैं—प्रथम रस से द्वितीय ज्योति स।[5] रामायण के अनुसार ये रूप-यौवन[6] सौभ्रात्र और वेग[8] के लिए विख्यात हैं। ये पितामह का अनुसरण करते हैं।[9] इनके पुत्र मन्द और द्विविद नामक वानर थे जो इन्ही के समान रूप और द्रविण सम्पन्न थे।[10] प्राचीनकाल म प्रजापति ने इन्हे अवध्य होने का वर दिया। इन्होने देवा का अमत पी लिया। वर प्राप्ति के पश्चात असुरा की बहुत-सी सना का

---

1 तदव 3 1 7, 3 1 22, 6 18 36

2 नि० 7 6

3 तदेव 7 6 विश्वा नरान्नयति। विश्व एन नरा नयन्तीति वा।

4 शिवनारायण शास्त्री, पूर्वोद्धत ग्रन्थ, पृ० 303

5 नि० 12 1 अश्विनौ व्यश्नुवाते सवम रसेनान्यो ज्योतिषान्य।

6 रा० 1 47 3, 1 49 18 अश्विनाविव रूपेण समुपस्थित यौवनौ।
7 37 5 रूपम चवाश्विनोरिव। (नि० सा०)

7 तदेव 2 8 20 अश्विनोरिव सौभ्रात्रम्।

8 तदेव 5 58 13 अश्विपुत्रौ महावेगौ।

9 तदेव 1 21 7 पितामहमिवाश्विनौ।

10 तदेव 1 17 14 रूपद्रविणसम्पन्नावश्विनौ रूपसम्मतौ।
मन्द द्विविद चव जनयामासतु स्वयम॥

विनाश किया।[1] इनका यह स्वरूप वदिक साहित्य के समान ही है। भागव शुक्राचाय ने इन्हें नीति-सहिता का ज्ञान कराया था।[2] ये यमल देवता[3] युवा[4] हैं। इनके आविर्भाव का काल महत उषाकाल है। जब लोहितवण स्वरूप अधकार बना रहता है[5], उस समय वे पृथिवी पर अवतीण होकर हवि स्वीकार करने रथ में चलते हैं।[6] उषा उन्हें जगाती है।[7] रथ म बठकर व उषा का अनुसरण करते हैं।[8] इस प्रकार उनके आविर्भाव का काल सूर्योदय और उषाकाल के मध्य है। अश्विनो को यज्ञ म उनके नियत काल के अतिरिक्त मध्याह्न साय एव सूर्यास्त के समय भी निमत्रित किया गया है।[9] प्रात कालिक देव होने के कारण ये अधकार का अपसारण करते हैं।[10] एतरेय-ब्राह्मण' मे इन्हें अग्नि एव उषा के समान प्रात काल का देव कहा गया है।[11] 'शतपथ-ब्राह्मण म इनका सम्बन्ध सूर्योदय के साथ है तथा इसका वण लोहितश्वेत है।[12] कुछ देवताओ के साथ इनका आह्वान वधू के

---

1 तदेव 5 58 13 15 अश्विपुत्रौ महावेगौ बलवन्तौ प्लवगमौ।
पितामहवरोत्सेकात्परम रूपमास्थितौ।
अश्विनोर्माननाथ हि सवलोकपितामह।
सर्वावध्यत्वमतुलमनयोर्दत्तवान्पुरा।
वरोत्सेकेन मत्तौ च प्रमथ्य महतीं चमूम।
सुराणाममत वीरौ पीतवन्तौ महाबलौ॥

2 रा० 7 84 16 यथाश्विनौ भागवनीतिसहिताम।

3 ऋ० 3 39 3 यमाचिदत्र यमसूरसूत।

4 तदेव 7 67 10 नू मे हवमा शृणुत युवाना यासिष्ट वर्तिरश्विना विरावत।

5 तदेव 10 61 1 कृष्णा यद गोष्वरुणीषु सीदद दिवो नपाताश्विना हुवे वाम।

6 तदेव 1 22 2 या सुरथा रथीतमोभा देवा दिविस्पृशा।
अश्विना ता हवामहे।

7 तदेव 8 9 17 ॥ बोधयोषोअश्विना।

8 तदेव 8 5 2 नवद दस्रा मनायुजा रथेन पृथुपाजसा। सचेथे अश्विनोषसम।

9 तदेव 8 22 14 ताविद दोषा ता उषसि शुभस्पती ता यामन् रुद्रवतनी।
5 76 3 उतायात सगवे प्रातरह्नो मध्यदिन उदिता सूयस्य।
दिवा नक्तमवसा श तमेन नेदानी पीतिरश्विना ततान।

10 तदेव 3 39 3 तमोहना तपुषो बुध्न एता।

11 ऐ० ब्रा० 2 15 एत वाव देवा प्रातर्यावाणा यदग्निरुषा अश्विनौ।

12 श० ब्रा० 5 5 4 1 श्येत अश्विनो भवति। श्येताविव ह्याश्विनौ।
लोहित आश्विनो भवति तद यदेनया यजत।

गभ के लिए किया गया है।[1] इन्होंने पुसत्वहीन पुरुष की पत्नी को अपत्य बनाया तथा बन्ध्या गाय के दूध की धारा बहा दी थी। ये प्रेमियो को परस्पर मिलाते हैं।[3] एक उपाख्यान के अनुसार इन्होंने जराग्रस्त च्यवन ऋषि को पुसत्व प्रदान किया था।[4] जीर्ण कलि भी इनकी कृपा से यौवन सम्पन्न हुए।[5]

इनके वेग के विषय में भी बहुत-कुछ तथ्य मिलते हैं। 'ऋग्वेद मे इन्हे शीघ्रगामी,[6] मनोजवा,[7] बाज के समान[8] तथा अमित शक्तिमान[9] कहा गया है। इसी प्रकार ये मनुष्यो को कष्टो से उबारते हैं[10] दिव्य भिषग् हैं।[11] अपने उपचारो से रोगो की शाति करते हैं,[12] अधो को फिर से दिखाते हैं।[13] उषा एव सूय के साथ इन्हें भी सोमपान के लिए बुलाया गया है[14] परतु हिलेब्राण्ट के अनुसार मूलत 'अश्विनौ सोमयाग के देवो से बाहर थे।[15]

'अश्विनौ रस और ज्योति से व्याप्त करने वाले देवता कौन हैं इस विषय मे बहुत से मत प्रचलित हैं। 'शतपथ-ब्राह्मण' म 'द्यावापृथिवी' को अश्विना कहा गया

---

1 ऋ० 10 184 2 गभ ते अश्विनौ देवावा धत्ता पुष्करस्रजा।

2 तदेव 1 112 3 याभिर्धेनुमस्व पिन्वथो नरा ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम।

3 अथव० 2 30 2 स चनयाथो अश्विना कामिना स च वक्षथ ।

4 ऋ० 1 116 10 जुजुरुषो नासत्योत वव्रि प्रामुञ्चत द्रापिमिव च्यवनात। प्रातिरत जहितस्यायुदस्रादित्पतिमकृणुत कनीनाम् ॥

5 तदेव 10 39 8 युव विप्रस्य जरणामुपेयुष पुन कलेरकृणुत युवद्वय ।

6 तदेव 6 63 5 प्र मायाभिर्मायिना भूतमत्र नरा नतू जनिमन यज्ञियानाम ।

7 तदेव 8 22 16 मनोजवसा वृषणा मदच्युता।

8 तदेव 5 78 4 श्येनस्य चिज्जवसा ।

9 तदेव 10 24 4 युव शक्रा मायाविना समीची ।

10 तदेव 1 112 2 याभिर्धियोऽवथ कर्मन्निष्टये ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ।

11 तदेव 8 18 8 उत त्या दव्या भिषजा श न करतो अश्विना ।

12 तदेव 8 22 10 ताभिर्नो मक्षू तूयमश्विना गत भिषज्यतम् ।

13 तदव 1 116 16 तस्मा अक्षी नासत्या वि चक्ष आ धत्त दस्रा भिषजावनर्वन।

14 तदेव 8 35 1 सजोषसा उषसा सूर्येण च सोम पिबतमश्विना ।

15 एलफ्रेड हिलेब्राण्ट, वदिक माइथोलाजो, भाग 1, पृष्ठ 35 47

है।[1] क्योंकि द्यौ ज्योति से और पृथिवी अन्न से जगत को व्याप्त करते हैं।[2] 'अहोरात्र' अश्विनौ हैं, क्योंकि दिन ज्योति से और रात ओस से पृथिवी को व्याप्त करती है।[3] सूर्य एवं चन्द्रमा अश्विनौ हैं, क्योंकि चन्द्रमा रस से और सूर्य प्रकाश से जगत को व्याप्त करता है।[4] इसका ऐतिहासिक पक्ष भी माना गया है जिसके अनुसार दो पुण्य करने वाले राजा अश्वा से युक्त होने के कारण अश्विनौ हैं।[5] 'वेबर' के मत में अश्विनौ जमिनि तारा मण्डल में युगल तारे हैं। 'गेल्डनर' ने भारत की सहायता करने वाले दो सतो को अश्विनौ माना है। मक्डानल के अनुसार धुधला प्रकाश एवं सुबह का तारा ही अश्विनौ हैं।[6] इन दो अश्विनौ को क्रमशः नासत्य और दस्र मानना ही अधिक उपयुक्त है।[7] √दस्र को यास्क ने व्याप्ति अर्थ में माना है।[8] पहले यह नासत्या शब्द तमोभाव या रात्रि के अर्थ में प्रचलित रहा होगा। कालान्तर में उषा के आसपास अश्विन का दस्र नाम पड़ा और पहले का नाम नासत्य ही रह गया। अब अश्विनौ शब्द से दोनों देवों का बोध होता है।[9]

इन्द्र—वदिक-साहित्य में अंतरिक्ष—स्थानीय इन्द्र प्रमुख स्थान रखते हैं। 'ऋग्वेद' के लगभग चतुर्थांश सूक्तों में इन्द्र का ही गुणगान है। इन्द्र का स्वरूप अत्यंत मानवीय है। इसके साथ कुछ प्रसिद्ध गाथाएं सम्बद्ध हैं—जैसे अवर्षा एवं अन्धकार पर विजय पाना, प्रकाश का प्रसार करना आदि। इस प्रकार इन्द्र वर्षा के प्रमुख रूप से देवता हैं और गौणरूप से युद्ध के देवता जो सम्भवतः भारत के आदिवासियों के ऊपर विजय प्राप्त करने में आर्यों की सहायता करते रहे होंगे।

---

1 श० ब्रा० 4 1 5 16 इमे ह वै द्यावापृथिवी प्रत्यक्षमश्विनौ इमे हीदं सर्व मश्नुताम्।

2 नि० 12 1 द्यावापृथिव्यावित्येके, परं दुर्गवत्ति।

3 तत्रैव 12 1 अहोरात्रावित्येके, परं दुर्गवत्ति।

4 12 1 सूर्याचन्द्रमसावित्येके, परं दुर्गवत्ति।

5 तदेव 12 1 राजानौपुण्यकृतावित्यैतिहासिका।

6 मक्डानल, वदिक देवशास्त्र, पृष्ठ 126

7 ऋ० 1 3 3 दस्रा युवाकवः सुता नासत्या वक्तबर्हिषः।

8 नि० 7 17

9 शिवनारायण शास्त्री निरुक्त मीमांसा, पृष्ठ 362

इन्द्र' शब्द की व्युत्पत्ति मे यास्क ने कई धातुओं की कल्पना की है।[1] 'इरा' का अर्थ अन्न है जिसस मिलकर कई धातुओं से 'इन्द्र' शब्द की निष्पत्ति होती है। यह इरा को उद्देश्य करके उसके निष्पादक जल की सिद्धि के लिए मेघ का विदीर्ण करता है। यह इरा उत्पन्न करने के लिए भूमि को विदीर्ण करता है। √दुदाञ्—दानार्थक धातु यह वष्टि के निष्पादन से इरा प्रदान करता है। √धाञ्—पोषणार्थक धातु, यह इरा का जल से पोषण करता है। 'इन्दु' का अर्थ सोमवल्लीरस है। √द्रु—गत्यर्थ धातु 'इन्दु' की प्राप्ति के लिए यागभूमि म दौड़ता है। √जिइन्धी—दीप्त्यर्थक धातु, प्राणियों के शरीर में चैतन्यजीव को प्रविष्ट कराके दीपित करता है। इसी आधार पर 'बृहदारण्यकोपनिषद्' म दक्षिण नेत्र स्थित पुरुष को परोक्ष रूप से इन्द्र माना गया है क्योंकि परोक्ष को प्रिय मानने वाले प्रत्यक्ष से द्वेष करते हैं।[2] आग्रायण नामक मुनि 'इद करण' के कारण 'इन्द्र' मानते है।[3] इन्द्र परमात्मा के रूप मे ससार को बनाता है। 'औपमन्यव' मुनि 'इदन्दर्शन' के कारण 'इन्द्र' मानते हैं[4] क्योंकि विवेक के कारण परमात्मा का आपरोक्ष्य स देखा जाता है। √इदि—परमैश्वर्यार्थक धातु, स्वमाया से जगत ही परमेश्वर है। इस अभिप्राय से 'इन्द्र' को मायारूप कहा गया है।[5] 'इन्' शब्द मे आकार का लोप होने पर 'इन' परमेश्वरवाचक शब्द बनता है। √द—भयार्थक धातु, वह परमेश्वररूप शत्रुओं म भय उत्पन्न करता है। √द्रु—गत्यर्थक धातु, वह शत्रुओं को भगाता है। वह परमेश्वर यागानुष्ठान आदि में भय दूर करता है। मक्डानल ने 'इन्दु' से इसकी व्युत्पत्ति मानी है।[6]

रामायण' म इन्द्रविषयक कुछ वदिक तथा कुछ परवर्ती विशेषताए मिलती

---

1 ऋ० 1 3 4 पर सायणभाष्य।
नि० 10 8 इन्द्र इरा दृणातीति वा, इरा ददातीति वा, इरा दधातीति वा, इरा दारयतीति वा इरा धारयतीति वा, इन्दवे द्रवतीति वा, इन्दौ रमत इति वा, इन्धे भूतानीति वा। द्रष्टव्य इस पर दुर्गवृत्ति।

2 बृ० उ० 4 2 2 इन्धो ह वै नामष यो य दक्षिणेऽक्षन् पुरुष । त वा एतमिन्ध सन्तमिन्द्र इत्याचक्षते परोक्षेण परोक्षप्रिया हि देवा प्रत्यक्षद्विष ।

3 नि० 10 8 इदकरणादित्याग्रायण ।

4 तदेव 10 8 इदन्दर्शनादित्यौपमन्यव ।

5 तत्रैव 10 8 इन्दतेर्वैश्वर्यकर्मण इन्शत्रुणा दारयिता वा, द्रावयिता वा, आदरयिता च यज्वानाम्।
ऋ० 6 47 18 इन्द्रो मायाभि पुरुरूप ।

6 मक्डानल, वदिक देवशास्त्र, पृष्ठ 160

है। इन्द्र अमरावती के पालक,[1] देवताओ के राजा तथा पूव दिशा के स्वामी हैं।[3] अत इन्द्र के लिए कुछ स्थलो पर देवपति देवराज, सुरपति,[4] सुरेन्द्र, महेन्द्र,[6] सुरनायक,[7] त्रिदशाधिप[8] और त्रिदशेश्वर[9] विशेषण प्रयुक्त है। इसके अतिरिक्त उनके लिए शक्र[10] सहस्राक्ष[11] पाकशासन,[12] पुरन्दर[13] वासव,[14] शतक्रतु[15] और मघवान[16] शब्द भी मिलते है। यहा 'शतक्रतु' स स्पष्ट है कि इन्द्र न सौ यज्ञ किए थे।[17] इहाने सौ यज्ञ करके स्वग पाया था।[18] 'शक्र नाम से इनके शक्ति शाली होने का बोध होता है। 'इन्द्र' प्रत्येक पव के दिन महेन्द्र नामक पवत पर पदापण करत थे।[19] मेघ नामक पवत पर देवोने इन्हे राजा के पद पर अभिषिक्त किया था।[20] एक स्थल पर इन्द्र के वसुओ द्वारा सलिल स अभिषक किए जाने का

1 रा० 1 6 5 इन्द्रेणेवामरावती।
2 तदेव 6 105 2 सहस्राक्षश्चदेवेश।
3 तदेव 2 16 24 पूर्वां दिश वज्रधर। (म० वि०)
4 तदेव 1 32 19, 1 32 32, 2 44 22, 2 101 29 3 6 10
5 तदेव 1 16 32 (मै० वि०)
6 तदेव 3 18 7 3 29 30 4 8 22
7 तदेव 5 51 44 (म० वि०)
8 तदेव 4 25 30 9 तदेव 4 29 13
10 तदेव 1 6 3 1 6 28, 1 14 8, 1 24 17, 1 45 11 15 19 21 2 1 38 2 329 6 7 14, 6 18 19 20, 6 69 1
11 तदेव 1 23 17 1 25 16 1 45 9 12, 1 46 1 2 14 20 2 22 13, 3 18 7, 3 4 21, 4 25 33, 4 29 22, 5 1 123 6 105 2
12 तदेव 1 23 23, 3 18 7 3 29 30
13 तदेव 1 24 16, 1 45 17 2 36 20, 3 29 30 5 34 31
14 तदेव 1 17 27, 1 45 19, 3 27 3, 3 35 13, 4 25 33, 4 66 25, 6 16 21
15 तदेव 1 48 5 3 6 10, 3 4 11 5 1 110, 128,
16 तदेव 2 101 8 (म० वि०)
17 एलफ्ड हिलेब्राण्ट, पूर्वोद्धृत ग्रन्थ, भाग 2, पष्ठ 94
18 रा० 2 101 29 शत क्रतुनामाहृत्य देवराट त्रिदिव गत।
19 तदेव 4 40 23 तमुपति सहस्राक्ष तदा पवसु-पवसु।
20 तदेव 4 41 29 पाकशासन। अभिषिक्त सुर राजा मेघो नाम पवत।

उल्लेख है।[1] ये पूवकाल मे अत्यन्त पराक्रमी रहे।[2] ऋग्वेद मे जहा इनके पराक्रमो का वणन मिलता है वहा वत्र का वध, पवत विदारण तथा जलमोचन प्रमुख हैं।[3] इन सभी कार्यों का 'रामायण' म उल्लेख है। यहा भी ये वर्षा के देवता[4] तथा पवत पक्षच्छेत्ता हैं।[5] इन्द्र के वृत्रवध को 'रामायण' म पूणतया ऐतिहासिक बना दिया गया है जबकि एसा वदिक साहित्य को अभिप्रेत नही।[6] 'रामायण' म वत्र वध के अतिरिक्त वल तथा नमुचि के वध का उल्लेखमात्र हुआ है।[7] इन्द्र ने वत्र को मारा तो उन्हे इतना यश मिला कि उनका नाम वत्रहा पड गया।[8] नैरुक्तो ने मेघस्थ जल और ज्योति के मिश्रण को इन्द्र-वत्र-युद्ध माना है। जल के भार से झुका मेघ ही वत्र है। वष्टि का प्रेरक इन्द्र अपने विद्युत रूप वज्र से उसे मारता है और मेघ के शरीर म स्थित जल उससे मुक्ति पाता है।[9] 'रामायण' के अनुसार इन्द्र वत्रासुर के तप स व्यग्र होकर उसकी हत्या करते हैं। ब्रह्महत्या से ग्रस्त इन्द्र को देह सकुचित करके निजन प्रदेश म रहना पडता है। उन्हे अश्वमेध के पश्चात् ही इससे मुक्ति मिली।[10] इन्द्र के पवतो के पक्ष काटने का उल्लेख वेदो मे मिलता है। इन्होंने चलायमान पवतो एव पथिवी को स्थिर कर दिया।[11] 'मत्रायणी-सहिता

---

1 तदेव 4 26 36 सलिलेन सहस्राक्ष वसवो वासव यथा।

2 तदेव 1 23 5, 3 40 13, 5 27 66 वासवस्तुल्यविक्रमम ।
6 18 19 शक्रस्येव पराक्रम ।
2 1 38 यमशक्रसमो वीर्ये।
6 7 16 शक्रस्तुल्यपराक्रम ।

3 ऋ० 1 80, 1 32, 1 52

4 रा० 4 14 14 वषणेनव शतक्रतु।
4 38 2 यदिन्द्रो वषते वषम्।
7 62 10 काले वषति वासव ।

5 तदेव 5 1 110 तत क्रुद्ध सहस्राक्ष पवताना शतक्रतु।
पक्षाश्चिच्छेद वज्रेण तत शतसहस्रश ॥

6 प्रस्तुत शोधप्रबन्ध, पृष्ठ 230

7 रा० 3 27 3, 3 29 19 4 11 22

8 ऋ० 8 [illegible] 3 वृत्र हनति वृत्रहा शतक्रतुवज्रेण शतपवणा।
3 45 2 वृत्रखादो वल रुज ।

9 नि० 2 16

10 प्रस्तुत शोधप्रबन्ध, पृष्ठ 261

11 ऋ० 2 12 2 य पथिवीं व्यथमानामदृहद् य पवतान् प्रकुपिताँ अरम्णात।
10 44 8 गिरीरज्रान् रेजमाना अधारयत्।

मे पवता के चलने से पृथिवी के कापने का उल्लेख है। इन्द्र के पक्ष काटने पर ये बादल बन गए।[1] 'ऋग्वेद' के एक मन्त्र म भी ऐसा वणन मिलता है।[2] इन्द्र न ही आकाश म प्रकाशमान लोक का स्थिर किया।[3] उन्होने पृथिवी का सम्भाला तथा द्युलोक को स्तम्भित किया[4]। 'रामायण' के अनुसार इन्द्र ने पातालवासी असुर समूहो के निकलने के माग को रोकन क लिए मनाक पवत को समुद्र म परिघरूप से स्थापित किया था।[5] जब इन्द्र मनाक पवत के पक्ष काटन के लिए वज्र लेकर उद्यत हुए तो सहसा वायु ने उसे समुद्र म गिरा दिया।[6] इसीलिए वायुपुत्र हनुमान को मनाक पवत ने रुकने जाने का आग्रह किया था।

'रामायण' म अदिति ही इन्द्र की माता है।[7] इससे पूव इन्द्र की उत्पत्ति के सम्बन्ध म विभिन्न मत है। 'ऋग्वेद' के अनुसार देवो ने एक राक्षस के विनाश के लिए इन्द्र को उत्पन्न किया था।[8] एक स्थल पर इन्द्र एव कुछ अन्य देवताओ का जनक सोम कहा गया है।[9] 'पुरुषसूक्त' के अनुसार विराट्पुरुष के मुख से इन्द्र एव अग्नि आविभूत हुए।[10] 'शतपथ-ब्राह्मण' के अनुसार अग्नि, सोम तथा परमेष्ठी की भाति इन्द्र को भी प्रजापति ने बनाया।[11] तैत्तिरीय-ब्राह्मण म प्रजापति के

---

1 म० स० 1 10 13 इन्द्र पक्षानछिनत्तरिमामद हृद् ये पक्षा आसस्ते जीमूता अभवन्।

2 ऋ० 4 54 5 इन्द्रज्येष्ठान् बहद्भ्य पवतभ्य क्षया एभ्य सुवसि पस्त्यावत ।
यथायथा पतयन्तो वियेमिर एवव तस्थु सवित सवाय [illegible] ।।

3 तदेव 8 14 9 इन्द्रेण रोचना दिवो दृळ्हानि दृंहितानि स्थिराणि न पराणुदे ।।

4 तदव 2 17 5 अधारयत्पृथिवी विश्वधायसमस्तभ्नान्मायया द्यामवस्रस ।।

5 रा० 5 1 80 त्वमिहासुरसघाना दवराना महात्मना ।
पातालनिलयाना हि परिघ सन्निवेशित ।।

6 तत्रैव 5 1 111 112 स मामुपगत क्रुद्धो वज्रमुद्यम्य देवराट्।
ततोऽह सहसा क्षिप्त श्वसनेन महात्मना ।
अस्मिल्लवणतोये च प्रक्षिप्त प्लवगोत्तम ।।

7 रा० 1 17 7 अदितिर्वज्रपाणिना ।

8 ऋ० 3 49 1 घन वृत्राणा जनयन्त देवा ।

9 तदेव 9 96 5 सोम पवते जनिता मतीना जनिता दिवो जनिता पृथिव्या ।
जनिताग्नेर्जनिता सूयस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णो ।

10 तदेव 1[illegible] 93 13 मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत ।

11 श० ब्रा० 11 1 [illegible] 14 ता वा एता प्रजापतेरधि देवता असृज्यन्ताग्निरिन्द्र सोम परमेष्ठी प्राजापत्य ।

अन्य देवो के वाद इन्द्र को बनाने का उल्लेख है।[1]

इन्द्र ने जिस आयुध से वत्रादि राक्षसो को मारा तथा पवतपक्षो को काटा वह वदिक साहित्य के समान 'रामायण' मे भी वज्र या अशनि के रूप मे मिलता है।[2] यह वज्र इतना प्रसिद्ध है कि इन्द्र के लिए वज्रिण, वज्रधर तथा वज्रपाणि आदि शब्दो का प्रयोग किया गया है।[3] ऋग्वेद के अनुसार यह वज्र त्वष्टा ने वनाया था।[4] एक स्थल पर यह भी वणन मिलता है कि उशना ने इसे बनाकर इन्द्र को अर्पित किया था।[5] 'ऐतरेय-ब्राह्मण' के अनुसार देवो ने ही यह वज्र इन्द्र को दिया था।[6] यह पानी से आवत समुद्र मे रहता है। इसका स्थान सूय के नीचे है।[7] साधारणतया इसे 'आयस' कहा गया है।[8] कही-कही यह हिरण्यय,[9] हरित,[10] अथवा अर्जुन[11] भी कहा गया है। यह चतुष्कोण[12] शतपव,[13] सहस्रभृष्टि[14] तथा तिग्म[15] है। इसका उल्लेख अश्मपवत की भाति हुआ है।[16]

'रामायण' म शची के इन्द्र की पत्नी होने के सकेत मिलते हैं। जिसे इन्होने

---

1 त० ब्रा० 2 2 10 1 प्रजापतिरिन्द्रमसजतानुजावर देवानाम।

2 रा० 4 8 22 महेन्द्राशनि सन्निभा 3 30 17 वज्राशनिकृतव्रणम।
 2 48 15 वृत्रमिन्द्राशनियथा, 4 16 33 वज्रेणेव महागिरि।
 6 53 13 शक्राशनिसमप्रख्यम्, 6 69 1 शक्राशनियमस्वनम्।

3 तदेव 1 17 7, 2 68 19, 3 11 33, 3 22 24, 6 16 21

4 ऋ० 1 32 2 त्वष्टास्म वज्र स्वय ततक्ष।

5 तदेव 1 121 12 य ते काव्य उशना मन्दिन दाद् वत्रहण पाय ततक्ष वज्रम।
 5 34 2 सहस्रभृष्टिमुशना वध यमत।

6 ऐ० ब्रा० 4 1 देवा व प्रथमेनाह्नेन्द्राय वज्र समभरन्।

7 ऋ० 10 127 21 अय यो वज्र पुरुधा विवृत्तोऽव सूयस्य बहत पुरीषात्।

8 तदेव 1 52 8 अधत्थ्या बाह्वोवज्रमायसमधारयो दिव्या सूय दर्शे।

9 तदेव 1 57 2 इन्द्रस्य वज्र श्नथिता हिरण्यय।

10 तत्रैव 3 44 4 हृयश्वो हरित धत्त आयुधमा वज्र बाह्वोहरिम्।
 10 96 3 सो अस्य वज्रो हरितो य आयस।

11 तत्रैव 3 44 5 इन्द्रो हय तमर्जुन वज्र शुक्रैरभीवतम्।

12 तदेव 4 22 2 चुपा वर्पाध चतुरश्रिमस्यन।

13 तदेव 8 6 6 वज्रेण शतपवणा।

14 तदेव 1 80 12 अभ्येन वज्र आयस सहस्रभष्टिरायत।

15 तत्रैव 7 18 18 तिग्म तस्मिन्नि जहि वज्रमिन्द्र।

16 7 104 19 प्र वतम दिवो अश्मानमिन्द्र सोमशित मघवन्त्स शिशाधि।
 प्राक्तादपाक्तादधरादुदक्तादभि जहि रक्षस पवतन॥

अपहरण करके प्राप्त किया था।[1] 'शचीपति' शब्द के प्रयोग से यह धारणा और भी पुष्ट हो जाती है।[2] 'ऋग्वेद' म भी इन्द्र की पत्नी के विषय म सकेत मिलते हैं।[3] एक सूक्त में इन्द्रपत्नी इन्द्र से वार्तालाप करती प्रस्तुत की गई है, वहा इन्द्राणी नाम मिलता है।[4] 'शतपथ ब्राह्मण' म इन्द्राणी को इन्द्र की पत्नी कहा गया है।[5] 'ऐतरेय-ब्राह्मण' प्रासहा और सेना को इन्द्र की पत्निया बतलाता है।[6] वस्तुत ये दोनो 'इन्द्राणी के ही प्रतिरूप है।[7] वास्तव म इन्द्र की पत्नी होने के कारण ही इन्द्राणी' शब्द का प्रयोग किया गया हो ऐसा सम्भव है। इन्द्र की पत्नी का वास्तविक नाम शची' ही था।

'रामायण' म इन्द्र का हाथी ऐरावत'[8] तथा सारथी मातलि' है।[9] एरावत इरावती का पुत्र है।[10] देवासुर सग्राम म ऐरावत ने रावण के वक्ष स्थल पर प्रहार किए।[11] 'ऐरावत' युद्ध के लिए भी प्रशिक्षित था।[12] युद्धकाल म 'ऐरावत के प्रहारो के चिह्न भी रावण की भुजा पर विद्यमान थे।[1] इसका आकार कलाश पर्वत के समान था। चतुर्दन्त ऐरावत का गण्डस्थल मदयुक्त है। यह उन्नत आभूषण धारण करता है तथा स्वर्णघटा की ध्वनि के समान इसका अट्टहास है।[14]

---

1 रा० 5 22 20 शची व इन्द्रस्य शोभने ।
 3 40 22 आहरिष्यामि वदेही सहस्राक्ष शचीमिव ।
2 तदेव 1 47 17, 3 4 17, 5 34 31
3 ऋ० 1 82 5 1 82 6 3 53 4, 6 10 86 9 10
4 तदेव 1■ 86 11 इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगामहमश्रवम ।
 10 86 12 नाहमिन्द्राणि रारण सख्युवपाकृते ।
5 श० ब्रा० 14 2 1 ■ इन्द्राणी ह वा इन्द्रस्य प्रिया पत्नी ।
6 ऐ० ब्रा० 3 22 7 सेना वा इन्द्रस्य प्रिया जाया वावाता प्रासहा नाम ।
7 त० ब्रा० 2 4 2 7 8 सेना ह नाम पथिवी धनजया । विश्वव्यचा अदिति सूर्यत्वक । इन्द्राणी देवी प्रासहा दनाना । सा नो देवी सुहवा शम यच्छतु ।
8 रा० 3 22 24 देवराजमपि क्रुद्धो मत्तरावतगामिनम ।
9 तदेव 6 102 6 (नि० सा०), 7 28 23
10 तदेव 3 13 24 ततस्त्विरावती नाम जज्ञे भद्रमदा सुताम ।
 तस्यास्त्वैरावत पुत्रो लोकनाथो महागज ॥
11 रा० 3 30 7 ऐरावत विषाणाग्रस्त्कृष्टकिणवक्षसम ।
12 तदेव 5 5 32 शिक्षिता गजशिक्षायाम रावतसमा युधि ।
13 तदेव 5 8 14 ऐरावतविषाणाग्रापीडनकृतव्रणौ ।
14 तदेव 7 35 37 8 तत कलाशकूटाभ चतुर्दन्त मदस्रवम । भृगारधारिण प्राशु स्वर्णघण्टाट्टहासिनम । इन्द्र करीन्द्रमारुह्य ।

इन्द्र राजा हैं तथा इनके सचिव मरुद्गण हैं।[1] इन्द्र के चरित्र म मानवीयता के कारण कतिपय अनतिक तत्त्व आ गए हैं। इसके कारण इनके पराक्रम म क्षीणता आ गई है। 'रामायण' मे इन्द्र पृथिवी पर तप तथा यज्ञ करने वाला से भयभीत रहते हैं। इन्होंने सगर[2] तथा अम्बरीष[3] के यज्ञपशु को छल से चुराया, जिससे कि उनका यज्ञ सम्पन्न न हो सके। इन्होने 'विश्वामित्र' के तपोभग के लिए 'रम्भा' नामक अप्सरा भेजी।[4] एक सत्यवादी तपस्वी की तपस्या मे विघ्न डालने के लिए इन्होंने उसे धरोहर रूप म अपना खड्ग दे दिया।[5] इन्होंने अहल्या का सतीत्वभग करके गौतम ऋषि को क्रोध उत्पन्न किया, जिसके फलस्वरूप य मुनि के शाप से वृषणरहित हो गए थे।[6] देवताओ के अनुरोध पर पितदेवा ने इनम मेष के वृषण प्रत्यारोपित करके पुन वृषणयुक्त बनाया था।[7] पूर्वकाल मे इन्होंने पृथिवी का नाश करने की इच्छा रखने वाली विरोचन की पुत्री मथरा का वध किया था।[8] जब विरोचन-कुमार-बलि ने इनके राज्य को अपने अधिकार म ले लिया तो विष्णु ने वामनरूप म कश्यप के घर मे ही जन्म लेकर अपने भ्राता इन्द्र को पुन शासक बनाया था।[9] यह राज्य इन्द्र ने दैत्यों का वध कर प्राप्त किया था।[10] दिति ने अपने पुत्रो के वध से दुखी होकर ऐसे पुत्र के लिए तप किया जो इन्द्र का वध कर सके। इन्द्र ने दिति के उदर म प्रवेश करके उस गभ के सात टुकडे कर दिए और दिति की प्राथना पर उन मरुद्गणरूप पुत्रो को सप्तवातस्कन्धो का अधिपति बना

---

1 तदेव 3 30 4 सचिवमरुद्भिरिव वासवम।

2 तदेव 1 38 7 राक्षसीं तनुमास्थाय यज्ञियाश्वमपाहरत।

3 तदेव 1 60 6 तस्य वै यजमानस्य पशुमिन्द्रो जहार ह।

4 तदेव 1 63

5 तदेव 3 8 14 15 तस्यव तपसो विघ्न कर्तुमिन्द्र शचीपति।
खड्गपाणिरथागच्छदाश्रम भटरूपधृक्॥
तस्मिस्तदाश्रमपदे निहित खड्ग उत्तम।
स न्यासविधिना दत्त पुण्ये तपसि तिष्ठत॥

6 रा० 1 47 27 28

7 तदेव 1 48 1 11

8 तदेव 1 24 17 श्रूयते हि पुरा शक्रो विरोचनसुता नृप।
पृथिवीं हन्तुमिच्छन्तीं मन्थरामभ्यसूदयत्॥

9 तदेव 1 28 3-12

10 तदेव 1 44 27 निहत्य दितिपुत्रांस्तु राज्य प्राप्य पुरन्दर।
शशास मुदितो लोकान्सर्षिसघान्सचारणान्॥

दिया ।[1] विश्वामित्र के मन्त्र के प्रभाव से सशरीर स्वर्ग आते हुए राजा त्रिशंकु को पुन अधोमुख पृथिवी पर भेजा । इन्द्र ने शुन शेप की प्रार्थना से प्रसन्न होकर उसे दीर्घायु प्रदान की ।[3] एक बार पृथिवी पर अपने दो वृषभपुत्रों को काम करते देखकर कामधेनु सुरभि रो पड़ी । नीचे से गुजरते हुए देवराज इन्द्र पर उसके अश्रु बिन्दु गिरे । उसे शोकसतप्त देखकर इन्द्र ने उसके शोक का कारण पूछा । सुरभि के शोक का कारण जानकर इन्द्र को निश्चय हो गया कि माता को पुत्र से अधिक प्रिय नहीं कोई होता । अपने शरीर पर गिरी अश्रुबून्दों को देखकर इन्द्र कामधेनु-सुरभि को ससार मे सर्वोत्कृष्ट मानने लगे ।[4] इन्द्र ने शरभंग[5] तथा सुतीक्ष्ण[6] मुनि के आश्रम म उन्हें दर्शन दिए । यह भी कथा है कि इन्द्र ने निद्रा को साथ लेकर राक्षसो को मोहित करने की आज्ञा दी, स्वयं सीता को राम की सहायता का आश्वासन दिया तथा भक्षण के लिए ऐसा हविष्यान्न प्रदान किया जिससे सहस्रो वर्षों तक भूख प्यास नहीं लग सके ।[7] कबन्ध के साथ युद्धकर इन्द्र ने अपने वज्र से उसकी जांघें, मस्तक एव मुह तोड डाले । उसके आहार के लिए प्रार्थना करने पर इन्द्र ने उसकी भुजाए एक एक योजन लम्बी कर दीं तथा उदर म तीक्ष्ण दातो वाला मुख बना दिया, उसे यह भी वर दिया कि राम के द्वारा भुजाए काटने पर स्वर्ग आ सकेगा ।[8] बाली की युद्धकला पर प्रसन्न हो इन्द्र ने उसे स्वर्णमाला प्रदान की थी ।[9] सुग्रीव के उपवन म इन्होने मनोरम फलफूलो वाले वृक्ष लगाए थे ।[10] शची के अपहरण पर इन्होने पुलोम और अनुह्लाद का वध किया ।[11] हेमा अप्सरा के सम्पर्क पर इन्होने मयासुर का वध किया ।[12] जब सूर्य को पकडने के लिए हनुमान दौडे तो इन्द्र ने उनकी हनु पर प्रहार किया तथा उन्हें पीडित न देखकर इच्छा के अधीन मृत्यु होने का वर दिया ।[13] इन्होने हिरण्यकशिपु की कीर्ति का अपहरण किया था ।[14] एक बार कुम्भकर्ण ने सहस्रो प्रजाजनो का भक्षण किया जिस पर क्रुद्ध होकर इन्द्र ने वज्र के प्रहार से उसे आहत कर दिया । इस पर क्रुद्ध होकर कुम्भकर्ण ने इन्द्र के वाहन ऐरावत हाथी के मुख से एक दात उखाड कर इन पर प्रहार किया

---

1 तदेव 1 45 । 2 तदेव 1 59 16 '8 । 3 तदेव 1 61 24 25
4 रा० 2 68 15 26 । 5 तदेव 3 4 17 21 । 6 तदेव 3 6 10
7 तदेव 3 56 क 8 19 (म० वि०) । 8 तदेव 3 67 8 16
9 रा० 4 23 28 या दत्ता देवराजेन तव तुष्टेन सयुगे ।
शतकौम्भीं प्रिया माला ता ते पश्यामि नेह किम ।
10 तदेव 4 32 16 । 11 तदेव 4 38 6 7 । 12 तदेव 4 50 14 15
13 तदेव 4 65 21-28, 7 35 43 65 7 36 1 12
14 तदेव 5 20 28 हिरण्यकशिपु कीर्तिमिन्द्रहस्तगतामिव ।

इससे पीडित होकर इन्द्र ब्रह्मा के पास गए।[1] एक बार इन्द्र ने पौरुष द्वारा विश्व-मुनि की हत्या के पश्चात यज्ञ करके प्रायश्चित किया था।[2]

मेघनाद ने इन्द्र को बन्दी बना दिया जिससे उसका नाम इन्द्रजित पड़ा।[3] इससे इन्द्र का देवोचित तेज नष्ट हो गया,[4] जिसे इन्होंने प्रजापति-ब्रह्मा के परामर्श पर वैष्णव-याग करके पुनः प्राप्त किया।[5] कुम्भकर्ण[6] तथा रावण से भी इन्द्र पराजित होना पड़ा।[7] रावण ने भय से इन्द्र अन्य देवो सहित कांपते थे।[8] एक बार तो मरुत के यज्ञ में रावण को देखकर समस्त देवताओं सहित इन्द्र तिर्यक योनि में प्रवेश कर गए और मयूर बन गए। रावण के चले जाने पर उन्होंने उन उन पक्षियों को वर दिया जिसमें वे अन्य देवो सहित प्रवेश कर गए थे।[9] राम रावण के युद्ध के अवसर पर इन्द्र ने अपना रथ राम को दिया था, जिसके बाद राम ने रावण का वध कर दिया था।[10]

'रामायण' के अनुसार इन्द्र का मानवीय स्वरूप इस प्रकार है। ये आकाश में एक दिव्य रथ पर अद्भुत वैभव से युक्त, गन्धर्व, देवता और सिद्धों से सेवित हैं। इनके आभूषण दीप्तिमान हैं। आभूषणों से इनकी कांति सूर्य और अग्नि के समान लगती है। इनके मस्तक पर श्वेत मेघों के समान उज्ज्वल, चन्द्रमा के समान कांतिमान तथा विचित्र पुष्पमालाओं से सुशोभित छत्र था। उनके रथ में दिव्य अश्व विराजमान थे।[11]

इन्द्र का पूर्ण चरित्र देखने के पश्चात यह ज्ञात होता है कि 'रामायण' के इन्द्र वैदिक इन्द्र के समान बलवान नहीं हैं। राक्षस प्रमुखतया उनके प्रबल शत्रु हैं, जिनसे पीडित होकर इन्द्र बार-बार ब्रह्मा या विष्णु की शरण में जाकर प्रार्थना करते हैं। यहां इन्द्र के नैतिक चरित्र का भी पतन हो चुका है। वे वृत्र को मारकर ब्रह्महत्या के दोष से ग्रस्त हो जाते हैं। अश्वमेध याग करके वे इससे मुक्ति प्राप्त करते हैं। अहल्या का सतीत्वभंग भी उनकी चारित्रिक हीनता को प्रकट करता है।

प्रजापति (ब्रह्मा)—'ऋग्वेद' के अंतिम चरण में एक देव का स्वरूप उभरता हुआ प्रतीत होता है, जो सर्वोच्च देव है। 'दशम-मण्डल' में 'विश्वकर्मा' की

---

1 तदेव 6 49 9 15

2 तदेव ▪ 70 27 हत्वा मुनि वज्री कुर्यादिज्या शचक्रतु।

3 तदेव 6 7 18 24 (नि० सा०), 7 29 13 27

4 तदेव 7 30 15-17। 5 तदेव 7 30 38 41। 6 तदेव 6 49 9

7 रा० 7 29

8 तदेव 3 46 7 विद्रवन्ति परित्रस्ता सुरा शक्रपुरोगमा।

9 तदेव 7 18 20 23। 10 तदेव 6 90 4 11। 11 तदेव 3 5 5 14

स्तुति मे दो सूक्त हैं।[1] परवर्ती वेदो म 'विश्वकर्मा' शब्द 'प्रजापति' का विशेषण है।[2] ब्राह्मण ग्रथो म भी विश्वकर्मा एव 'प्रजापति' को एक ही माना गया है।[3] इन्हे देवताओ का तष्टा भी समझा जाने लगा। हिरण्यगभ' को भी 'प्रजापति' ही माना गया है।[4] 'ऋग्वेद' मे विश्वकर्मा का वणन इस प्रकार है— वे सव द्रष्टा हैं, उनके सब ओर नेत्र भुजाए और चरण हैं। उनके पख भी हैं। वे ऋषि, पुरोहित और हम सब के पिता हैं।[5] ये अज की नाभि म स्थित हैं और इनम सारा ससार स्थित है।[6] इन्ही गुणो का परवर्ती साहित्य म विकास मिलता है।[7] ये वेदो के कर्त्ता, पितामह स्वयम्भुव चतुमुख, गायत्रीपति, देवासुरो के पूवज, हिरण्यगभ एव अज की नाभि म स्थित माने गए हैं। ब्राह्मण-ग्रथो मे इन्हें देवाधिदेव[8] आदिकाल मे विराजमान,[9] असुरो की रचना करने वाला,[10] तथा प्रथम याज्ञिक माना है।[11] इस प्रकार विश्व के आदि-कर्त्ता के कई नाम मिलते हैं। वदो के बाद परवर्ती साहित्य मे इसका अधिक विकास हुआ। सूत्र साहित्य म ब्रह्मा का ताद्रूप्य प्रजापति' के साथ मिलता है।[12] उपनिषदो एव दशन ग्रन्थो मे 'ब्रह्म' को विश्व का उपादान कारण माना गया है। उत्तर-कालीन साहित्य म हिरण्यगभ जसे शब्द भी ब्रह्मा के ही अभिधान बन गए।[13]

---

1 ऋ० 10 81-82

2 वा० स० 12 61 प्रजापति विश्व कर्मा विमुञ्चतु

3 श० ब्रा० 8 2 1 10 प्रजापतिर्वै विश्वकर्मा।
ऐ० ब्रा० 4 22 प्रजापति प्रजा सष्टवा विश्वकर्माभवत।

4 ऋ० 10 121 1 पर सायणभाष्य प्रजापतिर्वै हिरण्यगभ।
त० स० 5 5 1 2 प्रजापतिर्वै हिरण्यगभ।

5 ऋ० 10 81 3 विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतो बाहुरत विश्वतस्पात।
स बाहुभ्या धमति स पतत्रर्द्यावाभूमि जनयन्देव एक ॥

6 तदेव 10182 6 अजस्य नाभावध्येकमर्पित यस्मिन विश्वानि भुवनानितस्थु।

7 शिवनारायण शास्त्री, पूर्वोदधत ग्रन्थ, पष्ठ 334

8 श० ब्रा० 11 1 6 14 ता वा एता प्रजापतेरधि देवता असज्यन्तान्निरिन्द्र सोम परमेष्ठी प्राजापत्य।

9 तदेव 2 2 4 1 प्रजापतिह् वा एतनाग्रे यजेनेजे।

10 त० ब्रा० 2 2 4 4 सोऽसुरानसजत्।

11 श० ब्रा० 2 4 4 1 प्रजापतिह वा एतनाग्रे यजेनेजे।
6 2 3 1 प्रजापतिरिमा प्रथमा स्वयमातण्णा चित्तिमपश्यत।

12 आ० ग० सू० 3 4 प्रजापतिब्रह्मा।

13 मैक्डानल, वदिक दवशास्त्र, पष्ठ 311

'रामायण' भी इसका अपवाद नही । इनमे विश्वकर्मा,[1] लोककर्त्ता,[2] स्वयम्भू,[3] पितामह[4] लोकाधिप,[5] ब्रह्मविदावर[6] तथा चतुर्मुख ब्रह्मा[7] के ये नाम मिलते हैं। ब्रह्मा लोक तथा सभी प्राणियो का कर्त्ता है,[8] स्वय आकाशप्रभव, शाश्वत नित्य और अव्यय है।[9] इन्होने ही वाल्मीकि को रामायण की रचना का आदेश दिया था।[10] देवो को जब किसी भी कारण मे कष्ट पहुचता है तो वे उन्ही की शरण मे जाते हैं तथा उनसे समस्या के समाधान के लिए प्रार्थना करते हैं। ब्रह्मा ने देवा द्वारा अवध्य रावण के मानव के हाथो मारे जाने का आश्वासन देकर देवो की चिन्ता को दूर कर दिया।[11] इसी प्रकार पृथिवी खोदने पर सगर के पुत्रो का कपिल मुनि के रूप मे वासुदेव द्वारा कोपाग्नि से भस्म करने[12] तथा राक्षसों स अभय का आश्वासन दिया।[13] इन्होने अपने मानसपुत्र वसिष्ठ को पुन देह प्राप्ति का उपाय बतलाया।[14]

देव मनुष्य तथा असुरादि सभी ब्रह्मा द्वारा समान दृष्टि से देखे जाते है। ये किसी की भी तपस्या पर प्रसन्न होकर वर दे देते हैं। बहुत से राक्षस भी इनसे वर प्राप्त करके बली बन गए। ब्रह्मा ने भगीरथ की घोर तपस्या पर सगरपुत्रो को स्वर्गप्राप्ति,[15] विश्वामित्र को ब्रह्मर्षि होने का,[16] विराध को शस्त्र से अवध्य होने का,[17] कबन्ध को दीर्घायु होने का,[18] मयासुर को शिल्पास्त्र मे अन्यतम होने का,[19] हनुमान् को शस्त्र से अवध्य होने का[20] तथा विभीषण को चिरजीवी होने

1 रा० 1 74 11, 2 85 25 4 39 37, 4 41 41, 4 50 11, 5 2 19, 5 7 10, 6 15 8, 6 15 12

2 तदेव 1 2 23

3 तदेव 1 16 9, 1 17 13, 1 76 27, 2 1 10, 4 40 2, 4 66 25

4 तदेव 1 17 20, 1 15 6, 1 41 16, 1 41 17, 1 43 15, 1 62 17, 1 56 4, 5 7 11, 6 82 31 32

5 तदेव 1 18 35 (म० वि०)। 6 तदेव 6 105 3। 7 तदेव 1 2 23

8 रा० 6 105 3 कर्त्ता-सर्वलोकस्य ब्रह्मा ब्रह्मविदावर ।
2 22 11 सर्वलोकप्रभुब्रह्मा भूतकर्ता तथव्यय ।

9 तदेव 1 69 17 आकाशप्रभवो ब्रह्मा शाश्वतो नित्य अव्यय ।

10 तदेव 1 2 30-38। 11 तदेव 1 14 12 14। 12 तदेव 1 39 2-4

13 तदेव 6 82 32 33। 14 तदेव 7 56 6 10। 15 तदेव 1 41 15-21

16 तदेव 1 64 10 17। 17 तदेव 3 3 6। 18 तदेव 3 67 8 9

19 तदेव 4 50 12

20 रा० 4 65 25, 7 36 19 20 (नि० सा०)

का वर दिया।[1] उन्होंने देवताओं के अनुरोध पर सरस्वती के द्वारा कुम्भकर्ण की वाणी को प्रभावित करके निद्रा का वर दिया। इन्द्रजित की तपस्या से प्रसन्न होकर पूर्णतया अवध्य होने का वर न देकर हवन करके ही अवध्य होने का वर दिया।[3] इन्द्रजित् मेघनाद से इन्द्र को मुक्त कराके पुन तेजप्राप्ति के लिए उनसे वष्णव यज्ञ करवाया।[4] रावण को उन्होंने अमरत्व देना स्वीकार नही किया[5] तथा यह बता दिया कि उसे मनुष्यो से अभय नहीं होगा।[6]

ब्रह्मा की बड़ी विशेषता यह है कि इनका वचन निष्फल नही होता। कुछ स्थलो पर ब्रह्मा को अपना वचन सत्य रखने के लिए प्रार्थना भी करनी पड़ी। इन्होंने रावण को देवों से अवध्य होने का वर दे रखा था। जब रावण का यमराज के साथ युद्ध होता है तो यम क्रोध मे आकर अपने कभी निष्फल न होने वाले काल दण्ड से रावण को मारना चाहते हैं। ब्रह्मा ने यम को ऐसा करने से रोक दिया, जिससे उनका रावण को दिया वर असत्य न हो तथा कालदण्ड के निष्फल न होने का वचन भी सत्य ही बना रहे।[8]

रामायण मे ब्रह्मा के सबसे पहले जल से उत्पन्न होने तथा सर्वप्रथम जल ही उत्पन्न करने का उल्लेख है[9]। इसके अनन्तर ये सृष्टि करते है। इसके बाद उत्पन्न प्राणियो को जल की रक्षा का उपदेश देते हैं। तदनन्तर जिन्होंने यक्षाम कहा वे यक्ष कहलाए तथा रक्षाम कहने वाले 'राक्षस' कहलाए[10] इन्होंने कैलास पर्वत पर *अपने मानसिक सकल्प से मानसरोवर उत्पन्न किया।*[11]

प्रजापति के रामायणगत चरित्र को देखने पर ज्ञात होता है कि सम्पूर्ण रामायण की कथा इनके वरदानो और वचनो पर ही आधृत है। इनका स्थान सभी देवो से ऊपर है। राक्षसो को वर देने के पश्चात जब ये देखते हैं कि राक्षस गर्व के कारण देवो और मनुष्यो को सता रहे हैं तो उनके वध की ऐसी विधि सोचते है जिससे उनका वचन असत्य न हो।

बृहस्पति—देवो मे बृहस्पति का स्थान भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। वदिक साहित्य

---

1 तदेव 7 10 33 (नि० सा०)

2 तदेव 7 10 41 44 (नि० सा०)। 3 तदेव 6 72 13 15,

4 तदेव 730 30 38। 5 तदेव 1 15 6 7 [illegible] 10 17। 6 तदेव 6 48 6 7

7 तदेव 5 3 49 स्वयम्भूविहित सत्यो न तस्यास्ति व्यतिक्रम।

8 रा० 7 22 30 37

9 तदेव 7 4 9 प्रजापति पुरा सृष्ट्वा अप सलिलसभवा।

10 तदेव 7 4 13 रक्षाम इति यरुक्त राक्षसास्त भवन्तु व।
यक्षाम इति यरुक्त यक्षा एव भवन्तु व।

11 तदव 1 23 8

मे वृहस्पति देवताओ के पुरोहित हैं।[1] इन्हें 'ब्रह्मा' भी कहा गया है।[2] वे मन्त्रो का उच्चारण करते हैं[3] और मानवीय पुरोहित को सूक्त सुनाते हैं[4]। फलत बाद मे उन्हें 'वाचस्पति' भी कहा है।[5] ये वाणी और प्रज्ञा के देव हैं।

रामायण' म वृहस्पति प्रज्ञा और बुद्धि के देव[6] तथा इन्द्र के पुरोहित हैं।[7] एक स्थल पर इन्हें सत्यवादी, मधुरवाग्देव तथा वाचस्पति कहा गया है।[8] ये देवो के गुरु हैं जिनसे विद्या और बुद्धि मे कपीन्द्र हनुमान् स्पर्धा करते थे[9]। यहा 'वृहस्पति' औषधि के ज्ञाता भी लगते हैं क्योकि राक्षसों के साथ युद्ध मे घायल होने वालो की ये चिकित्सा कर रहे थे।[10] उन्होंने तार नामक महाकपि को उत्पन्न किया था।[11]

मित्र—मित्र का वरुण के साथ इतना घनिष्ट सबध है कि 'ऋग्वेद' म सयुक्त रूप मे उनकी स्तुति है। केवल एक सूक्त मे उनकी अकेले स्तुति की गई है।[12] इन्हें वरुण के समान ही बलवान और अदम्य बताया गया है।[13] 'अथर्ववेद' म सर्वोदयकाल के समय की स्थिति को मित्र तथा सूर्यास्त के समय की अवस्था को वरुण बतलाया गया है।[14] एक मन्त्र मे प्रार्थना है कि मित्र प्रात काल के समय

---

1 ऋ० 2 24 92 स सनय स विनय पुराहित ।
 वा० स० 20 11 वहस्पति पुरोहितो देवस्य ॥
 त० स० 6 4 10 1 बहस्पतिर्देवाना पुरोहित आसीत् ।
2 तदेव 2 2 9 1 ब्रह्म वै देवाना बहस्पति ।
3 ऋ० 1 40 5 प्र नून ब्रह्मणस्पतिमन्त्र वन्त्युक्थ्यम् ।
4 तत्रैव 10 98 7 देव श्रुत वृष्टिवनि रराणा बहस्पतिर्वाचमस्मा अयच्छत ।
5 म० स० 2 6 6 वृहस्पतये वाचस्पतय नैवार चरुम ।
6 रा० 2 1 26, 7 37—5 बुद्धयावहस्पतस्तुल्य । (नि० सा०)
 4 30 12 4 53 4, 5 33 9 बहस्पतिसमा बुद्धया ।
 7 17 8 श्रीमान्बुद्धया तुरयो बृहस्पत ।
7 तदेव 2 5 20 शत्रैणेव बहस्पति ।
8 तदव 5 32 28 सत्यवान्मधुरवाग्देवो वाचस्पतिर्यथा ।
9 तदेव 7 36 45 प्रतिस्पर्धतश्च हि गुरु सुराणाम् । (नि० सा०)
10 तत्रैव 6 40 28 तानार्तान्निष्टसनाशच गतामृश्च बहस्पति ।
 विद्याभिम त्रयुक्ताभिरोषधीभिश्चिकित्सति ।
11 तदेव 1 17 11 बहस्पतिस्त्वजनयत्तार नाम महाकपिम् । (म० वि०)
12 ऋ० 3 59
13 तत्रैव 7 36 2 जन च मित्रो यतति ब्रुवाण । इनो वामन्य पदवीरदब्ध ।
14 अथर्व० 13 3 13 स वरुण सायमग्निर्भवति स मित्रो भवति प्रातरुद्यन् ।

शाला को अनावृत करे जिस रात्रि को वरुण ने आवत्त कर रखा था।[1] 'रामायण म भी मित्र वरुण के साथ रहकर समस्त देवेश्वरो द्वारा पूजित होते हैं।[2] जब वसिष्ठ पुन देह प्राप्ति के लिए वायुरूप धारणकर सागर के पास आए उस समय मित्र भी वरुणत्व को प्राप्त होकर वरुणालय म रहत थे।[3] यह वरुण पद उन्होंने राजसूय यज्ञ करके पाया था।[4] जब उवशी वरुण का प्रथम वरण कर लेती है तो ये उसे पथिवी पर पुरुरवा की पत्नी बनने का शाप दे देते हैं।[5]

यम —'ऋग्वेद' म यम को स्पष्ट शब्दो म दवता न मानकर मनको का राजा कहा गया है।[6] ये मतको का आश्रय प्रदान करते हैं।[7] उन्हे सदन भी देते हैं।[8] वाजसनेयिसहिता म आए वणन के अनुसार यमी के साथ ये सर्वोच्च स्वग मे रहते हैं।[9] यम का सदन भी वही है, देवताओ का आवास भी यही पर है। यम सदन वीणा की झकार और गीतो की तान से मुखरित रहता है।[10] यम के पिता विवस्वान हैं।[11] सरण्यू का उनकी माता के रूप मे उल्लेख हुआ है।[12] अनेक बार उनक पतक

---

1 तदेव 9 3 18 वरुणेन समुब्जिता मित्र प्रातव्युब्जतु।

2 रा० 7 56 12 (नि० सा०)

3 तदेव 7 56 13 तमेव काल मित्रोऽपि वरुणत्वमकारयत। (नि० सा०)

4 तदेव 7 74 6 इष्ट्वा तु राजसूयेन मित्र शत्रुनिबर्हण।
सुहुतेन सुयज्ञेन वरुणत्वमुपागमत॥

5 तदेव 7 56 24 30 (नि० सा०)

6 ऋ० 9 113 8 यत्र राजा ववस्वतो यत्रावरोधन दिव।
10 14 यत्राभूयह्वतीरापस्तत्र मामामत कृधी न्द्रायेन्दो परि स्रव।

7 तदेव 10 14 9 यमो ददात्यवसानमस्म।

8 अथव० 18 2 37 ददाम्यस्मा अवसानमतद् य एष आगन्मम चदभूदिह।
यमश्चिकित्वा प्रत्येतदाह ममष राय उप तिष्ठतामिह।
ऋ० 10 18 3 एता स्थूणा पितरो धारयन्तु तेऽत्रा यम सादना ते मिनोतु।

9 वा० स० 12 62 नम सुते निऋत तिग्मतजोऽयस्मय विचता बन्धमेतम।
यमेन त्व यम्या सविदानोत्तम नाके अधिरोहयनम।

10 ऋ० 10 135 7 इद यमस्य सादन देवमान यदुच्यते।
इयमस्य धम्यते नाळीरय गीभि परिष्कत॥

11 तदव 10 14 5 विवस्वत हुवे य पिता तेऽस्मिन्यज्ञे बर्हिष्या निषद्य।

12 तदव 10 17 1 2 यमस्य माता पयुह्यमाना महो जाया विवस्वतो ननाश।
अपागूहन्नमता मर्त्येभ्य कृत्वी सवर्णामददुर्विवस्वते।
उताश्विनावभरद यत्तदासादजहादु द्वा मिथुना सरण्यू।

नमा ववस्वत् से भी बुलाया गया है।[1] 'रामायण' मे भी यम को वैवस्वत कहा गया है।[2] वेदा म यम मत्य हैं, जो मत्यु को प्राप्त करके मतात्माओ के स्वामी बन गए हैं।[3] यम दक्षिण दिशा के स्वामी हैं।[4] पितलोक इनकी राजधानी है।[5] इनके अन्तक[6], प्रेतश्वर[7], धमराज[8] आदि विशेषण मिलते हैं। ये धर्मासन पर बैठकर अधम का नाश करते हैं।[9] इनके हाथ मे काल दण्ड है, जिसके प्रयोग से वे प्राणी को मत्यु की गोद म सुला देते है।[10] इनके हाथ म पाश भी है।[11] यमलाक मे मनुष्य मत्यु के बाद ही स्थान पाता है।[12] जब क्रोध इनके मुख से अग्नि बनकर प्रकट होता है ता वह ज्वाला मालाओ से मण्डित, श्वासवायु से युक्त तथा धूम से आछन्न दिखाई देता है।[13]

'रामायण' मे ये कुम्भकण से पराजित हुए।[14] रावण के भय से ये मरुत के यज्ञ म काक रूप मे उपस्थित हुए[15] और इन्होने बाद मे कौओ को आरोग्यता और मत्यु मे अभय दिया।[16] रावण के साथ युद्ध करत समय इन्होने कालदण्ड एव अन्य आयुध ग्रहण किए।[17] जब इन्होन रावण के वध के लिए कालदण्ड का प्रयोग करना चाहा ता ब्रह्मा ने अपने वचन को सत्य रखने के लिए इन्हे इसका प्रयोग नही करने दिया।[18] इसके बाद ये युद्ध स विरत हो गए।[19]

यम के साथ मृत्यु तथा काल का भी उल्लेख हुआ है।[20] वेद म मृत्यु को यम

---

1 तदेव 10 14 1 ववस्वत सगमन जनाना यम राजान हविषा दुवस्य।
2 रा० 7 22 15 मत्र ववस्वतो राजा 7 22 1
3 अथव० 18 3 13 यो ममार प्रथमो मर्त्याना य प्रेयाय प्रथमो लाकमेतत। ववस्वत सगमन जनाना यम राजान हविषा सपयत।
4 रा० 4 51 7 दक्षिणा यमरक्षिताम।
5 तदव 4 40 42 राजधानी यमस्यैषा कष्टेन तमसावता।
6 तदेव 3 30 6। 7 तत्रैव 7 22 18 (नि० सा०)
8 तदेव 7 22 31 (नि० सा०)। 9 तदव 7 21 2 4
10 तदेव 7 22 32 कालदण्डममोघम्। (नि० सा०)
11 तत्रैव 3 27 11 पाशहस्तमिवान्तकम। 12 तदव 2 17 29
13 तदेव 6 49 9। 14 तदेव 6 49 9। 15 तदव 7 18 4 5
16 तत्रैव 7 18 25 28
17 तदव 7 22 1-15
18 रा० 7 22 30-37। 19 तत्रैव 7 22 46 48 (नि० सा०)
20 तत्रैव 7 22 20 प्रदीपितौ मुगरघौ मृत्युकालौ बभूवतु।

का दूत कहा गया है।[1] 'अथववेद' के अनुसार मत्यु मनुष्यों के स्वामी हैं[2] और यम पितरो के।[3] 'रामायण' म मत्यु यम के साथ रावण के विरुद्ध युद्ध के लिए प्रास एव मुदगर ग्रहण करके जाते हैं।[4] जब रावण ने इन्हें तथा यम को आहत कर दिया तो ये क्रुद्ध होकर यम से रावणवध की आज्ञा मागते हैं।[5] ये बलवान देव हैं।[6]

'अथववेद' म काल का सवप्रवर्तिनी शक्ति के रूप में मानवीकरण मिलता है।[7] इन्हें 'रामायण' मे 'सवसहारकारी' कहा गया है।[8] यहा काल तपश्चर्या से सूय के समान तेजस्वी अपन तेज से जलते हुए ब्रह्मा के दूत के रूप म आते हैं[9], जो राम को जीवनावधि की समाप्ति की सूचना देते हैं।[10] काल यहा स्वय कहते हैं कि मैं पूवकाल म माया स उत्पन्न हुआ हू मैं सबका सहार करने वाला हू।[11] यहा काल को समय के रूप मे माना जा सकता है। य देव के रूप मे समय का नियन्ता है।

वरुण—वरुण 'ऋग्वेद' म भी इन्द्र को छोडकर अन्य देवताओ से महान हैं, यद्यपि इनके प्रति कहे गए सूक्तो की व्याख्या कम है। वरुण का व्यक्तित्व मानवीय रूप म शारीरिक पक्ष की अपेक्षा नतिक पक्ष म अधिक विकसित हुआ है। अधिक बल उनके कार्यों के वणन म दिया गया है।[12] 'रामायण' म वरुण जलपवर[13], पाशहस्त[14], तथा पश्चिम दिशा क स्वामी हैं[15] और इनका वास समुद्र म है।[16] यहा ये ऋग्वैदिक वरुण के समान इन्द्र के साथ युद्ध म जाने वाले देवता नही हैं।[17] 'ऋग्वेद' म भी वरुण को जलो का स्वामी कहा गया है। सरिताए वरुण के ऋत

---

1 ऋ० 5 30 11 नमो यमाय नमो अस्तु मत्यवे नम पितृभ्य उत ये नयन्ति।
अथव० 18 2 27 मत्युयमस्यासीद् दूत प्रचेता।

2 तदेव० 5 24 13 मत्यु प्रजानामधिपति स मावतु।

3 तदेव 5 24 14 यम पितृणामधिपति स मावतु।

4 रा० 7 22 3 प्रासमुद्गरहस्तश्च मत्यु तस्याग्रत स्थित।

5 तदेव 7 22 20 30। 6 तदेव 2 1 33 यमशक्रसमो वीर्ये।

7 अथर्व० 19 53 1, 19 54। 8 रा० 7 94 16

9 तदेव 7 93 7 इतस्त्वा द्रष्टुमायातस्तपसा भास्करप्रभ।
ज्वलन्तमिव तजोभि प्रदहन्तमिवाशुभि।

10 तदेव 7 94 1 15

11 तदेव 7 94 2 मायासभावितो वीर काल सवसमाहर।

12 मैंकडानल, वैदिक देवशास्त्र पृ० 43

13 रा० 6 105 2 वरुणश्च जलेश्वर, 7 23 16 सलिलेन्द्र, 7 23 42

14 तदेव 3 12 19 पाशहस्तस्य वरुणस्य महात्मन। (म० वि०)

15 तदेव 4 44 6 पश्चिमाच दिश घोरा [illegible]श वरुणपालिताम।

16 तदेव 7 23 16। 17 ऋ० 7 83

का पालन करती हुई सतत प्रवाहित होती हैं।[1] वरुण की माया के बल से सरिताए तीव्र वेग से समुद्र मे गिरती हैं तथा उसे भर नही पाती।[2] वरुण तथा मित्र सरिताओ के पति है।[3] वरुण की वषभूपा जल है।[4] इनका सबध अतरिक्षस्थ जल से भी है, परतु रामायण म केवल समुद्र से वरुण का सबध माना गया है। सागर को कुछ स्थला पर वरुणालय कहा गया है।[5] इस प्रकार इनका आवास जल म माना गया है। सम्भवत वर्षा से इनका सम्बन्ध होने के कारण इनका इन्द्र के साथ साहचय बन गया हो,[6] जिसका 'रामायण' म भी सकेत है।[7] 'अथववेद' म ये जल के सर्वोच्च पति हैं। इनका स्वर्णिम आवास जल म है।[8] 'यजुर्वेद' मे इन्हे जल का शिशु बताया गया है[9] और कही जल को वरुण की पत्नी।[10] 'रामायण' के अनुसार इनकी पुत्री वारुणी है क्योकि[11] वारुणी वरुणालय अर्थात् सागर से मन्थन के समय उत्पन्न हुई।[12] यहा इनके निवास-स्थान का भी उल्लेख है। सागर के नीचे रसातल में एक प्रासाद है[13] जो श्वेत मेघसदश कान्ति से युक्त कलास पवत के समान है।[14]

---

1 तदेव 2 28 4 प्र सीमादित्यो असजद्विधर्ता ऋत सिन्धवो वरुणस्य यन्ति।
न श्राम्यन्ति न वि मुञ्चन्त्येत।

2 तदेव 5 85 6 इमामू नु कवितमस्य माया मही देवस्य नकिरा दधर्ष।
एक यदुदना न पृणन्त्येनीरासिञ्चन्तीरवनय समुद्रम।

3 तदेव 7 64 2 आ राजाना मह ऋतस्य गोपा सिन्धुपती क्षत्रिया यातमर्वाक्।

4 तदेव 9 90 2 वना वसानो वरुणो न सिन्धून्।
8 69 11 वरुण इदिह क्षयसमापो अभ्यनूपत वत्स सशिश्वरीरिव।
8 69 12 सुदेवो असि वरुण यस्य त सप्त सिन्धव।
अनुक्षरन्ति काकुद सूर्म्य सुषिरामिव॥

5 रा० 5 34 33, 7। 6 ऋ० 6 63, अथव० 4 15 12

7 रा० 2 1 4, 3 35 3, 4 51 1, 5 38 6 महेन्द्रवरुणोपम।
महेन्द्रवरुणोपमौ।

8 अथव० 5 24 4 वरुणोऽपामधिपति —(स मावतु)।
7 83 1 अप्सु ते राजन् वरुण गहो हिरण्ययो मित।

9 वा० स० 1017 प्रस्त्यासु चक्रे वरुण सधस्थमपा शिशुर्मातृतमास्वन्त।

10 त० स० 5 5 4 1 आपो वरुणस्य पत्न्य।

11 रा० 1 44 22 वरुणात्मजाम।

12 तदेव 1 44 21 वरुणस्य तत कन्या वारुणी।

13 तदेव 7 23 16 सलिले प्रपुरा वेपी भ्रमति स्म रसातलम्।

14 तदेव 7 23 19 तत पाण्डुरमेघाभ कलासमिव भास्वरम्।
वरुणस्याल दिव्यम्। (नि० सा०)

जहा सुरभि अर्थात कामधेनु दुग्ध बहाकर क्षीरसागर उत्पन्न करती है।[1] यह सुरभि गावपाधिपति की माता है।[2] इस क्षीरसागर से शीतकिरणो से युक्त चन्द्रमा निकलता है।[3] इसी सागर का आश्रय लेकर फेनपान करने वाले महर्षि जीते हैं। देवो का अमृत तथा पितरो का सुधाभोजी अन्न भी यहा उत्पन्न होता है।[4] इनका गृह शरत्कालीन अभ्र के समान तथा सहस्रो जलधाराओ से व्याप्त है। यहा पर प्रभास नामक मन्त्री[5] अनुरक्त गो एव पुष्कर तथा अपने पुत्र-पौत्रो सहित रहते हैं।[6] इस स्थल पर वरुण तथा उनके पुत्र-पौत्रो के साथ रावण का युद्ध हुआ जिसमें वे पराजित हुए[7] और गन्धर्वगान सुनने ब्रह्मलोक चले गए।[8] एक स्थल पर इनका आवास मेरु पवत के शिखर पर वर्णित किया गया है। यह विश्व कर्मा द्वारा निर्मित है। इसके चारो ओर महान पक्षी तथा वृक्ष हैं। इसकी कान्ति सूर्यसदृश है।[9] रावण के भय से मरुत् के यज्ञ में उपस्थित रहने के लिए एक बार इन्हें हस का रूप धारण करना पडा[10] इसके बाद इन्होने हसो को श्वेतवर्ण होने तथा जल में रहने का वर दिया।[11] इन्द्र अग्नि तथा इन्द्र के समान विजय प्रदाता[12] वहा

1 तदेव 7 23 21 क्षरन्ती च पयस्तत्र सुरभि गामवस्थिताम्।
यस्या पयोभिनिष्यन्दात्क्षीरोदो नाम सागर। (नि० सा०)

2 तदेव 7 23 22 गोवर्षे द्रवरारणिम्। (नि० सा०)

3 रा० 7 23 23 24 यस्माच्चन्द्र प्रभवति शीतरश्मिर्निशाकर।
य समाश्रित्य जीवन्ति फेनपा परमर्षय ॥
अमृत यत्र चोत्पन्न स्वधा च स्वधभोजिनाम। (नि० सा०)

4 तन्त्रैव 7 23 26 तोयधाराशतावीर्ण शारदाभ्रनिभ सदा।
नित्यप्रहृष्ट ददशे वरुणस्य गृहोत्तमम ॥ (नि० सा०)

5 तत्रैव 7 23 41 मन्त्री प्रहासो नाम वारुण।

6 तदव 7 23 29 एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धा वरुणस्य महात्मन।
पुत्रा पौत्राश्च निष्क्रान्ता गोश्च पुष्कर एव च। (नि० सा०)

7 तदेव 7 23

8 तदेव 7 23 41 गत खलु महाराजो ब्रह्मलोक जलेश्वर, गान्धव वरुण श्रोतुम।

9 तत्रैव 4 41 38 39 शृगे तस्य महद्दिव्य भवन सूर्यसन्निभम।
प्रासादगणसबाध विहित विश्वकर्मणा ॥
शोभित तरुभिश्चित्रैर्नानापक्षिसमाकुल।
निकेत पाशहस्तस्य वरुणस्य महात्मन ॥

10 तदव 7 8 5। 11 तदेव 7 18 29 31

12 तदेव 2 15 22 वरुणश्चाग्निरिन्द्रश्च विजय प्रदिशन्तु त। (म० वि०)

गया है। इनके पुत्र सुषेण नामक वानर हैं।[1] जहा उर्वशी को देखकर मित्र तथा वरुण उसकी कामना करते हैं वहा अपने तेज को कुम्भ में रख देते हैं जिससे अगस्त्य तथा वसिष्ठ की उत्पत्ति कही गई है।[2] इन्होंने जनक के पूर्वज देवरात को एक बडा धनुष तथा अक्षय तरकस दिए थे।[3]

नैतिक शासक होने के कारण वरुण अन्य देवताओं से विशिष्ट हैं। ये पापकर्म करने वालों को पाशो से बाधते हैं।[4] ये पाश सात और तीन कडियो के हैं जिससे ये केवल असत्यवादियो को ही बाधते हैं, सत्यवादी को छूते तक नही।[5] जहा तक वरुण के स्थान का सबध है 'ऋग्वेद' मे उनके तीन स्थान मिलते हैं—द्यु, अतरिक्ष तथा सागर। इसके बाद इनका सबध जल से बढता चला गया। 'अथर्ववेद' में ये जल के स्वामी के रूप में वर्णित हैं। 'रामायण' में ये जल तथा पश्चिम दिशा के स्वामी है।

वायु—वायु एक भौतिक तत्त्व है जो सदा बहता रहता है। बहने के कारण ही इसे वायु कहते हैं।[6] 'ऋग्वेद' मे वायु का वर्णन भिन्न प्रकार से मिलता है। उनका रथ सामने आई हर वस्तु को धूल में मिलाते हुए, प्रचण्ड रव करते हुए अपने तुमुल घोष से कान के पर्दों को फाड देता है। वह धरती पर धूल उडाते हुए आसमान से बातें करता है।[7] एक दिन का भी आराम वायु ने अपने जीवन में नही देखा। वे जलो के सखा हैं। इनका जन्म स्थान अज्ञात है। ये यथेच्छ विचरण करते हैं। इनका घोष तो सुनाई देता है, परन्तु रूप देखने मे नही आता।[8] वे देवताओ के प्राण है।[9]

---

1 रा० 1 17 5 वरुणो जनयामास सुषेण नाम वानरम्। (म० वि०)

2 रा० 7 56। 3 तत्रैव 2 110 39

4 ऋ० 1 24 15 उदुत्तम वरुण पाशमस्मदवाधम वि मध्यम श्रथाय।

1 25 21 उदुत्तम मुमुग्धि नो वि पाश मध्यम चृत। अवाधमानि जीवसे।

6 74 4 म नो मुञ्चत वरुणस्य पाशात।

17 85 24 प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशात्।

5 अथर्व० 4 16 6 य ते पाशा सप्तसप्त त्रेधा तिष्ठन्ति विषिता रुशन्त।

सिनन्तु सर्वे अनृत वदन्त य सत्यवाद्यति त सृजन्तु॥

6 नि० 10 1 वायुर्वाति। वेतेर्वा स्याद्गतिकर्मण।

7 ऋ० 10 168 1 वातस्य नु महिमान रथस्य रुजन्नेति स्तनयन्नस्य घोष।

दिवि स्पृश्यात्यरुणानि कृण्वन्नुतो एति पृथिव्या रेणुमस्यन्।

8 तदेव 1 164 44 विश्वमेको अभिचष्टे शचीभिर्ध्राजिरेकस्य ददृशे न रूपम्।

9 तदेव 7 82 2 आत्मा ते वातो रज आ नवीनोत।

विश्वा ते धाम वरुण प्रियाणि।

जहा सुरभि अर्थात् कामधेनु दुग्ध बहाकर क्षीरसागर उत्पन्न करती है।[1] यह सुरभि गोरपाधिपति की माता है।[2] इस क्षीरसागर से शीतकिरणों से युक्त चन्द्रमा निकलता है।[3] इसी सागर का आश्रय लेकर फेनपान करने वाले महर्षि जीते हैं। देवों का अमृत तथा पितरों का सुधामय अन्न भी यहीं उत्पन्न होता है।[4] इनका गृह शरत्कालीन अभ्र के समान तथा सहस्रों जलधाराओं से व्याप्त है। यहां पर प्रभास नामक मन्त्री अगरक्षक गौ तथा पुष्कर तथा अपने पुत्र-पौत्रों सहित रहते हैं।[6] इस स्थल पर वरुण तथा उनके पुत्र-पौत्रों के साथ रावण का युद्ध हुआ जिसमें वे पराजित हुए और गन्धर्वगान सुनने ब्रह्मलोक चले गए।[8] एक स्थल पर इनका आवास मेरु पर्वत के शिखर पर वर्णित किया गया है। यह विश्वकर्मा द्वारा निर्मित है। इसके चारों ओर महल, पक्षी तथा वृक्ष हैं। इसकी कान्ति सूर्यसदृश है।[9] रावण के भय से मरुत् के यज्ञ में उपस्थित रहने के लिए एक बार इन्हें हंस का रूप धारण करना पड़ा[10] इसके बाद इन्होंने हंसों को श्वेतवर्ण होने तथा जल में रहने का वर दिया।[11] इन्द्र अग्नि तथा इन्द्र के समान विजय प्रदाता[12] कहा

1 तत्रैव 7 23 21 क्षरन्ती च पयस्तत्र सुरभिं गामवस्थिताम्।
यस्या पयोभिनिष्यन्दात्क्षीरोदो नाम सागर। (नि० सा०)

2 तत्रैव 7 23 22 गोवर्धनवराणिम्। (नि० सा०)

3 रा० 7 23 23 24 यस्माच्चन्द्र प्रभवति शीतरश्मिनिशाकर।
य समाश्रित्य जीवन्ति फेनपा परमर्षय॥
अमृत यत्र चोत्पन्न स्वधा च स्वधभोजिनाम्। (नि० सा०)

4 तत्रैव 7 23 26 तोयधाराशताकीर्ण शारदाभ्रनिभ तदा।
नित्यप्रहृष्ट ददृशे वरुणस्य गृहोत्तमम्॥ (नि० सा०)

5 तत्रैव 7 23 41 मन्त्री प्रहासो नाम वारुण।

6 तदेव 7 23 29 एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धा वरुणस्य महात्मन।
पुत्रा पौत्राश्च निष्क्रामन्गौश्च पुष्कर एव च। (नि० सा०)

7 तदेव 7 23

8 तदेव 7 23 41 गत खलु महाराजो ब्रह्मलोक जलेश्वर, गान्धर्व वरुण श्रोतुम्।

9 तत्रैव 4 41 38 39 शृगे तस्य महद्दिव्य भवन सूर्यसन्निभम्।
प्रासादगणसबाध विहित विश्वकर्मणा॥
शोभित तरुभिश्चित्रैर्नानापक्षिसमाकुल।
निकेत पाशहस्तस्य वरुणस्य महात्मन॥

10 तत्र 7 8 5। 11 तत्रैव 7 18 29 31

12 तदेव 2 15 22 वरुणश्चाग्निरिन्द्रश्च विजय प्रदिशन्तु ते। (म० वि०)

सम्पूण भूता का निरोध कर दिया। इससे जगत का श्वासोच्छवास ब द हो गया, सधिया विच्छ खल हो गइ। वेदाध्ययन, श्रौतकम, धम एव ससार सम्ब धी कम ब द हो जाने से त्रलोक्य को कष्ट हुआ। सपूण प्रजा को उदर रोग हो गए।[1] तात्पय यह है कि सपूण जगत वायु पर अवलबित है। यह प्राण और सुख है। इसके न होने पर जगत को सुख प्राप्त नही हो सकता। जीवन रूप वायु ने जब जगत का परित्याग किया तो जगत का श्वासोच्छवास ब द हो गया और ससार काष्ठ एव भित्ति के समान स्तब्ध हो गया।[2] जब ब्रह्मा सहित देव, ग धव, ऋषि यक्षादियो ने अपने-अपने वर हनुमान को दिए तब वायु प्रसन्न होकर सचार करने लगा।[3] इतना सभी कुछ होने पर भी वायु रावण के भय से तीव्र गति स नही बह सकता था।[4] एक बार इ होंने मनाक पवत को इ द्र के वज्र प्रहार स बचाने के लिए समुद्र में गिरा दिया था।[5]

विष्णु—यद्यपि 'ऋग्वेद' में विष्णु का स्थान गौण है तथापि विष्णु महत्त्व शाली देवता हैं। ब्राह्मणग्र थो में इनका महत्त्व बढा। 'रामायण' में तो इनका स्थान इन्द्र से भी अधिक महत्त्वपूण है। इ द्र को राक्षसा के भय से विष्णु के पास जाना पड़ता है। रावण के वध के लिए विष्णु राम के रूप में स्वय अवतार ग्रहण करत हैं।

विष्णु की विग्रहतत्त्वसम्ब धी विशेषताए इनके क्रमण बृहच्छरीर एव युवा कुमार आदि विशेषणो से व्यापित हैं।[6] वेदो में वर्णित[7] उनके द्वारा तीन पदो से सम्पूण लोको को क्रमण करन का उल्लेख 'रामायण' मे भी मिलता है।[8] बलि के यज्ञ म दवताओ ने विष्णु को वामन रूप धारण करने की प्राथना की।[9] ये अदिति के गभ स प्रकट हुए और वामन रूप धारण करके बलि के पास गए।[10] उ होंने बलि से तीन पग भूमि की याचना की और अपने तीन पगो म ही तीनो लोको को

1 तदेव 7 35 50 56

2 तदेव 7 35 58 63। 3 तदेव 7 36

4 तदेव 1 14 10 पाश्वें वाति न मारत। 5 तदेव 5 1 111 112

6 ऋ० 1 155 2 बृहच्छरीरो विमिमान ऋक्वभिर्युवाकुमार प्रत्येत्याहवम्।

7 तदेव 1 154 1 विचक्रमाणस्त्रेधोरुगाय।

1 154 3 एको विममे त्रिभि पदेभि।

वा० स० 34 43 त्रिणिपन्नाविचक्रमे।

8 रा० 2 25 35 त्रिविक्रमा प्रक्रमतो विष्णुरतुलतेजस।

4 32 28, 4 65 35 विष्णुस्त्रीविक्रमानिव।

5 51 28 विष्णुस्त्रिभिरिव क्रम।

9 तदेव 1 28 4 7। 10 तदेव 1 28 7 वामनत्व गतो विष्णु।

'रामायण' में मारुत[1] तथा वायु[2] शब्दा का प्रयोग मिलता है। यहा मारुत की उत्पत्ति दिति के गभ स कही गई है। दत्यो के सहार से खिन्न होकर दिति ने ऐसे पुत्र की कामना से तप किया जो इन्द्र का वध कर सके। इन्द्र ने दिति के गभ म प्रवेश करके गभ के सात टुकडे कर दिए[3], जिनमें प्रथम ब्रह्मलोक में, द्वितीय इन्द्रलोक में ततीय अतरिक्ष लोक में तथा शेष चार समयानुसार सम्पूण दिशाओ म सचार करते है।[4] इन्द्र ने गभस्थ शिशु से 'मारुद मारुद' कहा था।[5] अत उसका नाम मारुत पडा। इनमें ततीय दिव्यवायु के रूप में प्रसिद्ध है।[6] यह वायु वेग के लिए प्रसिद्ध है।[7] यह आकाशचारी वायु दिव्यगध स जनसमुदाय को प्रसन्न करता है।[8] यह स्वय शरीररहित है परन्तु सशरीर प्राणियो में सचरण करता है, इसके बिना शरीर काष्ठ तुल्य हो जाता है।[9]

'रामायण' में इनका मानवीय शरीर भी मिलता है। कुशनाभ की सौ सुन्दरी कन्याओ स वायु पत्नी बनने की प्राथना करते हैं। उनके द्वारा अवहेलना करने पर उनके शरीर में प्रवेश कर वायु ने उन्हें कुब्जत्व दोष को प्राप्त कराया।[10] इन्होने ब्रह्मा की इच्छानुसार राम की सहायता के लिए हनुमान को जन्म दिया।[11] आकाश में सूय तथा राहु का पीछा करने पर जब हनुमान पर इन्द्र ने वज्राघात किया तो वायु ने क्रुद्ध होकर पुत्रसहित गुफा में जाकर अपना सचार बन्द कर दिया।[1] उन्होने

1 रा० 1 14 10 1 45 19, 1 46 4, 4 66 24
2 तदेव 1 21 4 1 31 13, 5 35 42 7 36 9
3 तदेव 1 45
4 रा० 1 46 4 6
5 तदेव 1 45 19 मा रुदो मा रुदश्चेति शक्रोऽभ्यभाषत।
6 तदेव 1 46 5 दिव्यवायुरिति ख्यातस्ततीयोऽपि महायशा।
7 तदेव 4 66 24 मारुतसमो वेगे।
5 35 42 वायोरिव गतिश्चापि।
5 35 45 वायुवेगसवेगस्य।
7 37 6 वेगस्ते वायुना तुल्यो । (नि० सा०)
8 तदेव 7 88 11 ततो वायु शुभ पुण्यो दिव्यगन्धो मनोरम।
॥ जनौघ सुरश्रेष्ठो ह्लादयामास सवत ॥
9 तदेव 7 35 60 अशरीर शरीरिषु वायुश्चरति पालयन्।
शरीर हि बिना वायु समता याति दारुभि ॥
10 1 31 12-26
11 रा० 1 17 16 मारुतस्यौरस श्रीहनुमान्नाम वानर। (म० वि०)
12 तदेव 7 35 45 48

सम्पूण भूता का निरोध कर दिया । इससे जगत का श्वासोच्छवास ब द हो गया, सधियां विच्छ खल हो गइ । वेदाध्ययन, श्रौतकम धम एव ससार सम्ब धी कम ब द हो जाने से त्रलोक्य को कष्ट हुआ । सपूण प्रजा को उदर रोग हो गए ।[1] तात्पय यह है कि सपूण जगत वायु पर अवलबित है। यह प्राण और सुख है। इसके न होने पर जगत को सुख प्राप्त नही हो सकता । जीवन रूप वायु ने जब जगत का परित्याग किया तो जगत का श्वासोच्छवास ब द हो गया और ससार काष्ठ एव भित्ति के समान स्तब्ध हो गया ।[2] जब ब्रह्मा सहित देव, ग धव, ऋषि यक्षादियो ने अपने अपने वर हनुमान को दिए तब वायु प्रसन्न होकर सचार करने लगा ।[3] इतना सभी कुछ होने पर भी वायु रावण के भय से तीव्र गति से नहीं बह सकता था ।[4] एक बार इ होंने मनाक पवत को इ द्र के वज्र प्रहार से बचाने के लिए समुद्र में गिरा दिया था ।[5]

विष्णु—यद्यपि 'ऋग्वेद' में विष्णु का स्थान गौण है तथापि विष्णु महत्त्व-शाली देवता हैं । ब्राह्मणग्र था में इनका महत्त्व बढा । 'रामायण में तो इनका स्थान इ द्र स भी अधिक महत्त्वपूण है । इ द्र को राक्षसा के भय से विष्णु के पास जाना पडता है । रावण के बध के लिए विष्णु राम के रूप में स्वय अवतार ग्रहण करते हैं ।

विष्णु की विग्रहतत्त्वसम्ब धी विशेषताए इनके क्रमण बहच्छरीर एव युवा कुमार आदि विशेषणा मे व्यापित हैं ।[6] वेन्द में वर्णित[7] उनके द्वारा तीन पदो से सम्पूण लोको को क्रमण करने का उल्लेख 'रामायण मे भी मिलता है ।[8] बलि के यज्ञ म दवताआ ने विष्णु को वामन रूप धारण करने की प्राथना की ।[9] ये अदिति के गभ से प्रकट हुए और वामन रूप धारण करके बलि के पास गए ।[10] उ होंने बलि से तीन पग भूमि की याचना की और अपने तीन पगो म ही तीनो लोको को

1 तदेव 7 35 50 56

2 तदेव 7 35 58 63 । 3 तदेव 7 36

4 तदेव 1 14 10 पार्श्वे वाति न मारुत । 5 तदेव 5 1 111-112

6 ऋ० 1 155 2 बहच्छरीरो विमिमान ऋक्वभियुवाकुमार प्रत्येत्याहवम ।

7 तदेव 1 154 1 विचक्रमाणस्त्रेधोरुगाय ।

1 154 3 एको विममे त्रिभि पदेभि ।

वा० स० 34 43 त्रिणिपदाविचक्रमे।

8 रा० 2 25 35 त्रिविक्रमा प्रक्रमतो विष्णुरतुलतेजस ।

4 32 28 4 65 35 विष्णुस्त्रीन्विक्रमानिव ।

5 51 28 विष्णुस्त्रिभिरिव क्रम ।

9 तदेव 1 28 4 7 । 10 तदेव 1 28 7 वामनत्वं गतो विष्णु ।

आक्रात कर लिया। बाद म उन्होने त्रिलोकी इन्द्र को लौटा दी।[1] विष्णु के वामन रूप धारण करने के बीज ऋग्वेद' म हैं। इतिहास एव पुराण म इसे बहुत विस्तार दिया गया। ब्राह्मणग्रथो म विष्णु के वामनत्व का उल्लेख है।[2] इन तीन पदो म से दो पद तो मनुष्यो को दीखते हैं किंतु तीसरा पद सर्वोच्च है जो पक्षियो की उडान और मर्त्यचक्षु के उस पार है।[3] वे अपना ततीय नाम प्रकाशमय द्युलोक म धारण करते हैं।[4] विष्णु अग्नि के उच्चतम ततीय पद की रक्षा करत है।[5] उनक प्रिय आवास म मधु का उत्स है।[6] य मधु से परिपूर्ण है।[7] देवता यही आनन्द लेत हैं।[8] यह उत्तम पद भूरि भूरि नीचे की ओर चमकता है। यहा भूरिश्रृगा गाए (सूयरश्मिया) विचरण करती हैं।[9] इन तीन पदो मे ही सारे भुवन निवास करते हैं।[10] 'यास्क' के पूववर्ती 'और्णवाभ विष्णु के तीन पदो को उदय मध्याह्न तथा अस्त मानते हैं।[11] 'मक्डानल' तीन पदो स सौर देवता के द्यु, अन्तरिक्ष एव पथिवी तीनो लोको म होकर जाने का माग मानते हैं।[12] यह मत पूव प्रस्तुत उदाहरणो तथा ब्राह्मणो से समर्पित भी है।[13] विष्णु मे दो विशेषताए प्रकट होती हैं—एक तो गति दूसरी व्यापकता। विष्णु शब्द का गतिमान स्वरूप इसकी निष्पत्ति

---

1 तदेव 1 28 8 12

2 श० ब्रा० 1 2 5 5 वामनो ह विष्णुरास।
 त० ब्रा० 1 6 1 5 यद्वामन भेन वष्णव समप्य।

3 ऋ० 1 155 5 द्वे इदस्य क्रमणे स्वद शोऽभिख्याय मर्त्यो भुरण्यति।
 ततीयमस्य नकिरा दधषति वयश्चन पतय त पतत्रिण।
 7 99 2 न ते विष्णो जायमानो न जातो देव महिम्न परमन्तमाप।

4 तदेव 1 153 3 दधाति पुत्रोऽवर पर पितुर्नाम ततीयमधि रोचने दिव।

5 तदेव 10 1 3 विष्णुरित्था परममस्य विद्वाञ्जातो बहन्नभि पाति ततीयम।

6 तदेव 1 154 5 विष्णो पदे परम मध्व उत्स।

7 तदेव 1 154 4 यस्यत्री पूर्णा मधुना पदानि।

8 तदेव 1 154 5 यत्र देवयवो मदन्ति।
 8 29 7 यत्र देवासो मदन्ति।

9 तदेव 1 154 6 ता वा वास्तून्युश्मसि गमध्य यत्र गावो भूरिश्रृगा अयास।
 अत्राह तदुरुगायस्य वष्ण परम पदमव भाति भूरि॥

10 तदेव 1 154 2 यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा।

11 नि० 12 19 समारोहणे विष्णुपदे गयशिरसीत्यौर्णवाभ।

12 मक्डानल, पूर्वोन्धत ग्रथ, पृ० 8३

13 श० ब्रा० 1 9 3 9 प्रथमेन पदेन पस्पाराऽथेमन्तरिक्ष द्वितीयेन दिवमुत्तमेन
 ताम्वेवप एतस्म विष्णुयज्ञो विक्राति विक्रमते।

√विष धातु से स्पष्ट होता है। इनकी सवव्यापकता के कारण इसे √विष्ल धातु से निष्पन माना जाता है। परात्पर सत्ता सवव्यापक होने के कारण विष्णु कही जाती है।[1] सूयमण्डल जब लोक-लोका तर को रश्मियो से व्याप्त कर लेता है तब विष्णु कहलाता है। इसीलिए उनके शरीर मे तीना लोका के व्याप्त करने की बात कही जाती है।[2]

इनकी एक विशेषता है कि इद्र का साहचय। इद्र तथा विष्णु के काय एक जस हैं—अ तरिक्ष का विस्तार, लोको का प्रथन[3] एव सूय, उषा तथा अग्नि का उत्पादन।[4] वृत्रवध मे विष्णु ने इद्र का साथ दिया था।[5] विष्णु इद्र के सहज मित्र हैं।[6] 'शतपथब्राह्मण' के अनुसार जब इद्र वज्र पर प्रहार करते है तो विष्णु उनका अनुगमन करते हैं।[7] 'रामायण' के अनुसार जब इद्रसहित समस्त देव वृत्रासुर के भय से विष्णु की शरण म आए तो उ होने वृत्र के साथ अपने स्नेह ब धन के कारण स्वय वध करने मे असमथता व्यक्त की तथा अपने तज के एक अश को इद्र म, एक अश को वज्र मे और एक अश को पथिवी मे प्रविष्ट कराकर इद्र को ही वध की आज्ञा दी। वत्रवध के पश्चात जब इद्र ब्रह्महत्या के दोष से ग्रस्त हुए तो उ हाने वरुणयाग का परामश दिया।[8] विष्णु बल[9] तथा विक्रम[10] के लिए विख्यात है। इसके अतिरिक्त 'रामायण म इ हे नारायण,[11] जगत्पति,[12] पुरुषोत्तम,[13] हरि, केशव,[14] जनादन,[15] हृषिकेश[16] अमरेश्वर,[17] मधु-

---

1 डा० मु शीराम शर्मा 'वदिक विष्णु' कल्याण, श्री विष्णु अक वष 47, अक 1, पष्ठ 102

2 रा० 1 29 13 शरीरे तव पश्यामि जगत्सवमिद प्रभो।

3 ऋ० 6 69 5 इद्राविष्णू तत्पनयाय्य वा सोमस्य मद उरु चक्रमाथे।
अकृणुतमन्तरिक्ष वरीयोऽप्रथत जीवसे नो रजासि॥

4 तदेव 7 99 6 इय मनीषा बृहती बृह तोरुक्रमा तवसा वधयन्ती।
7 99 4 जनय ता सूयमुपासमग्निम।

5 तदेव 6 20 2 अहि यद वत्रमपो ववव्रास हन्नृजीषिन् विष्णुना सचान।

6 तदेव 1 22 19 इद्रस्य युज्य सखा।

7 श० ब्रा० 6 5 1 2 त वि ष्णुर वतिष्ठत।

8 रा० 7 75 77। 9 तदेव 1 1 18 विष्णुना सदृशो वीर्ये।

10 तदेव 7 35 5 विक्रमस्ते यथा विष्णो। 11 तदेव 1 15 1, 7 6 30

12 तदेव 1 14 6। 13 तदेव 1 45 43 (म० वि०)

14 तदेव 1 45 30 (म० वि०) 7 6 19, 7 8 16

15 तदेव 2 4 33, 7 6 19, 7 6 16। 16 तदेव 1 45 29 (म० वि०)

17 तदेव 1 76 28,

सूदन,[1] सुरोत्तम[2] तथा सनातन[3] भी कहा गया है। ये वैनतेय पर समारूढ़, पीतवस्त्रधारी, चतुर्बाहु और हाथ में शंख चक्र तथा गदा धारण किए हैं।[4] इनका स्वरूप अव्यय[5] और अक्षय्य है।[6]

विष्णु अवतार धारण करते हैं। इनके वामन अवतार का विवरण हो चुका है। मैक्डानल के अनुसार इनके वराहावतार का मूल 'ऋग्वेद' में ही है।[7] शतपथ ब्राह्मण' में वराह के पृथिवी को जल से बाहर निकालने का उल्लेख है।[8] 'तैत्तिरीय संहिता' में इस जल से पृथिवी को निकालने वाले वराह का वर्णन प्रजापति के रूप में हुआ है।[9] इसका विकास आगे तैत्तरीयब्राह्मण में भी है।[10] इस सम्बन्ध में 'रामायण' में स्वल्प विवरण उपलब्ध है कि प्रजापति द्वारा निर्मित पृथिवी को विष्णु ने वराह बनकर जल से बाहर निकाला था[11]। पूर्वकाल में इनके हिरण्यकशिपु[12] तथा हजारों राक्षसों के वध का उल्लेख है[13] जिनमें नमुचि, कालनेमि, संह्लाद मधु तथा वरोचन प्रमुख हैं।[14] इसी से इनका नाम मधुसूदन भी पड़ा।

---

1 तदेव 2 6 7, 7 8 27। 2 तदेव 1 74 18

3 तदेव 2 1 7 (मैं० वि०) 7 8 27

4 रा० 1 14 16 शंखचक्रगदापाणि पीतवासा जगत्पति।
 1 15 16 वैनतेय समारुह्य भास्करतोयद यथा। (म० वि०)
 3 22 29 चक्रहस्तो यथा विष्णु। (म० वि०)
 7 8 26 ऊचे नारायण देव शंखचक्रगदाधरम।
  भगवान्नारायणो देव चतुर्बाहु-सनातन।

5 तदेव 1 15 2 2 110 19 श्री विष्णुमव्ययम।

6 तदेव 1 75 17

7 मैक्डानल पूर्वोद्धृत ग्रंथ पृष्ठ 92 93 गयाचरण त्रिपाठी, वैदिक देवता, भाग 1, पृष्ठ 351

8 ऋ० 1 61 7 मुषायद्विष्णु पचत सहीयान विध्यद वराह तिरो अद्रिमस्ता।

9 श० ब्रा० 14 1 2 11 इयती ह वा इयमग्रे पृथिव्यास प्रादेशमात्री तामेमूय इति वराह उज्जघान।

10 तै० ब्रा० 1 1 3 5 आपो वा इदमग्रे सलिलमासीत।

11 रा० 2 102 2 स वराहस्ततो भूत्वा प्रोज्जहार वसुधराम।

12 तदेव 7 6 34 हिरण्यकशिपोर्मृत्युरन्येषा च सुरद्विषाम।
  नमुचि कालनेमिश्च संह्लादो वीरसत्तम। (नि० सा०)

13 तदेव 7 6 32 नारायणेन निहता शतशोऽथ सहस्रश।

14 तदेव 1 75 17 अक्षय्य मधुहन्तार जानामि त्वा सुरेश्वरम।
  6 47 120 वरोचनमिव क्रुद्धो विष्णुरभ्युद्यतायुध।

'शतपथ-ब्राह्मण' के अनुसार विष्णु प्रजापति की सृष्टि के समय कूर्म बनकर जल मे भ्रमण करते हैं।[1] 'रामायण' मे हृषिकेश कामठ अर्थात कच्छप का रूप धारण कर अपन पृष्ठ भाग पर मन्दराचल को उठाकर देवो और दत्यो से समुद्र मन्थन करवाते हैं।[2] 'रामायण' के नायक स्वय विष्णु के अवतार हैं, जो रावण के वध के लिए देवो की प्राथना पर दशरथ के घर जन्म लेते हैं।[3] इनके जन्म का एक और कारण बताया गया है। पूवकाल मे भृगुपत्नी काव्यमाता त्रिभुवन को इन्द्रशून्य करना चाहती थी। विष्णु न इनका वध कर दिया।[4] एक अन्य स्थल पर प्राप्त विवरण के अनुसार दैत्यों को आश्रय देने के कारण इन्होने भृगुपत्नी का चक्र से मस्तक काट दिया, जिस पर क्रुद्ध होकर भृगु ने इन्ह मृत्युलोक म जन्म लेने तथा पत्नी के वियोग का शाप दे दिया।[5] इसीलिए पथिवी पर अवतीण होकर इन्हें राम के रूप मे पत्नी वियोग सहना पडा। एक स्थल पर ब्रह्मा स्वय राम का सवव्यापक विष्णु के रूप म स्तवन करते हैं। वहा विष्णु के लगभग सभी गुणो को राम मे बताया गया है।[6] राम विष्णु के अधभाग, भरत चतुर्थांश तथा लक्ष्मण एव शत्रुघ्न अधभाग थे।[7] इस प्रकार लक्ष्मण को भी चतुर्थांश कहा गया है।[8] आहत लक्ष्मण इनके चिन्तनीय अश का स्मरण करके स्वस्थ हुए।[9] प्रयाणकाल के अवसर पर भ्राताओ सहित राम वैष्णव तज म प्रवेश करत हैं।[10]

---

1 श० ब्रा० 7 5 1 5
स यत्कूर्मो नाम। एतद्व रूप कृत्वा प्रजापति प्रजा असजत॥
श० ब्रा० 1 23 3 सोऽग्राम अन्तरत कूर्म भूत सपन्तम्। तमब्रवीत्।

2 रा० 1 45 29 30 इति श्रुत्वा हृषिकेश कामठ रूपमास्थित।
पवत पृष्ठत कृत्वा शिश्ये तत्रोदधौ हरि। (म० वि०)

3 तदव 1 14 18 20, 1 17

4 तदेव 1 24 18 विष्णुना च पुरा राम भृगुपत्नी दढव्रता।
अनिन्द्र लोकमिच्छन्ति काव्यमाता निषूदिता।

5 तदेव 7 50 8-20। 6 तदेव 6 105 5 28

7 रा० 1 17 8 विष्णोरध महाभाग पुत्रमक्ष्वाकुनन्दनम्।
1 17 8 साभाद्विष्णोश्चतुर्भाग सर्वे समुदितो गुण।
1 17 9 अथ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ सुमित्राऽजनयत्सुतौ।
वीरौ सर्वास्त्रकुशलौ विष्णारधसमन्वितौ।

8 तदेव 7 96 18 विष्णोश्चतुर्भागमागतम्॥

9 तदेव 6 47 115 आश्वस्त विशल्यश्च लक्ष्मण शत्रुसूदन।
विष्णोर्भागममीमास्यमात्मन प्रत्यनुस्मरन्।

10 तदेव 7 110 10 11 (नि० सा०)

'रामायण' मे विष्णु का स्वरूप इन्द्र से भी अधिक प्रभावशाली है। इन्द्र जहा राक्षसो से युद्ध मे बार-बार हारते हैं तथा सहायता के लिए विष्णु के पास जाते हैं देवताओ सहित विष्णु की प्रार्थना करते हैं वहा विष्णु राक्षसो के वध मे निपुण हैं। ये किसी दत्य से पराजित नही हुए। ब्राह्मणो मे विष्णु को देवो म मुख्य स्थान प्राप्त था।[1] रामायण म इनका स्थान सबसे ऊचा है। एक बार देवताओ के अनुरोध पर ब्रह्मा से विष्णु और शिव म कृत्रिम वर उत्पन्न कर दिया। विष्णु ने हुकार से शव धनुष को स्तम्भित कर दिया। इसके बाद देवगण विष्णु को सवश्रेष्ठ देव मानते हैं।[2]

शिव (रुद्र)— ऋग्वेद मे रुद्र का स्थान गौण है।[3] आगे चलकर जब तक *देवत्रयी अर्थात ब्रह्मा विष्णु तथा शिव का महत्त्व बढा तब इनके साथ बहुत सी* विशेषताए जुडती गइ। परवर्ती वदिक सहिताओ म कुछ विशेषताए जुडी जिनम सहस्राक्ष,[4] नीलकण्ठ[5], नीलशिखण्ड[6] ताम्रलोहितवर्ण[7] पिनाकी[8] तथा पवत वासी[9] प्रमुख हैं। आश्वलायनगृह्यसूत्र म हर, मद शिव तथा शकर इनके नाम बन गए।[10] वाजसनेयिसहिता म अग्नि अशनि, पशुपति, भव, शव ईशान, महा देव, तथा उग्रदेव की गणना रुद्र की विशेषताओ के लिए की गई है।[11] 'शतपथ ब्राह्मण म रुद्र, शव, पशुपति, उग्र अशनि, भव तथा महादेव ये अग्नि क आठ रूप बनकर आए हैं।[12] एक अन्य स्थल पर शव, भव, पशुपति और रुद्र को अग्नि *के नाम कहा गया है।[13] इसके अनुसार शव नाम प्राच्यो में तथा भव बाहीको में*

---

1 ए०ब्रा० 1 1 अग्निर्वै देवानामवमो विष्णु परम।
    1 30 विष्णुर्वै देवाना द्वारप।

2 रा० 1 74 14 20

3 एलफड हिलेब्राण्ट, वदिक माइथोलोजी भाग 2, पृष्ठ 285

4 अथव० 11 2 7 नीलशिखण्डेन सहस्राक्षेण। 11 2 3, वा० स० 16 8

5 वा० स० 16 7 8

6 अथव० 2 27 6, 11 2 7

7 वा० स० 18 7 असौ योऽवसपति नीलग्रीवो विलोहित।

8 तदेव 3 61, 16 51। 9 तदेव 16 2 4। 10 आ० ग० सू० 4 8 17 19

11 वा० स० 39 8 अग्नि हृदयेनाशनि हृदयाग्रेण पशुपति कृत्स्नहृदयेन भव यक्ना। शव मतस्नाभ्यामीशान मयुना महादेवमन्त पश व्येनोग्र देव वनिष्ठुना वसिष्ठहनु शिगीनि कोश्याभ्याम।

12 श० ब्रा० 6 1 3 18 तान्येताप्यष्टावग्नि रूपाणि।

13 तदेव 1 7 3 8 अग्निर्वै स देवस्तस्यतानि नामानि शव इति यथा प्राच्या आ चक्षत भव इति यथा बाहीका पशूना पती रुद्रोऽग्निरिति।

प्रचलित था। शर्व और भव नाम अन्य नामों के साथ 'वाजसनेयिसंहिता' में मिलते हैं।[1] 'शांखायनश्रौतसूत्र' में इनकी तुलना घातक भेड़िये से की गई है। यहां 'भव' और शर्व को महादेव का पुत्र बतलाया गया है। 'ऋग्वेद' में रुद्र शब्द मिलता है।[3] रुद्र की व्युत्पत्ति √रुद—चिल्लाना धातु से होती है। ये प्रारंभ में तूफान और गर्जन के प्रतिरूप थे। ये शिव कल्याणकारी भी थे।[4] रुद्र शब्द का प्रचलन सम्भवतः इनके क्रोध के कारण हुआ। वेद में कुछ स्थलों पर इनसे क्रोध न करने की प्रार्थना की गई है।[5] जब रुद्र का योगी के रूप में परिवर्तन हुआ तो शिव तथा शंकर जैसे शब्दों का प्रयोग होने लगा। इनका महत्त्व ब्राह्मणकाल में भी उन्नति की ओर रहा।[6] 'रामायण' तक इनका महत्त्व विष्णु को छोड़कर अन्य सभी देवों से बढ़ चुका था। 'रामायण' में शिव के लिए महादेव,[7] महेश्वर,[8] देवदेव,[9] तथा सुरपति[10] जैसे शब्दों से इनकी महत्ता का आभास हो जाता है। यहां महेश्वर को जगत्सृष्ट्यन्तकर्त्ता, अजन्मा, अव्यक्त, सर्वलोकाधार, आराध्यदेव, परमगुरु, कामारि, त्रिपुरारि प्रजाध्यक्ष तथा त्रिनेत्रधारी मानकर स्तुति की गई है[11]। यहां शिव के लिए नीलकण्ठ,[12] शितिकण्ठ[13] शंकर,[14] हर,[15] रुद्र,[16] भव,[17] त्रिलोचन,[18]

---

1 वा० स० 16 18 नमो भवस्य हेत्यै जगतां पतये नमः।
16 28 नमो भवाय च रुद्राय च नमः शर्वाय च पशुपतये च।

2 शां० श्रौ० सू० 4 20 1 यावरण्ये पतयतो वृकौ जञ्जभताविव।
महादेवस्य पुत्राभ्यां भवशर्वाभ्यां नमः ॥

3 ऋ० 10 92 5 प्र रुद्रेण ययिना यन्ति सिन्धवस्तिरो महीमरमतिं दधन्विरे।

4 तदेव 10 92 9 यभि शिवः स्ववाँ एवयावभिर्दिवः सिषक्ति स्व यशा निकामभिः।

5 तदेव 1 114 7, 8, 2 33 1, 11, 14, 6 28 11

6 श० ब्रा० 6 2 5 13 रुद्रो व ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च देवानाम्।

7 रा० 1 35 9, 1 74 4, 6 105 3। 8 तदेव 1 35 12, 1 35 25

9 तदेव 1 35 9 1 42 1। 10 तदेव 1 35 16

11 तदेव 7 6 2 3 जगत्सृष्ट्यन्तकर्त्तारमजमव्यक्तरूपिणम्।
आधारं सर्वलोकानामाराध्यं परमं गुरुम्॥
ते समेत्य तु कामारिं त्रिपुरारिं त्रिलोचनम्।

12 तदेव 1 35 7। 13 तदेव 1 35 6 1 74 14 16

14 तदेव 1 42 15 16। 15 तदेव 1 42 6

16 तदेव 1 43 8 म० वि० 1 74 20, 1 22 12 3 29 27

17 तदेव 1 42 17। 18 तदेव 1 42 6, 1 74 17, 7 6 3, 7 6 27

पिनाकी,[1] कामारि,[2] वपध्वज[3] त्रिपुरातक,[4] कपर्दी[5] तथा स्थाणु[6] नाम मिलते हैं जिनमें बहुत से नामो स उनके कार्यों का बोध होता है। शिव के सबध मे कुछ कथाए 'रामायण' मे मिलती है। कामदेव को भस्म करने के कारण इनका नाम कामारि पडा। एक बार कामदेव ने इनके तप म विघ्न डालत हुए इनके *मन को विचलित करने का प्रयास किया, जिसस क्रुद्ध होकर इ होने अपने ततीय* नेत्र से 'कामदेव' को भस्म कर दिया। इस कारण इनका नाम कामारि पडा।[7] तीन नत्र होने के कारण इनका नाम त्रिनेत्र' पडा। एक स्थल पर इनके लिए पडधनयन शब्द का प्रयोग मिलता है।[8] इ होने दवो से प्राप्त शव धनुप स त्रिपुरासुर का वध किया था।[9] अधकासुर को श्वेतवन म मारने का श्रेय भी इ ही को है।[10] भगीरथ की तपस्या स प्रस न होकर इ होंने उ हे स्वग से गिरती हुई गगा को अपने जटाजूट म धारण करने का वचन दिया क्योकि गगा के वग को धारण करने मे अ य कोई समथ नही था। गगा पाताल मे न चली जाए इस अभिप्राय से इ होने भगीरथ के पुन तप करने पर इ हान गगा को बिंदु नामक सरोवर मे छोड दिया।[11] *सागरम थन के समय वासुकि नाग स प्रकट विपरूप हाला* हल को इ होने देवा के अनुरोध पर अमत की भाति ग्रहण किया।[1] इ होन माल्य वान का वध करने मे असमथता व्यक्त की तथा देवा को विष्णु के पास भेजा।[13] एक बार रावण ने उस पवत को उठाने का प्रयास किया जिस पर वे क्रीडा करते थे। इ होने उस पवत का दबा दिया जिससे रावण की भुजाए उसके नीचे दब गइ और वह चिल्लाया। रावण न साम स्तुतिया स शिव को प्रस न किया जिसस वह वहाँ स जा सके। इस भयानक आतनाद के कारण ही उसका नाम रावण प्रसिद्ध हुआ।[14] इ होने *मधु की तपस्या स प्रस न होकर उसे शूल दिया था।*[15] *जिस स्थान* पर कार्त्तिकेय का ज म हुआ वहा ये क्रीडा करत थे। वहा जो भी जाता वह स्त्रीरूप म परिणत हो जाता था।[16] राजा इल भी वहा जाकर स्त्रीरूप म परिणत

---

1 तदेव 2 96 29। 2 तदेव 7 6 3
3 तदेव 1 35 17, 6 105 3। 4 तदेव 5 54 31 (मि० सा०), 7 6 3
5 तदेव 7 6 9। 6 तदेव 1 22 20
7 रा० 1 22 10 14, 3 54 10। 8 तदेव 6 105 3
9 तदेव 3 60 54 त्रिपुर जघ्नुप पूव रुद्रस्येव बभौ तनु । 1 74 12
10 तदेव 3 29 27 रुद्रणेव विनिदग्ध श्वेतारण्ये यथा धक ।
6 43 6 त्र्यम्बकेण यथा धक ।
11 तन्वे 1 42 4 10, 2 44 25। 12 तदव 1 45 21 25 (म० वि०)
13 रा० 7 6 9 12। 14 तदेव 7 16 25 44 (नि० सा०)
15 तदेव 7 53 11 16। 16 तदव 7 78 11 19,

हो गए। मरुतो ने इल के लिए शिव को उद्देश्य कर याग किया, जिससे प्रसन्न होकर इन्होने ऋषियो के अनुरोध पर इल को पुरुषत्व प्रदान किया।[1]

'रामायण' म इनकी पत्नी उमा है, जो पवत की पुत्री होन के कारण पावती भी कही गई है।[2] इन्होने एक बार देवताओ के अनुरोध पर अपने तज को पथिवी पर छोडा, जिससे पथिवी धनधाय से पूण हो गई। इसी स पवत और वन भी उत्पन्न हुए।[3] देवताओ के अनुराध पर अग्नि ने इनके तेज को धारण किया जिससे श्वेत पवत की उत्पत्ति हुई, यही पर वन उत्पन्न हुआ था तथा इसी स्थल पर कुमार कात्तिकेय का जन्म भी हुआ था।[4] सुकेश नामक दत्य पर दया करत हुए इन्होन उसे युवा बनाया तथा अमरत्व देकर आकाशचारी विमान भी दिया।[5]

रामायण म विष्णु के बाद शिव ही महत्त्वशाली देव हैं। ये भी किसी राक्षस से पराजित नही होत। केवल विष्णु स इनकी पराजय बताई गई है।[6] एक बार ब्रह्मा न शिव और विष्णु म कृत्रिम विरोध उत्पन्न किया दोना का युद्ध हुआ जिसम विष्णु ने हुकार स शिवधनुष को स्तम्भित कर दिया। इस प्रकार देवताओ ने शिवधनुष को स्तम्भित देखकर विष्णु को सवश्रेष्ठ माना। तदनन्तर कुपित रुद्र न बाणसहित अपने धनुष को विदेहराज देवरात को दे दिया।[7]

सूय—सूय विश्व म जीवन और गति के महान प्रेरक, पथिवी को अपने गभ से उत्पन्न करने वाल और गतिमान के रूप म सम्पूण ससार के गतिमानो म प्रमुख, चराचर विश्व के सचालक घटी पल, अहोरात्र, मास एव ऋतु आदि समय के प्रवतक प्रत्यक्ष देवता है।[8] ये चराचर विश्व की आत्मा हैं।[9] ये चराचर विश्व के लिए चमकते हैं,[10] मनुष्यो और देवताओ क लिए भासित होत है,[11] प्रकाश स अध

---

1 तदेव 7 81 13 20। 2 तदव 1 35 6 7। 3 तदेव 1 35 13 15
4 रा० 1 35 15 18। 5 तदेव 7 4 27 30। 6 तदेव 1 74 14 20
7 तदेव 1 74 14 25
8 ऋ० 9 114 3 पर सायणभाष्य,
सरति गच्छति वा सुवति प्रेरयति वा तत्तद व्यापारेषु कृत्स्न जगदिति सूय।
यद्वा सुष्ठु ईयत प्रकाशवर्णादि व्यापारेषु प्रेयत इति सूय।
ब० दे० 7 128 सूय सरति भूतेषु सुवीरयति तानि वा।
सु ईयत्वाय यो ह येष सवकर्माणि सन्दधत।
9 तदेव 1 115 1 सूय आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।
10 तदव 7 63 1 उदवेति सुभगो विश्वचक्षा साधारण सूर्यो मानुषाणाम।
11 तदेव 1 50 5 प्रत्यङ देवाना विश प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान।

कार का विध्वस करते हुए[1] उस चम की भाति बटोरते हैं।[2] सूय के अस्त होने पर रजनी का आगमन होता है[3] उदित होने पर अधकार का नाश।[4]

'रामायण' म इनके आह्वान[5] तथा दशन का[6] उल्लेख है। यहा राम को अगस्त्य ऋषि आदित्यहृदय स्तोत्र का उपदेश देते हैं। सूय स्वय राम का अपनी ओर अभिमुख होकर तीन बार जप करके रावण के वध के लिए जाने को कहते हैं[7]। इन्हें सायकाल के समय वसु तथा मरुद्गणादि देव मेरुपवत पर आकर उप स्थापन करते हैं।[8] *आदित्यहृदय म इन्हें सभी देवताओं का स्वरूप कहा गया है।* यहा सूय के बहुत से विशेषण प्राप्त होते हैं—आदित्य, सविता सूय खग, पूषा, गभस्तिमान्, स्वणतुल्य, भानु हिरण्यरेता, दिवाकर, हरिदश्व, सहस्रार्चि सप्त सप्ति मरीचिमान्, तिमिरोन्मथन शम्भु त्वष्टा मातण्डक, अशुमान हिरण्यगभ, शिशिरतपन, अहस्कर रवि, अग्निगभ शख, तिमिरनाशन व्योमनाथ, तमोभेदी ऋग्यजु सामपारग, घनवष्टि, जलमित्र विन्ध्यवीथीप्लवगम आतपी मडली, मत्यु पिंगल सवतापन, कवि विश्व महातजस्वी, रक्त, सवभवोद्भव, नक्षत्र ग्रहताराधिपति विश्वभावन और तेजो म अत्यन्त तेजस्वी। 'रामायण' म सुग्रीव सूयपुत्र हैं।[9]

4 देवगण

आदित्यगण— ऋग्वेद म इनके निमित्त कुछ सूक्त भी हैं। इनकी सख्या अनिश्चित सी लगती है। ऋग्वेद म छह आदित्यों का उल्लेख हुआ है जिसम मित्र अयमा भग वरुण, दक्ष और अश के नाम हैं।[10] इनकी सख्या सात[11] या आठ[12] भी है। अदिति ने पहले देवताओं के समक्ष सात तथा बाद म आठवें आदित्य

1 तदेव 10 37 4 येन सूय ज्योतिषा बाधसे तम ।
2 तदव 7 61 1 चर्मेव य समविव्यक तमासि ।
3 रा० 2 11 7 अस्तमभ्यागमत सूर्यो रजनी चाभ्यवतत ।
4 तदेव 4 38 2 आदित्यो सौ सहस्राशु कुर्यादितिमिर नभ ।
5 तदेव 2 25 23 (म० वि०)
6 तदेव 2 18 15
7 रा० 6 105 (म० वि०)
8 तदेव 4 41 36 37
9 तदेव 1 17 10 सुग्रीव जनयामास तपनस्तपता वर । (म० वि०)
10 ऋ० 2 71 1 श्रणोतु मित्रो अयमा भगो नस्तुविजाता वरुणो दक्षो अश ।
11 तदव 9 114 3 देवा आदित्या ये सप्त तेभि सोमाभि रक्ष ।
12 तदव 10 72 8 अष्टौ पुत्रासो अदितेर्ये जातास्तन्व१स्परि ।

मार्तण्ड को भी प्राप्त किया।[1] 'अथर्ववेद' मे उल्लिखित[2] अदिति के आठ पुत्रो के नाम 'तैत्तिरीयब्राह्मण' मे मिलते है।[3] जिनमे मित्र, वरुण, अर्यमा, अश, भग, धाता, इन्द्र और विवस्वान् हैं। 'शतपथब्राह्मण' मे एक स्थल पर आदित्यो की सख्या आठ कही गई है[4], साथ ही अन्य स्थलो पर उनकी सख्या बारह है तथा उनकी तद्रूपता बारह मासो से स्थापित की गई है।[5] 'रामायण' मे आदित्यो की सख्या बारह है।[6] ये अदिति के पुत्र हैं। यहा इनका मानवीय रूप मिलता है इन्द्र के निवेदन पर ये रावण से युद्ध करते हैं[7] सीता के शपथ समारोह मे भी ये उपस्थित थे।[8]

मरुद्गण—वेदो मे मरुतो को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इनकी सख्या सात की तीन गुनी अर्थात् इक्कीस कही गई है।[9] इनके सात गण हैं।[10] 'ऋग्वेद' मे प्रयुक्त रुद्रा[11] तथा रुद्रिया[12] शब्दो से इनके रुद्र के पुत्र होने का बोध होता है। इन्हे पृश्नि के पुत्र कहा गया है।[13] इनका प्रधान काय समुद्र से उठकर[14] वर्षा करना है।[15]

रामायण मे मरुतो का उल्लेख इन्द्र के साथ हुआ है जो युद्ध मे जाते हैं,[16]

---

1 तदेव 10 172 9 सप्तभि पुत्रैरदितिरुपप्रैत्पूर्व्य युगम। प्रजायै मृत्यवे त्वत्पुनर्मार्तण्डमाभरत।

2 अथर्व० 8 9 21 अष्टयोनिरदितिरष्टपुत्रा।

3 तै० ब्रा० 1 1 9 1। 4 श० ब्रा० 3 1 3 2 3

5 तत्रैव 6 1 2 8 से द्वादशादित्या असृज्यन्त।

11 6 3 8 कतम आदित्या इति। द्वादशमासा सवत्सरस्यत आदित्या।

6 रा० 3 13 14। 7 रा० 7 27 4 22, 7 28 27 28

8 तदेव 7 88 8

9 ऋ० 1 133 6 त्रिसप्त शूर सत्वभि।

अथर्व० 13 1 13 त्रिषप्तासो मरुत स्वादुसमुद।

10 श० ब्रा० 2 5 1 13 सप्त हि मारुतो गण। 5 4 3 17 सप्त व मरुतो गण।

11 ऋ० 1 39 4 युष्माकमस्तु तविषी तना युजा रुद्रासो नू चिदाधृषे।

1 39 7 आ वो मक्षू तनाय क रुद्रा अवो वृणीमहे।

12 तदेव 1 38 7 धन्वचिदा रुद्रियास।

2 34 10 रुद्रियासित जराय जुरतामग्नाभ्या।

13 तदेव 2 34 2 रुद्रो यद्वो मरुतो रुक्मवक्षसो वृषाजनि पृश्न्या शुक्र ऊधनि।

14 तदेव 1 38 9 दिवा चित्तम कृण्वन्ति पर्जन्येनोद वाहेन।

15 तदेव 5 57 4 पिशगाश्वा अरुणाश्वा अरेपस।

16 रा० 7 27 5, 7 27 22, 7 28 27

राक्षसो का सहार करते हैं।[1] ये पितन्देवा से इन्द्र को वपणयुक्त बनाने की प्रायना करत हैं, जो अहल्या के सतीत्व भग करने पर गौतम के शाप से वपणरहित हो गए थे।[2] दिति के पुत्र सप्तमारुत इन गणो के स्थानपाल हैं।[3] यहा मरुता की सख्या उनचास बनाई गई है।[4] ये कार्तिकेय को दूध पिलाने के लिए कृत्तिकाओ की नियुक्ति करते हैं।[5]

वसुगण—यह गण आदित्य तथा मरुदगण की अपेक्षा धुधला है। 'ऋग्वेद' मे न तो इसकी सख्या का उल्लेख है और न ही इसका स्वरूप निर्धारण हो पाया है। ऋग्वद मे इनका इन्द्र तथा अन्य गणो के साथ उल्लेख है।[6] 'शतपथब्राह्मण' मे इनकी सख्या आठ बतलाई गई है।[7]

रामायण मे भी इनकी सख्या आठ ही है क्योकि इन्हे सतीस देवताओ के अतगत रखा गया है।[8] अप्टम वसु का नाम 'सावित्र' बताया गया है।[9] सावित्र ने सुमाली का वध किया था।[10] रावण भी इनके सामने युद्ध म नही ठहर सका।[11] इस प्रकार सभी गण इन्द्र के साथ युद्ध म जाते है। सीता के शपथ ग्रहण क समय ये भी उपस्थित थे।[12]

विश्वेदेव— यह देवो का अन्य गण है जिसकी सख्या निश्चित नही हो पाई है। इनका या म महत्त्वपूण स्थान है। इनके स्तवन म चालीस सूक्त आम्नात है। इस गण को सभी देवो का प्रतिनिधि मानकर बुलाया जाता है। सम्भवत इसका प्रयोजन यही है कि यज्ञ म कोई भी दवता अनामन्त्रित न रह जाए।[13] कभी-कभी इन्हे सीमित गण मानकर उनका आह्वान वसु और आदित्य जसे गणो के साथ किया गया है।[14] 'रामायण मे इनका उल्लख अन्य गणो के साथ हुआ है। ये अन्य देवा के साथ मेरु पवत पर सूय का उपस्थापन करत है।[15] अन्य गणा एव दवो के साथ

---

1 तदेव 7 28 37 41। 2 तदेव 1 48 5 7। 3 तदेव 1 46 3 8
4 तदव 1 46 3 मरुता सप्तसप्तानाम। 5 1 36 23
6 ऋ० 7 10 4, 7 35 36। 7 श० ब्रा० 4 5 7 2, 11 6 3 5
8 रा० 3 13 14
9 तत्रैव 7 27 34 वसूनामष्टमो वसु सावित्र इति विख्यात।
7 27 43 वसूनामष्टम क्रुद्ध सावित्र।
10 तदेव 7 28 1 सुमालिन हत दृष्ट्वा वसुना भस्मसात कृतम।
11 तदेव 7 29 31। 12 तदव 7 [illegible] 8
13 मक्डानल पूर्वोल्लिखित ग्रन्थ पृष्ठ 339
14 ऋ० 2 3 4 घतनाक्त वसव सीदतद विश्वेदेवा आदित्या यज्ञियास।
15 रा० 4 42 41 42 विश्वेदेवाश्च मरुत वसवश्च दिवौकस।
आगम्य पश्चिमा सध्या मेरुमुत्तमपवतम्।
आदित्यमुपतिष्ठन्ति तश्च सूर्योऽभिपूजित। (म०वि०)

ये भी सीता के शपथ ग्रहण के समारोह के अवसर पर उपस्थित थे।[1]

5 पितृदेव

ततीय स्वग म रहने वाल पुण्यात्मा मतकों को पितदेव कहते हैं। पित शब्द से साधारणतया पूवजो का ग्रहण होता है।[2] जिन्होंने प्रथम माग का निर्माण किया जिससे होकर आज के मतक उनके यहा पहुचते हैं।[3] इनकी स्तुति म 'ऋग्वेद' म दो सूक्त कहे गए हैं।[4] ये यम के साथ आनन्द मागते हैं[5] और देवताओ के साथ भोजन करते है।[6] इन्हे यम और अग्नि के साथ हवि ग्रहण करने बुलाया जाता है।[7] सहस्रो की सख्या म आकर वे यज्ञभूमि पर बठ जाते हैं।[8] 'अथववेद' के अनुसार जब पिता यज्ञ म आते हैं तब दस्यु लोग कभी कभी मित्र के वेप म उनके मध्य प्रविष्ट हो जाते हैं—उन्हें निकाल देने की प्राथना की गई है।[9] पितर अमत्य हैं,[10] इनकी गरिमा देवो जसी है।[11] जिस प्रकार अग्नि को हव्यवाट अग्नि से विविक्त किया गया है[12] उसी प्रकार पितयान को दवयान से अलग दिखाया गया है।[13] शतपथब्राह्मण म स्वगलोक को पितलोक स भिन्न दिखाया गया है। स्वगलोक का

---

1 रा० 7 88 8

2 ऋ० 10 15 8 येन पूर्वे पितर साम्यासोऽनूहिरे ।
10 15 10 पूर्वं पितभिघर्मसद्भि ।

3 तदेव 10 14 2 यमो नो गातु प्रथमो विवेद नषा गव्यूतिरप भतवा उ ।
यत्रा न पूर्वे पितर परेयुरना जनाना पथ्याऽअनु स्वा ॥

4 तदव 10 14 15 1 5 तदेव 10 14 10, 10 135 1

6 तन्नेव 7 76 4 त इन्देवाना सधमाद आसन्नतावान कवय पूर्व्यास ।
गुळह ज्योति पितरो अन्वविन्दन्सत्यमन्त्रा अजनय नुपासम ।

7 तन्नेव 10 15 9 ये तानृपुर्देवत्रा जेहमाना होत्राविद स्तोमतष्टासो अर्कै ।
आग्न याहि सुविदत्रेभिरर्वाङ् सत्य कव्य पितभिघमसदभि ।

8 तदेव 10 15 10 आग्ने याहि सहस्र देववन्द पर पूर्वे पितभिघमसदभि ।

9 अथव० 18 2 28 ये दस्यव पितपु प्रविष्टा ज्ञातिमुखा अहुतादश्चरन्ति ।
परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टानस्मात्प्र धमाति यज्ञात ।

10 तदव 6 41 3 अमर्त्या मर्त्यां अभि न सचध्वम ।

11 ऋ० 10 56 4 महिम्न एपा पितरश्चनेशिरे देवा देवेष्वदधुरपि क्रतुम् ।

12 तदव 10 16 9

13 तदेव 10 2 7, 10 81 1, 10 85 15

द्वार पूर्वोत्तर की ओर है, जबकि पितलोक का द्वार पूव दक्षिण की ओर है।[1] तेत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार पितदेवो की रचना मनुष्यो स पथक हुई। इस प्रकार पितदेवो का वग मनुष्या से ऊपर तथा देवा स निम्न है।

'रामायण के अनुसार ये स्वधाभोजी हैं। इनका यह स्वधा सज्ञक भोजन क्षीर सागर से उत्पन्न हुआ करता था।[3] देवो क अनुराध पर पितदेवो ने गौतम के शाप से वषणरहित हुए इन्द्र को मेष क वषण प्रत्यारोपित कर सवषण बनाया था।[4] तब से यज्ञ मे पितरो को वषणरहित मेष दिए जाते हैं।[5] इन्द्रजित के विरुद्ध युद्ध करते हुए लक्ष्मण की ये रक्षा कर रहे थे।[6] साता की उपेक्षा करन पर राम के सम्मुख उपस्थित होकर इन्होने उन्हे समझाने का प्रयास किया।[7]

6 स्त्री देवता

वदिक-साहित्य म देवियो का स्थान देवो की अपेक्षा गौण है। उषा के अतिरिक्त अन्य देवियो की स्तुति म कहे गए सूक्तो की सख्या बहुत कम है। रामायण मे उषा का तो सकेत भी उपलब्ध नही होता परन्तु अन्य देविया म अदिति का महत्त्व इसलिए बढ जाता है क्योकि वह देवो का माता है। कुछ स्थलो पर अन्य देविया का उल्लेख हुआ है जिनम सरस्वती, पृथिवी तथा रात्रि है। दत्या की माता अदिति की बहिन दिति है।

अदिति—यद्यपि अदिति की स्तुति मे ऋग्वेद म एक भी सूक्त नही है तथापि यत्र-तत्र उसके नाम का उल्लेख लगभग 80 बार हुआ है। बहुधा वे अपने पुत्रो आदित्या के साथ आहूत होती है। इनका कोई निश्चित स्वरूप वेदो मे नही

---

1 श० ब्रा० 13 6 2 4 यद्वेवोदड प्राडतिष्ठन। एतस्या दिशि स्वर्गलोकस्य द्वारम।
13 8 1 5 उभे दिशावन्तरेण विदधाति प्राची च दक्षिणा चतस्य ह दिशि पितलोकस्य द्वारम।

2 तै० ब्रा० 2 3 8 2 तदनु पितृनसृजत। तत्पितृणा पितत्वम। स पितन्सृष्ट्वा ऽमनस्यत तदनु मनुष्यानसजत।

3 रा० 7 23 20 स्वधा च स्वधभोजिनाम।

4 तदेव 1 48 7 8 अग्नेस्तु वचन श्रुत्वा पितृदेवा समागता।
उत्पाटय मेषवषणौ सहस्राक्षे न्यवेशयन्।

5 तदेव 1 48 9 अफला भुञ्जते मेषा फलस्तपामयोजयन्।

6 तदेव 6 78 23 ऋषय पितरो देवा गन्धवगरुडोरगा।
शतक्रतु पुरस्कृत्य ररक्षुलक्ष्मण रणे॥

7 तदेव 6 105

है। अदिति को राजमाता कहा गया है।[1] य शक्तिशाली[2], अद्वितीय[3] तथा वीर पुत्रों[4] की माता है। एक स्थल पर उन्हें मित्र वरुण, तथा अयमा की माता कहा गया है।[5] एक स्थल पर उन्हें आठ पुत्रों की माता वर्णित किया गया है।[6] अदिति ही सब रूपिणी है।[7] देवों की माता होने पर भी वन्त मे अदिति के उत्पत्ति के विषय म कोई सकेत नही है। अदिति को दक्ष स तथा दक्ष को अदिति से उत्पन्न[8] कहन पर यह निणय करना कठिन है कि कौन किससे उत्पन्न है।

रामायण म अदिति प्रजापति दक्ष की पुत्री,[9] कश्यप की पत्नी[10] तथा ततीस देवताओ की माता है।[11] इन देवा के नायक इन्द्र स्वय अदिति के पुत्र हैं।[12] विष्णु इन्ही के गभ से प्रकट होकर वामन रूप मे विरोचन कुमार बलि के पास गए।[13] इनकी भगिनी दिति भी कश्यप की ही पत्नी थी।[14] अदिति मगल प्रदान करने वाली दवी है।[15] 'शतपथ-ब्राह्मण' क अनुसार अदिति समस्त जगत का अदन करने वाली है।[16] मक्डानल बाधना अथ वाली √दा—धातु स अदिति शब्द को निष्पन्न मानत हैं।[17] इस शब्द का समुचित अथ है—अबद्धता अर्थात स्वतन्त्रता। इस धातु

---

1 ऋ० 2 27 7 पिपर्तु ना अदिती राजपुत्रा।

2 27 1 इमा गिर आदित्येभ्यो घतस्नू सनाद राजभ्यो जह्वा जुहामि।
श्रणोतु मित्रो अयमा भगानस्तुविजाता वरुणो दक्षो अश।

2 तदेव 8 67 11 पपि दीन गभीर आ उग्रपुत्रे जिघासत।

3 तदेव 3 4 11 बर्हिन आस्तामदिति सुपुत्रा।

4 तन्‍ेव 3 8 2 हुव दवीमदिति शूरपुत्राम।

11 1 11 गह्णातु त्वामदिति शूरपुत्रा।

5 ऋ० 8 47 9 अदितिन उरुष्यत्वदिति शम यच्छतु।
माता मित्रस्य रेवतोऽयम्णो वरुणस्य च।

6 तदेव 10 72 8 अष्टौ पुत्रासो अदिते ये जातास्तन्वस्परि।
अथव० 8 9 21 अष्टयोनिरदितिरष्टपुत्रा।

7 ऋ० 1 89 10 अदिति द्यौरदितिर तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्र।
विश्वेदेवा अदिति पच जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम्।

8 तन्‍ेव 10 72 4 5 अदितेर्दक्षो अजायत दक्षाद्वदितिस्परि।
अदितिर्ह्य जनिष्ट दक्ष या दुहिता तव।

9 रा० 3 13 10-11। 10 तदेव 1 45 4। 11 तदव 3 13 14, 7

12 तदेव 1 17 7। 13 तदव 1 28 8 9। 14 तदेव 1 45 1, 3 13 10 11

15 तन्‍ेव 2 25 34 अदितिमगल प्रादातते भवतु मगल। (म० वि०)

16 श० ब्रा० 10 6 5 5

17 मैक्डानल, पूर्वोद्धृत ग्रन्थ, पृ० 316

का भूतकालिक कमवाच्य न्ति' शब्द का प्रयोग यूप मे बधे शुन शेप क वणन मे आया है।[1] फलत अदिति से ही बधन नीला करने की प्राथना की गई है। एक मन्त्र मे माता पिता को पुन देखन के लिए अदिति के हाथ सौंपने की प्राथना की गई है।[3] 'यास्क ने अदिति को अदीना देवमाता' बतलाया है।[4]

पृथिवी—'ऋग्वेद'[5] मे पथिवी क लिए सक्षिप्त तथा 'अथववेद'[6] म गम्भीर एव रुचिर सूक्त हैं। यहा पथिवी देवी म मिलन वाली विशेषताए भौतिक पथिवी मे मिल जाती हैं। यह पवतो के भार को सभालती है वन औपधियो को धारण करती है धरती को उवरा बनाती है। पृथिवी का अथ है—विस्तत। यह शब्द 'ऋग्वेद मे भी मिलता है, जहा इन्द्र द्वारा पथिवी के प्रथन का उल्लेख है।[7] ✓प्रथ—प्रथने धातु से इसकी व्युत्पत्ति तत्तिरीय सहिता[8] तथा तत्तिरीय ब्राह्मण[9] मे भी मिलती है। पथिवी की स्तुति माता क रूप म मिलती है।

'रामायण म पृथिवी का मानवी रूप भौतिक रूप दोनो मिलत हैं। कयेयी *दशरथ से वर प्राप्ति के अवसर पर पथिवी को साक्षी रहने को कहती है।*[10] कौशल्या इनका आह्वान करती है।[11] सीता शपथ ग्रहण के समय पृथिवी की स्तुति करती हैं तो पथिवी मानवी रूप मे ऐस सिहासन पर प्रकट होती हैं, जिसे नागो ने धारण कर रखा है।[12] राम के परमधाम जाते समय ये भी उनके साथ चली गई।[13] शिव के तेज को धारण करने से पथिवी पवतो एव वनो से व्याप्त हुई[14] इससे रुष्ट होकर उमा ने इसे बहुत दिनो तक नि सतान रहने तथा बहुतो की भार्या होने का शाप दिया।[15] सगर के पुत्रों ने पथिवी को खोदा तो ये त्रस्त होकर आतनाद करने लगी।[16] ये विष्णु की महिषी है।[17]

---

1 ऋ० 5 2 7 शुनश्चिच्छेप निदित सहस्रात ।

2 तदव 8 67 14 ते न आस्नो वकाणामादित्यासो मुमोचत ।
स्तेन बद्धमिवादिते ।

3 तदेव 1 24 1 को नो मह्या अदितये पुनर्दात पितर च दशेय मातर च ।
आदित्यानामवसा नूतनन सक्षीमहि शमणा शस्तमेन ॥

4 नि० 4 22। 5 ऋ० 5 84। 6 अथव० 12 1

7 ऋ० 2 15 2 स धारयत् पृथिवी पप्रयच्च सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ।

8 त० स० 7 1 5 1 साऽप्रथत सा पथि यभवत्तत्पृथिव्य पथिवित्वम ।

9 तै० ब्रा० 1 1 3 5 यदप्रथयत्तत्पथिव्य पथित्वम ।

10 रा० 2 10 22। 11 तदेव 2 22 6। 12 तदेव 7 88 15 20

13 तदेव 7 99 ▮ मही देवी यवसायस्तथाग्रत ।

14 तदेव 1 35 16 तेजसा पृथिवी येन व्याप्ता सगिरिकानना।

15 तदेव 1 35 22 23

16 तदेव 1 38 29 भिद्यमाना वसुमती ननाद रघुनदन। 17 तदेव 1 39 2

रात्रि—'ऋग्वेद' मे रात्रि का आह्वान एक सूक्त म है।[1] यहा उषा की भाति ये भी दिवो की दुहिता कही गई हैं। रात्रि काली नही अपितु तारो से प्रकाशित है। उसके आ पहुचने पर ग्राम स्वगहा का लौटते हैं और पक्षी नीडो की ओर। उसम प्राथना की गई है कि वह वको और तस्करो को प्रताडित करे, उपासको की ओर सुरक्षा का हाथ बढाए।

'रामायण' मे कौशल्या राम के वनवास के समय रक्षा के लिए रात्रि का आह्वान करती हैं।[2] जिस प्रकार शरदऋतु की रात्रि निमल चद्रमा से सनाथ होती है उसी प्रकार भूमि अच्छे राजा से सनाथ होती है।[3] 'रामायण' मे रात्रि को चन्द्रमा की पत्नी माना गया है। सीता जी ने अपनी पतिव्रता का प्रमाण देने के लिए रात्रि का भी आह्वान किया था।[4]

सरस्वती—'ऋग्वेद' मे सरस्वती की स्तुति नदी के रूप म की गई है।[5] यह यह नदी अन्य नदियो की अपेक्षा मातत्व गुणो से परिपूण है।[6] नाहुष को सरस्वती से घत तथा दुग्ध प्राप्त होने का उल्लेख है।[7] उस समय इसके तट पर पुरु लोग निवास करते थे।[8] रामायण म यह नदी वर्णित है। भरत केकय से लौटते समय यहा म आए थे।[9] सीता की खोज मे सुग्रीव द्वारा प्रेषित विनत भी वहा गए थे।[10]

'अथववेद म इसकी स्तुति नदी के रूप म नहा अपितु एक देवी के रूप म की गई है।[11] यह स्थल एक नवविवाहित स्त्री से सरस्वती को नमस्कार करने को कहा गया है।[12] कौशिकसूत्र' म यम के बाद सरस्वती को आहुति देने का विधान है।[13] इसी के आधार पर इसे वतरणी माना गया है जो मृत्यु और जीवन को विभाजित करती है और स्वग और पथिवी पर समान रूप से बहती है।[14]

---

1 ऋ० 10 127। 2 रा० 2 25 14 (म० वि०)

3 तदेव 2 101 11 भवत्वविधवा भूमि समग्रापतिना त्वया।
शशिना विमलनेव शारदी रजनी यथा ॥ (म० वि०)
(भू०) चन्द्र खनु निशापति।

4 तदेव 6 116 28 (गीता प्रस)। 5 ऋ० 7 95 96

6 एलफ्ड हिलेब्राण्ट पूर्वोद्धत ग्रथ भाग 2 पष्ठ 209

7 ऋ० 7 95 2 घत पयो दुदुहे नाहुषाय।

8 तदेव 7 96 2 अधिक्षयन्ति पूरव।

9 रा० 2 66 5। 10 तदेव 4 39 20। 11 अथव० 7 68

12 तदेव 14 2 20 अधा सरस्वत्य नारि पितभ्यश्च नमस्कुरु।

13 कौ० सू० 61 35

14 एलफ्ड हिलेब्राण्ट पूर्वोद्धत ग्रथ भाग 2, पृष्ट 212

'ऋग्वद' म पवित्र अन्न मे सम्बद्ध क्रिया वाली माना है।[1] यह सत्य वाणी का प्रेरित करती है तथा ज्ञान प्राप्त कराती है।[2] 'रामायण' म भी यह वाणी की दवी के रूप म प्रकट होती है। देवगण ब्रह्मा को कुम्भकर्ण को वर दन स रोकत हैं।[3] य ब्रह्मा क स्मरण पर उपस्थित होती है। ब्रह्मा सरस्वती का कुम्भकर्ण की जिह्वा पर विराजमान होकर दवताओ क अनुकूल वाणी के रूप म प्रकट हाने को कहत हैं।[4] कुम्भकर्ण के नीद का वर माग लन पर सरस्वती उन्हें छोडकर चली जाती है।[5] सरस्वती के चले जाने पर वह पुन सज्ञा प्राप्त करता है।[6]

7 अप्सराएँ

'ऋग्वद' म अप्सराओ क विषय म अत्यल्प सकेत मिलत हैं। अप्सरा अपने प्रणयी गन्धर्व की ओर दखकर मुस्कराती है।[7] एक स्थल पर उल्लख है कि प्रलम्ब कशो वाला नाना अप्सराओ और गधर्वो क पथ पर चल सकता है।[8] गन्धर्व की 'अप्या-योषा' भी अप्सरा ही है।[9] इन्ह समुद्रिया कहा गया है।[10] अथववेद म इनका आवास सलिल बताया गया है जहा स ये क्षण भर म आती हैं।[11] उनका गन्धर्व-पत्नी होने का उल्लेख तो अन्य सहिताओ म भी मिलता है।[12] शतपथ ब्राह्मण' क अनुसार वे अपन को जलीय पक्षी क रूप म परिवर्तित कर लती हैं।[13]

---

1 ऋ० 1 3 10 पावका न सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती।
2 तदेव 1 3 11 चोदयित्री सूनृताना चेतन्ती सुमतिनाम। यज्ञ दध सरस्वती।
3 रा० 7 10 36 40
4 तदेव 7 10 41 चिन्तिता चोपतस्थे ऽस्य पाश्वदेवी सरस्वती।
प्राजलि सा तु पार्श्वस्था प्राह वाक्य सरस्वती॥
प्रजापतिस्तु ता प्राप्ता प्राह वाक्य सरस्वतीम।
वाणि त्व राक्षसेन्द्रस्य भव वाग्देवतप्सिता।
5 तदेव 7 10 46 देवी सरस्वती चव राक्षस न जहौ पुन।
6 तदेव 7 10 47 विमुक्तोऽसौ सरस्वत्या स्वा सज्ञा च ततो गत।
7 ऋ० 10 123 4 अप्सरा जारमुप सिष्मियाणा योषा बिभर्ति परमे व्योमन्।
8 तदेव 10 136 6 अप्सरसा गन्धर्वाणा मगाणा चरणे चरन्।
केशी कतस्य विद्वान्सखा स्वादुमदिन्तम।
9 तदेव 10 10 4 गन्धर्वो अप्स्वप्या च योषा सा नो नाभि परम जामितन्नौ।
10 तदव 9 78 3 समुद्रिया अप्सरसो मनीषिणम।
11 अथव० 2 2 3 समुद्र आसा सदन च आहुयत सद्य आ च परा च यन्ति।
12 तदव 2 2 5 ताभ्या ग धवपत्नीभ्योऽप्सराभ्योऽकर नम।
13 वा० स० 30 8 गन्धर्वाप्सरोभ्यो व्रात्यम।
श० ब्रा० 11 5 1 4 ता अप्सरस आतयो भूत्वा परि पुप्लुविर।

इसके अतिरिक्त न्यग्रोध, अश्वत्थ, उदुम्बर तथा प्लक्ष वक्षो पर भी इनका निवास बताया गया है।[1] इनका प्रणय सुख गन्धर्व ही नही अपितु मनुष्य भी प्राप्त करते है।[2]

'रामायण' म अप्सराओ के विषय म रोचक तथ्य मिलत हैं। समुद्र मन्थन के समय छह करोड अप्सराए उत्पन हुइ, जिन्ह देवताओ तथा असुरो ने ग्रहण नही किया अत य सामान्य मानी गइ।[3] मन्थन करत समय ये 'अप' क रस म उत्पन्न हुइ, जिस कारण इन्ह 'अप्सरस' कहत हैं।[4] इन्ह प्रसन्नता के अवसर पर नत्य करते दिखाया गया है। इन अवसरो मे जन्मोत्सव,[5] विवाहोत्सव[6] तथा राज्याभिषेक[7] प्रमुख हैं। इसी प्रकार अहल्या की शापविमुक्ति,[8] इन्द्रजित के वध[9] तथा इन्द्र के रावण म युद्ध पर अप्सराओ ने उत्सव मनाया।[10] जब लवणासुर के प्रहार से शत्रुघ्न मूछित होत हैं तो उनम हाहाकार मच जाता है।[11]

रामायण म इनके निवास तथा क्रीडा स्थल के भी सकत मिलत हैं। नन्दन कानन म इनका विशेष क्रीडा स्थल है[12] जहा से महर्षि भरद्वाज न इनका आह्वान किया था।[13] सुदर्शन सरोवर[14] कैलास पवत मन्दाकिनी तट[15] तथा कुबेर भवन के निकट अन्य सरोवर म[16] ये जल क्रीडा के लिए उपस्थित होती हैं। रावण समुद्र के तटवर्ती प्रदेश म दिव्यमालाओ और पुष्पमालाओ स सुशोभित अप्सराओ को देखता है।[17] क्षीरोद-सागर म इनका नित्य निवास है।[18] कुछ स्थलो

---

1 अथव० 4 37 4 यत्राश्वत्था न्यग्रोधा महावक्षा शिखण्डिन ।
तत्परेताप्सरस प्रतिबुद्धा अभूतन ॥
तै० स० 3 4 8 4 नयग्रोध औदुम्बर आश्वत्थ प्लाक्ष इतीध्मो भवत्येते व गन्धर्वाप्सरसा गहा ।

2 श० ब्रा० 13 4 3 7 8

3 रा० 1 44 18 20

4 तदेव 1 44 18 अप्सु निर्मन्थनादेव रसात्तस्माद्वरास्त्रिय ।
उत्पेतुमनुजश्रेष्ठ तस्मादप्सरसोऽभवन ॥

5 तदेव 1 18 17 (म० वि०)। 6 तदेव 1 72 25। 7 तदेव 6 116 62

8 तदेव 1 49 19 (म० वि०)। 9 तदेव 6 48 37। 10 तदेव 7 28 1

11 तदेव 7 61 13। 12 तदेव 1 15 23 (म० वि०)

13 तदव 2 85 14, 2 85 23 2 85 42

14 तदेव 4 39 41। 15 तदेव 4 42 21। 16 तदेव 7 11 35

17 रा० 3 33 16 दिव्याभरणमाल्याभिर्दिव्यरूपाभिरावतम।
क्रीडारतिविधिज्ञाभिरप्सरसोभि सहस्रश ।

18 तदव 4 45 14 क्षीरोद सागर चव नित्यमप्सरसालयम् ।

पर प्राप्त वणनानुसार ये युद्ध देखन भी जाती हा। 'रामायण म ये राम परशुराम[1], राम रावण[2] तथा शत्रुघ्न लवणासुर[3] युद्ध देखन जाती है।

अप्सराए ऋषियो के तप में विघ्न उपस्थित करने के लिए प्रस्तुत होती हैं। कुछ स्थानो पर ये ऋषियो के भवनो में भी निवास करती वर्णित है। देवो द्वारा नियुक्त पाच अप्सराए माण्डकर्णि को मोहित करके उसके सरोवर के भीतर बने निवास में प्रवश करती हैं।[4] तपस्या में विघ्न डालने पर पुलस्त्य मुनि अप्सराओ से क्रुद्ध हुए तथा उनके शाप दने के भय स पुन इनके आश्रम म व कभी नही आइ।[5] इन्द्र ने विश्वामित्र के तपोभग के लिए मेनका[6] तथा रम्भा नामक अप्सरा[7] को भेजा था।

अप्सराए भी देवो की भाति विष्णु का स्तवन करती हैं।[8] जब राम का अतिम समय आया ता ये सरयू के तट पर बडी सख्या में उपस्थित हुइ।[9] इन्होने वानर रूप में अनक देवो को उत्पन्न किया जिन्होने रावण से युद्ध किया था।[10] कुबेर के भवन म इनकी ध्वनि मदव सुनाई पडती थी।[11]

उवशी—'ऋग्वेद में उवशी को 'अप्सरा माना गया है। यह बात इस निर्देश से स्पष्ट होती है कि वसिष्ठ को एक मन्त्र में उवशी का पुत्र कहा गया है[12] अन्य मन्त्र में अप्सरा का[13] और एक सूक्त में पुरूरवा उवशी का वार्तालाप है।[14] उसे अन्तरिक्ष म व्याप्त तथा लोको में विचरने वाली कहा गया है।[15] शतपथ ब्राह्मण में भी उवशी का उल्लेख 'ऋग्वेद के समान अप्सरा के रूप में तथा पुरूरवा की पत्नी के रूप में हुआ है। यहा उवशी के वियाग में त्रस्त पुरूरवा को अग्निहोत्र सम्पादन की ऐसी विधि भी बताई जाती है जिससे मनुष्य भी गन्धव बन सकता है।[16]

---

1 तदेव 1 75 10। 2 तदव 6 107 51 (नि० सा०)

3 तदेव 7 61 13। 4 तदेव 3 10 14 18। 5 तदव 7 2 9 14

6 तदव 1 62 8। 7 तदेव 1 63

8 रा० 1 15 32 (म० वि०), 7 100 14

9 तदेव 7 100 7। 10 तदव 1 16 5 8। 11 तदेव 7 26 9(नि०सा०)

12 ऋ० 7 33 11 उतासि मत्रावरुणो वसिष्ठोवश्या ब्रह्मन मनसोऽधिजात।

13 तदव 7 33 12 अप्सरस परिजज्ञे वसिष्ठ। 14 तदेव 10 95

15 तदेव 10 95 10 जनिष्टा अपो नय सुजात प्रोवशी तिरत दीघमायु।

10 95 17 अन्तरिक्षप्रा रजसो विमानीमुप शिक्षाम्युवशी वसिष्ठ।

10 139 5 विश्वावसुरभि तन्नो गृणातु दिव्यो गन्धर्वो रजसो विमान।

16 श० ब्रा० 3 4 1 22 उवशी वा अप्सरा पुरूरवा पतिरथ यत्तस्मा मिथु नादजायत तदायु।

11 5 1 1 उवशी हाप्सरा। पुरूरवसमतु चकमे।

'रामायण मे उवशी को परमाप्सरा कहा गया है।[1] यहा उवशी से वसिष्ठ तथा अगस्त्य की उत्पत्ति वर्णित है।[2] यहा वरुण को पहले वरण करने के कारण मित्र के शाप से उवशी मत्यलोक में बुध के पुत्र काशीराज पुरुरवा की पत्नी हो गइ। शाप का क्षय होने पर ये पुन इन्द्रसभा में चली गइ।[3] एक अन्य स्थल पर रावण पुरुरवा को छोडकर उवशी के पश्चाताप की सूचना देता है।[4] यास्क ने उवशी का निवचन देते हुए इसे √ वश धातु से निष्पन्न माना है।[5] चमकने के कारण उन्होंने इसे अन्तरिक्ष स्थानी देवो में गिनवाया है।[6]

मेनका—'वाजसनयि-संहिता म अन्य अप्सराओ के साथ मेनका का भी नाम आया है। शतपथ-ब्राह्मण म भी इसे अप्सरा कहा गया है।[8] ये मेन की पुत्री है।[9] 'रामायण म मेनका परमाप्सरा है।[10] जब ये पुष्कर-क्षेत्र म आइ तो विश्वामित्र इसके अप्रतिम सौन्दय पर आसक्त हो गए।[11] विश्वामित्र के साथ वास करते हुए इसने दस वष व्यतीत किए।[12] जब विश्वामित्र को आभास हुआ कि मेनका की उपस्थिति से उनकी तपस्या म विघ्न पड रहा है तब इन्होंने इसे विदा कर दिया।[13] तारा लक्ष्मण को बतलाती है कि विश्वामित्र न मेनका के साथ संसक्त होकर दस वर्षों को एक दिन माना था।[14]

8 गन्धव

अप्सराओ के साथ एक विशेष प्रकार के पुरुषो का उल्लेख हुआ है। ऋग्वेद'

---

1 रा० 7 56 13 उवशी परमाप्सरा। (नि० सा०)

2 तदेव 7 56, 7 57 (नि० सा०) 3 तदेव 7 56 22 29 (नि० सा०)

4 तदेव 3 46 18 प्रत्याख्याय हि मा भीरु पश्चाताप गमिष्यसि।
चरणाभिहतयेव पुरुरवसमुवशी॥

5 नि० 5 13 उवश्यप्सरा उवभ्यश्नुते उरुभ्यामश्नुत उरुर्वा वशोऽस्या।

6 तदेव 2 3

7 वा० स० 15 16 मेनका च सहजन्या चाप्सरसौ।

8 श० ब्रा० 8 6 1 17 मेनका च सहजन्या चाप्सरसाविति दिक्।

9 तदेव 8 6 1 1 वषणाश्वस्य ह मेनस्य मेनका नाम दुहिता।

10 रा० 1 62 2 मेनका परमाप्सरा।

11 तदेव 1 62 3 6 12 तदेव 1 62 7 8 13 तदेव 1 62 9 14

14 तदेव 4 34 7 घृताच्या किल ससक्तो दशवर्षाणि लक्ष्मण।
अहोऽमन्यत धर्मात्मा विश्वामित्रो महामुनि॥
(ति०) घृताचीति मेनकाया नामान्तरम्।
(भू०) घृताची शब्देन मेनकवोच्यते।

मे गन्धव का स्वरूप अस्पष्ट है। सम्भवत 'ऋग्वेद' म गन्धर्वों का आवास आकाश जसे उच्च लोक मे माना गया है।[1] यह आवास वायु के अति गभीर लोक म पाया जाता है, जो दिव्य है द्युलोक के नाक पर विराजमान है। उनका आवास स्वग म है,[3] भाग्यशाली व्यक्ति ही उनके साथ निवास करत हैं।[4] ये अप्सराओ के प्रेमी हैं। इनका साहचय विवाह जैसा है। ऋग्वेद का गन्धव सुरभिवासित वसन पहनता है।[6] अथववेद' के अनुसार पथिवी की गन्ध गन्धर्वों तक पहुचती है।[7] इस आधार पर 'मक्डानल गन्धव शब्द की व्युत्पत्ति गन्ध से मानते है।[8]

रामायण म इनका निवास पश्चिमी समुद्र म परियात्र पवत पर बताया है, जहा सभी प्रकार के मनुष्यो के समान चौबिस करोड गन्धव निवास करते थे।[9] कुछ गन्धव महेन्द्रगिरि[10] तथा अरिष्ट पवत पर रहत थे।[11] सिन्धु-नदी के तटो पर तीन करोड गन्धव[12] तथा कुछ मन्दाकिनी तट पर रहते थे।[13] सोमाश्रम[14] तथा उत्तर-कुरु भी इनसे सेवित था।[15] रामायण म एक गन्धव देश का भी उल्लख हुआ है।[16] ये अन्तरिक्ष म विचरण करते हैं।[17] इनकी तुलना आकाशरूपी समुद्र स कमला से की गई है।[18]

प्रसन्नता के अवसर पर इनके गायन का उल्लेख मिलता है। राम के जन्मोत्सव,[19] विवाहोत्सव[20] तथा अभिषेकोत्सव[21] पर इन्होने अप्सराओ के साथ

---

1 ऋ० 8 77 5 अभि गन्धवमतृणदबुध्नेषु रज स्वा। इन्द्रो ब्रह्मभ्य इद्वृधे।
2 तदव 10 123 7 ऊर्ध्वो ग धर्वो अधिनाक अस्थात। एव नमस्योविश्वीऽय।
3 तदव 2 2 1 दिव्यो गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक।
4 अथव० 4 34 3 विष्टारिणमान्न य पचति। ॥ गन्धर्वैमदत सोम्यमि।
5 ऋ० 10 123 5 अप्सरा जारमुप सिष्मियाणा योषा बिभर्ति परमे व्योमन।
6 तदव 10 123 7 वसानो अत्क सुरभि दशेक स्वर्ण नाम जनत प्रियाणि।
7 अथव 12 1 23 यस्त गन्ध पथिवी सबभूव।
य गन्धर्वा अप्सरसश्च भेजिरे।
8 मक्डानल, पूर्वोद्धृत ग्रन्थ पृष्ठ 357
9 रा० 4 41 19 कोटयस्तत्र चतुर्विंशद्गन्धर्वाणा तपस्विनाम।
10 तदव 5 1 5। 11 तदेव 5 54 12। 12 तदेव 7 90 10 12
13 तदेव 7 91 1 9। 14 तदेव 4 42 14। 15 तदव 4 42 49
16 तदव 7 90 10-11
17 तदेव 5 1 162 महर्षिगन्धवनागयक्षसमाकुल जगाम वायुमार्गे।
18 तदव 5 55 3 गन्धवप्रबुद्धकमलोत्पलम।
19 तदव 1 18 17 (म०वि)। 20 तदव 1 72 25। 21 तदव 6 116 62

गायन किया था। भरद्वाज के आश्रम पर इनके गायन से यह आस्था दृढ हो जाती है कि जिस प्रकार अप्सराएं नृत्य मे प्रवीण होती हैं, उसी प्रकार गन्धर्व भी गायन मे निपुण होते हैं।[1] ये भी अप्सराओ के नृत्य के साथ गायन करते हैं।[2] अप्सराओ के समान ही इनके विहार स्थल भी मिलते है जिनमे नन्दन-कानन[3], कुंज,[4] विन्ध्य पर्वत[5] तथा मन्दाकिनी-तट[6] का उल्लेख है।

देवो तथा अप्सराओ की भाति ये भी रावण के अत्याचार से पीडित थे।[7] इसीलिए राक्षसो के विनाश म इनकी भी रुचि थी। ये बहुत से राक्षसो के साथ हुए युद्ध को देखने के लिए उपस्थित होते थे। यदि राक्षस की पराजय होती तो इन्हे प्रसन्नता होती थी तब ये पुष्पवर्षा करते थे।[8] राक्षसो की विजय पर इनमे हाहाकार मच जाता था।[9] इस प्रकार के किसी भी दृश्य को देखने के लिए गन्धर्व विमानो द्वारा उपस्थित होते थे।[10]

बहुत से स्थलो पर इनके द्वारा ब्रह्मा[11] तथा विष्णु की स्तुति[12] का उल्लेख मिलता है। गन्धर्व भी युद्ध म प्रवीण होते है, परन्तु देवो से इनका स्तर निम्न है।[13] रावण को यह वर प्राप्त था कि वह किसी गन्धर्व के हाथो भी नही मारा जाएगा।[14] गन्धर्व रावण को युद्ध म पराजित नही कर सके।[15]

गगावतरण के समय गन्धर्व भी उपस्थित थे।[16] गगा के जल का स्पर्श करने के पश्चात[17] अप्सराओ के समान ये भी चल रहे थे।[18] अहल्या की शाप मुक्ति इनके लिए भी प्रसन्नता-कारक रही।[19] ये देवो के समान यज्ञ मे भी उपस्थित होते हैं।[20] प्रतिज्ञा म इन्हे साक्षी रखा जाता है।[21] विश्वामित्र ने जब वसिष्ठ पर प्रहार करने के लिए ब्रह्मास्त्र का सधान किया तो ये अत्यन्त भयभीत हुए।[22]

महर्षियो से भी इनका सम्पर्क होता था। अगस्त्य[23] तथा वसिष्ठ[24] के आश्रम

1 तदेव 2 85 14। 2 तदेव 2 85 23 प्रजगुर्देवगन्धर्वा वीणा प्रमुमुचु स्वरान।
3 रा० 1 15 23 (म० वि०)
4 तदेव 3 33 15। 5 तदेव 7 31 15। 6 तदेव 7 11 35
7 तदेव 1 14 6 11, 1 14 19 20
8 तदेव 3 23 17 28, 6 55 125 6 77 28, 6 78 37, 6 59 18
9 तदेव 7 61 16 17। 10 तदेव 6 100 1 4
11 तदेव 1 14 6 11 1 38 23 24। 12 तदेव 1 14 32 (म० वि०)
13 तदेव 7 91 2 9
14 तदेव 1 14 13, 3 32 18 19। 15 तदेव 3 30 6
16 रा० 1 42 8। 17 तदेव 1 42 17। 18 तदेव 1 42 22
19 तदेव 1 48 19। 20 तदेव 1 14 4। 21 तदेव 2 10 22
22 तदेव 1 55 15। 23 तदेव 3 10 87। 24 तदेव 1 50 24

पर इनकी उपस्थिति से यह स्पष्ट है। ब्रह्मा के पास जाकर ये विश्वामित्र का मनोरथपूर्ण करने की प्राथना करते हैं।[1]

यहा गन्धर्व-कन्याओ - गन्धर्व स्त्रियो[3] तथा बालका[4] का भी उल्लेख प्राप्त होता है।

रामायणगत एक आख्यान के अनुसार भरत ने केकयराज युधाजित और बडी सेना लेकर गन्धर्व नगर पर आक्रमण किया। सात दिना तक युद्ध चलता रहा। इसके बाद क्रुद्ध होकर भरत ने गन्धर्वो पर संवत नामक एक भयकर अस्त्र छोडा और तीन कोटि गन्धर्वो का क्षण भर म वध कर दिया। इसके बाद भरत ने अपने दो पुत्रो के लिए पाच वर्षो मे दो अत्यन्त प्रसिद्ध नगरो की स्थापना की। तक्ष के लिए तक्षशिला तथा पुष्कल के लिए पुष्कलावत नामक नगर बसाया।[5] ये दोनो नगर सिंधु नदी के दोनो तटो पर बसे थे।[6]

9 असुर, राक्षस तथा पिशाच

असुर—देवो के साथ कुटिलता रखने वाले प्राणी वदो म वर्णित हैं। सब प्रथम इनमे असुरो का स्थान आता है। 'ऋग्वेद मे इन्द्र स कहा गया है कि वे असुरो का अपनादन करें। दशम मण्डल म असुरो स देवो का विरोध वद्धि पर है। यहा दोनो के युद्ध म देव असुरो का वध करत हैं।[8] पुरानी वदिक धारणा क अनुसार एक दवता का एक ही राक्षस के साथ युद्ध होना उचित था जैसा कि इन्द्र और वृत्र का। बाद मे यह धारणा दव सामान्य और असुर सामान्य क युद्ध मे परिवर्तित हो गई और इसम दवो और असुरा का दो प्रतिद्वन्द्वी दलो म एक दूसरे के प्रतिकूल खडा कर दिया। ब्राह्मण ग्रन्थो म यह धारणा वद्धि पर थी।[9] 'तत्तिरीय-सहिता मे देवो का सम्बन्ध दिन स तथा असुरो का रात्रि स बताया गया है, जबकि ये दोनो प्रजापति की सन्तान है।[10] 'शतपथ ब्राह्मण के अनुसार असुरो का सम्बन्ध अन्धकार स है।[11] प्रारम्भ में ये देवो के समान ही थ। सम्भवत

---

1 तदव 1 64 9 18। 2 तदव 1 16 5। 3 तदेव 7 31 16

4 तदव 7 98 19। 5 रा० 7 90 9।

6 तदेव 7 90 17 सिन्धोरुभयत पार्श्वे देश परमशोभन।

7 ऋ० 8 96 9 अनायुधासो असुरा अदेवाश्चक्रेण ता अप वप ऋजीषिन।

8 तदेव 10 157 4 हत्वाय देवा असुरान यदायन दवा देवत्वमभिरक्षमाणा।

9 मक्डानल, वदिक देवशास्त्र पष्ठ 405

10 तै० स० 1 5 9 2 अहर्देवानामासीद्रात्रिरसुराणाम।

11 श० ब्रा० 2 4 2 5 अथ हैन शश्वदप्यसुरा उपमदुरित्याहु।
तम्यस्तमश्च माया च प्रददौ॥

दत्य स्वभाव वाले प्राणिया को कभी-कभी देव कहकर बुलाया गया है।[1] 'अथव-वेद' और उससे बाद के साहित्य में असुर शब्द का प्रयोग राक्षस के अथ में भी प्रयोग होने लगा। 'तत्तिरीय आरण्यक' के अनुसार देव और असुर दोना ही स्वग प्राप्ति के लिए यन करने लगे। मूख असुर मोहवश शास्त्रविहित विधि को त्याग कर अप्रसत-यन करने लगे। देवा शास्त्रविहित विधि से प्रसत-यन करके स्वग प्राप्त किया और असुर अप्रसत-यन से पराजित हुए।[2] यज्ञोपवीत धारण करके किया गया यन ही प्रसत यन है।[3]

'रामायण' के अनुसार देवा के समान असुर भी प्रजापति कश्यप की सन्तान हैं।[4] ये दिति के पुत्र होने के कारण 'दत्य' तथा क्षीरसागर मन्थन के समय निकली सुरा को ग्रहण न करने के कारण 'असुर' कहलाए।[5] इन्होने मन्थन से उत्पन्न अमत की प्राप्ति के लिए देवा से युद्ध किया, जिसमें इनकी पराजय हुई।[6] ये कभी पथिवी के अधिपति रहे।[7] देवा से त्रस्त होकर ये भगु-पत्नी की शरण में जाकर रहने लगे।[8] राजा इल के राज्य के समय ये उनका आदर करते थे।[9] कुछ स्थला पर इनका भी आह्वान देवा के समान किया गया है।[10] 'रामायण' मे यह कहा गया है कि इनकी सृष्टि भी प्रजापति ने की है। सुरो का पक्ष धम है जबकि असुरा एव राक्षसा का पक्ष अधम है।[11]

रावण असुरो को भी पीडित करता था।[12] इसलिए व भी राम की विजय की कामना करते हैं।[13] वे हनुमान के प्रहार से रावण के मूर्छित होने पर प्रसन्न होते हैं।[14] रामायण के अनुसार असुरा का निवास पाताल था। इन्द्र ने मैनाक

1 त० स० 3 5 4 1 यनहनो व देवा यनमुष सन्ति।
अथव 3 15 5 त मे भूयो भवतु मा कनीयोऽग्न सातघ्नो देवान्हविषा निषेध।
2 त० आ० 2 1 1
3 तदेव 2 1 1 प्रसतो ह व यनोपवीतिना यन।
4 रा० 3 13 15 दितिस्त्वजनयत्पुत्रा दैत्यास्तात यशस्विन।
5 तदव 1 44 22 23 दिते पुत्रान ता राम जगहुवरुणात्मजाम।
असुरास्तेन दतया ॥
6 तदेव 1 44 27, 3 33 42, 4 57 13, 2 25 34 (म० वि०)
7 तदेव 3 13 15 तपामिय वसुमती पुरासीत्सवनार्णवा।
8 रा० 7 50 11। 9 तदव 7 78 5 6। 10 तदव 2 25 16 (म० वि०)
11 तदेव 6 26 12 13 असजद्भगवान्पक्षौ द्वावेव पितामह।
सुराणामसुराणा च धर्माधर्मौ तदाश्रयौ॥
धर्मो हि श्रूयते पक्ष अमराणा महात्मनाम्।
अधर्मो रक्षसा पक्षो ह्यसुराणा च राक्षस॥
12 तदेव 1 14 9। 13 तदव 6 91 5। 14 तदव 6 47 110

पर्वत को पाताल से आने वाले असुर-समूहों को रोकने के लिए परिध रूप में स्थापित किया था, जिससे पाताल का द्वार आवृत्त हो जाए। एक स्थल पर इक्षु नामक समुद्र ब्रह्मा में आज्ञप्त महाकाय असुरों का निवास बताया गया है। यहां असुर छाया से नात प्राणियों का भक्षण करते हैं।[2] यहां असुर शब्द का प्रयोग राक्षस अर्थ में है।

दिति—'ऋग्वेद' में 'अदिति' के साथ 'दिति' का नाम भी मिलता है। यहां मित्र तथा वरुण रथ पर से अदिति तथा दिति को देखते हैं।[3] परवर्ती संहिताओं में भी 'दिति' का देवी के रूप में उल्लेख मिलता है।[4] 'अथर्ववेद' में दिति के पुत्रों का उल्लेख है।[5] ये दैत्य हैं, जो आगे चलकर देवों के विरोधी बने।

'रामायण' में दिति भी दक्ष की पुत्री,[6] प्रजापति कश्यप की पत्नी[7] तथा दैत्यों की माता है।[8] जब 'दिति' के पुत्र देवों से युद्ध करके विनाश को प्राप्त होते हैं[9] तो वह ऐसे पुत्र की कामना से तप करती है, जो इन्द्र का वध कर सके।[10] इन्द्र इसे अपवित्र अवस्था में पाकर गर्भ के सात खण्ड कर देते हैं जो आगे चलकर मरुद्गणों के स्थानपाल बनते हैं।[11] इस प्रकार दिति न केवल दैत्यों की माता है बल्कि मरुत मारुत की माता भी है जो तीनों लोकों तथा चारों दिशाओं में इन्द्र की आज्ञा से भ्रमण करते हैं।

नमुचि— रामायण में नमुचि नामक दैत्य को इन्द्र द्वारा फेन से मारने का संकेत है।[12] वेदों में इसका बहुधा उल्लेख हुआ है।[13] इस युद्ध में इन्द्र अपने सर्वाधिक प्रसिद्ध आयुध वज्र का प्रयोग नहीं करते अपितु अपने शत्रु का सिर मरोड़ते है,[14] अथवा मथते हैं।[15] यहां जल फेन से मारने का उल्लेख भी है।[16] 'रामायण' के

---

1 तदेव 5 1 80 82

2 तदेव 4 39 34 तत्रासुरा महाकायाश्छायां गृह्णन्ति नित्यश ।

3 ऋ० 5 62 8 आ रोहथो वरुण मित्र गर्तमतश्चक्षाथे अदिति दिति च।

4 अथर्व० 15 18 4 अहोरात्रे नासिके दितिश्चादितिश्च शीर्षकपाले सम्वत्सर शिर ।

5 तदेव 7 7 1 दित पुत्राणामदितेरकारिषमव देवानां बृहतामनर्मणाम ।

6 रा० 3 13 10। 7 तदेव 3-13 11। 8 तदेव 1 44 14

9 तदेव 1 44 25 47। 10 तदेव 1 45 1 4

11 रा० 1 46। 12 तदेव 3 29 28 फेनेन नमुचिर्यथा।

13 ऋ० 1 53 7, 6 20 6, 2 14 5, 7 19 5

14 तदेव 5 30 7 अत्रा दासस्य नमुचे शिरो यदवर्तयो मनवे गातुमिच्छन ।

15 तदेव 5 30 8 यादिदिन्द्र शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन।

16 तदेव 8 14 13 अपा फेनेन नमुचे शिर इन्द्रोदवर्तय ।
विश्वा यदजय स्पृध ।

अनुसार इन्द्र पर नमुचि ने आक्रमण किया।[1] उनका द्वन्द्व युद्ध हुआ।[2] इन्द्र नमुचि के पीछे वज्र लेकर भी दौडे थे।[3]

वल—'रामायण' म वल नामक दत्य का भी इन्द्र के वज्र से मारे जाने का उल्लेख है।[4] 'ऋग्वेद' म इन्द्र पणियो से गायें छीनते समय विदीर्ण कर डालते हैं। 'तत्तिरीय सहिता' मे बल म बिल को अनावत करके उसम परिवेष्टित गायो को निकालते हैं।[6] ऐसे स्थलो पर इसे √व आवरणे से ही माना गया है। इसका काय भी जल का घेरना है।[7] 'पञ्चविंश ब्राह्मण' के अनुसार असुरो का बल एक पाषाण खण्ड से पिहित है।[8] इसके वध के कारण इन्द्र के लिए वलरुज विशेषण प्रयुक्त होता है।

वत्र—'रामायण' म इन्द्र के शत्रु वृत्र का उल्लेख है जो वदिक काल से चला आया है। इसके वध क लिए इन्द्र जन्म लेत है और अपूव्य रूप मे बढत हैं।[9] इसी से इन्द्र का एक विशेषण वत्रहा है[10]। वत्र जल पर सोता है[11] अथवा जल को घेरता है।[12] इन्द्र उस मारकर जलो को प्रवाहित करत है।[13]

नरुक्तो ने वत्र के चार निवचन दिए हैं। वतमान रहने के कारण वृत्र का

---

1 रा० 3 27 3 आससाद खरो राम नमुचिर्वासव यथा।

2 तदेव 4 11 22 द्वन्द्वयुद्ध स महददातु नमुचेरिव वासव ।

3 तदेव 6 44 17 पुराहि नमुचि सख्य वज्रेणेव पुरन्दर ।

4 रा० 3 29 28 वलो वज्राशनि हत ।

5 ऋ० 10 67 6 इन्द्रो वल रक्षितार दुघाना करेणेव वि चकर्ता रवण।
10 68 10, 10 67 6, 1 52 5 6 18 5

6 त० स० 2 1 5 1 इन्द्रो वलस्य विलमपौर्णोत स य उत्तम पशुरासीत्त पृष्ठ प्रतिसगह्योदकखिदत त सहस्र पशवोऽनूदायन्।

7 ऋ० 2 14 3 अध्वयवो यो दभीक जघान या गा उदाजदप हि वल व ।

8 प० ब्रा० 21 7 1 असुराणा व वलस्तमसा प्रावतो श्मापिधानश्चासीत।

9 ऋ० 8 89 5 यज जायथा अपूव्य मघवन् वत्रहत्याय।
10 55 7 एभिददे वष्ण्या पौंस्यानि येभिरौक्षद् वत्रहत्याय वज्री।

10 तदेव 8 89 3 वत्रहाति वत्रहा शतक्रतुवज्रेण शतपवणा।

11 तदव 1 121 11 त्व वत्रमाशयान सिरासु महो वज्रेण सिष्वपो वराहुम्।
2 11 9 इन्द्रो मह्रा सिधुमाशयान मायाविन वत्रमस्फुरन्नि ।

12 तदेव 1 52 6 अपो वत्वी रजसो बुध्नमाशयत।

13 तदव 1 80 5 इन्द्रो वत्रस्य दोधत सानु वज्रेण हीळित ।
अभिक्रम्याव जिघ्नत प सर्माय चोदयन ।

वत्र कहा गया है (√वत् धातु) से[1] अथवा आकाश म बढ़ने क कारण यह वत्र है (√वृध) धातु से ।[2] अथवा आकाश म आवरण क कारण यह वत्र है (√व धातु) से[3] यह शरीर की वद्धि से जल क स्रोता का रोकता है ।[4] ऋग्वेद' म त्वष्टा इन्द्र के वत्रवध काय म सहायक हैं[5] किंतु शतपथ ब्राह्मण' म त्वष्टा इन्द्र का शत्रु है, वत्र उससे उत्पन्न हुआ । उसक द्वारा प्रयुक्त मन्त्र म उच्चारण की गलती से वृत्र का विनाश हुआ ।[6]

'रामायण म वत्रवध एक कथानक बन गया है। 'ऋग्वेद' म वत्र-वध म विष्णु को इन्द्र का सहायक कहा गया है ।[7] रामायण क अनुसार विष्णु का एक अश इन्द्र म तथा एक अश वज्र म प्रविष्ट हुआ ।[8] यहा वत्रासुर को लोकमान्य धमज्ञ कृतज्ञ, बुद्धिमान तथा दक्ष कहा है ।[9] यह राजा क रूप म धमपूवक पृथिवी का रक्षण किया करता था । वह अपने कल्याण की कामना से विषयो का छोड उग्र तप करने लगा । देव उसके तप से व्यग्र हुए । इन्द्र अपने वज्र स तपारत तथा निर पराध वत्र को मारते हैं । इस वध के उपरात इन्द्र ब्रह्महत्या से ग्रस्त होकर अध कारमय प्रदेश म चल गए ।[10] एक स्थल पर वत्रवध से इन्द्र को मगल प्राप्त होने[11] तथा एक स्थल पर पाप का भागी होने का सकेत है ।[12] एक अन्य स्थल पर वज्र से मारने का उल्लेख है ।[13]

---

1 नि० 2 17 यदवतत तद वत्रस्य वत्रत्वम ।
तुलनीय श० ब्रा० 1 6 3 9 स यदवतमान समभवत्तस्मात् वत्र ।
2 नि० 2 17 यदवधत तद वत्रस्य वत्रत्वम ।
3 तदेव 2 17 यदवणोत् तद वृत्रस्य वत्रत्वम् ।
4 तदेव 2 17 पर दुगवत्ति ।
5 ऋ० 1 32 2 त्वष्टा स्म वज्र स्वय ततक्ष ।
6 श० ब्रा० 1 6 3 1 17
7 ऋ० 6 20 2 अहि यद वत्रमपो वव्रिवास हन्नजीषिन् विष्णुना सचान ।
8 रा० 7 85 6 9
9 तदेव 7 75 4 वत्रो नाम महानासीद दतेया लोकसमत ।
7 75 6 धमज्ञश्च कृतज्ञश्च बुद्धया च परिनिष्ठित ।
10 तदेव 7 75 77
11 तदेव 2 22 13 यन्मगल सहस्राक्षे सवदेवनमस्कृत ।
वत्रनाशे समभवत्तत्ते भवतु मगलम ॥
12 तदेव 4 24 13 प्राप्तोऽस्मि पाप्मानमिद वयस्य भ्रातुवधात्वाष्ट्रवधादिवेन्द्र ।
(म० वि०)
13 तदव 7 29 28 स वत्र इव वज्रेण ।

राक्षस—मनुष्यो की सहज शत्रुजाति का नाम राक्षस है। इनकी आकृति किसी मासभक्षी पशु के समान होती है।[1] ये गर्भवती[2] एव प्रसूता स्त्रियो[3] को हानि पहुचाने की ताक मे रहते हैं। ये पक्षी बनकर आकाश मे उडते हैं।[4]

'रामायण' मे अगस्त्य राक्षसो की उत्पत्ति के विषय मे कहते है[5] कि प्रजापति ब्रह्मा ने जल की सृष्टि के उपरात उसकी रक्षा के लिए कुछ प्राणियो की सृष्टि की, इनमे से जिन्होने 'रक्षाम' कहा वे राक्षस कहलाए।[6] 'रामायण' से ज्ञात होता है कि रावण ने अजेय होने का वर प्राप्त करके कुबेर से लका छीनी थी।[7] रावण सभी राजाओ को चुनौती देता रहा— 'या तो युद्ध करो या अपनी हार स्वीकार करो'।[7] दक्षिण दिशा राक्षसो से सेवित थी। अगस्त्य ऋषि ने वहा जाकर उस दिशा को राक्षसो के आतक से मुक्त किया।[8] मन्दाकिनी से पम्पा तक के क्षेत्र मे राक्षसो का आतक था।[9] राक्षसो से आर्यजाति की शत्रुता चिरकाल से थी। लका युद्ध के पश्चात राक्षसो का महत्त्व समाप्त प्राय हो गया।[10] राक्षसो के रग रूप के विषय म विचित्र धारणा है। राक्षस काली मोटी देह, बिखरे-केश दीर्घ जिह्वा, पर्वताकार, डीलडौल लाल आख और तीक्ष्ण नखो वाले विकराल प्राणी हैं। कुछ के मस्तक रहित धड, छाती मे आँख और पेट म मुख होते थे।[11] राक्षसिया भी कुछ इसी प्रकार विकराल होती थी। सीता का पहरा देने वाली राक्षसिया अत्यत भयकर महाकाय एव कुरूप थी।[1] लका म विचरण करते हुए हनुमान ने सुरूप एव कुरूप दोनो प्रकार के प्राणी देखे।[13] ताटका अयोमुखी तथा सुरसा का रूप

---

1 ऋ० 7 104 20 22। 2 तदेव 8 6

3 तदेव 10 162 5 यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते।
प्रजा यस्त जिघासति तमितो नाशयामसि ॥

4 तदेव 7 104 18 वयो ये भूत्वी पतयन्ति नक्तभिर्ये वा रिपो दधिरे देवे अध्वरे। 5 रा० 7 4 9 13

6 तदेव 7 4 13 रक्षाम इति यरुक्त राक्षसास्ते भवन्तु व ।

7 तदेव 7 19 2 युद्ध म दीयतामिति। निर्जितो स्मेति वा ब्रूत । 7 11 1 9

8 तदेव 3 10 79 दक्षिणा दिक्कृता यन शरण्या पुण्यकर्मणा।

9 तदेव 3 5 16 पम्पादीनिवासामनुम दाकिनीमपि।
चित्रकूटालयाना च क्रियते कदन महत्।

10 शान्तिकुमार नानूराम व्यास रामायणकालीन समाज, पृष्ठ 30

11 रा० 3 65 16-19

12 तदेव 5 21 ■ राक्षस्यो भीमरूपास्ता । 5 22 I राक्षस्यो विकृतानना ।

13 तदेव 5 2 20 विरूपान्बहुरूपाश्च सुरूपाश्च सुवर्चस ।

भयानक था।[1] कुम्भकर्ण को विकृतानन पर्वताकार तथा महाकाय कहा गया है।[2] मन्दोदरी सुन्दर थी।[3] 'उत्तर काण्ड' को छोडकर रावण का एक मुख तथा दो भुजाएँ वर्णित हैं।[4] दशमुख की धारणा अवान्तरकालिक है। राक्षसों के विषय में यह धारणा भी थी कि ये छद्मवेषी होते थे। वे सोते समय तथा मृत्यु के समय अपने असली रूप में आ जाते थे। सीताहरण के समय मारीच ने स्वर्ण मृग[5] तथा रावण ने परिव्राजक का रूप धारण किया था।[6] तिलक टीकाकार के अनुसार युद्ध के समय प्राय दस सिर और बीस भुजाएं धारण करता था। मूल पाठ में कई स्थलो पर एक सिर एव दो भुजाएं ही वर्णित है[8], केवल दो स्थलो पर ही उसे दस सिर तथा दो भुजाओं वाला कहा गया है—एक तो सीता के सामने उसने भिक्षुक रूप त्यागा[9] तथा दूसरे तब जब हनुमान को उसके सामने बंदी रूप में प्रस्तुत किया गया।[10] आधुनिक विद्वानों ने रावण के दशशीर्ष तथा बीस भुजाएं रूपकात्मक अर्थ में मानी हैं जिसका उद्देश्य केवल उसे अजेय और अप्रतिम योद्धा बताना था।[11] यहां केवल यही धारणा रह जाती है कि राक्षस छद्मवेषी होते थे, अन्यथा इनका शरीर वास्तव में मनुष्य के समान ही होता था। राम ने वानरों तथा लक्ष्मण, विभीषण और उसके चार अनुयायियों के अतिरिक्त सभी मनुष्यों का निशक वध करने की आज्ञा दी थी।[12] हनुमान् ने मन्दोदरी को सीता समझ लिया था।[13]

राक्षसों में नरमांस भक्षण की प्रवृत्ति मिलती है। इनकी यह प्रवृत्ति इन्हें विकृत एव कुरूप सिद्ध करती है। ताटका का अगस्त्य ऋषि को खाने के लिए

---

1 तदेव 1 23 26, 5 1 135 136 3 65 11 13

2 तदेव ▮ 48 23

3 तदेव 5 8 48 गौरी कनकवर्णाभामिष्टामन्त पुरेश्वरीम।
कपिर्मन्दोदरी तत्र शयाना चारुरूपिणीम॥

4 तदेव 5 8 13 विक्षिप्तौ राक्षसेन्द्रस्य भुजाविन्द्रध्वजोपमौ।
5 8 22 तस्य राक्षसराजस्य निश्चक्राम महामुखम।

5 तदेव 3 40 12 32

6 रा० 3 44 2 3

7 तदेव 5 8 19 बाहू शयनसंस्थितौ—पर तिलक टीका 'अत्र द्विभुजत्व कथनाद्युद्धादिकाले एव विंशतिभुजत्व दशशीर्षत्व चेति बोध्यम ।

8 तदेव 6 40 13(म० वि०)। 9 तदेव 3 47 1 8। 10 तदेव 5 47 6 8

11 सी० वी० वद्य दि रिडिल आफ दि रामायण, पृष्ठ 145 146
शान्तिकुमार नानूराम व्यास, रामायणकालीन समाज, पृष्ठ 11

12 रा० ▮ 28 35 37। 13 तदेव 5 8 49

शूपर्णखा[1], मारीच[2] तथा विराध[3] का मांस से प्रेम इस तथ्य का पोषक है। राक्षस नर नारी दोनों ही नरमांस नररक्त तथा सुरा प्रेमी थे।[4] वे देवों, मनुष्यों तथा ऋषियों के यज्ञ में विघ्न उपस्थित करते थे। मारीच और सुबाहु ने विश्वामित्र की यज्ञवेदि पर रक्त वर्षा की थी।[5] रावण मरुत्त के यज्ञ में आया और उसने ऋषियों का रक्त पीकर अपने आप को परितृप्त किया।[6] राम ने दण्डकारण्य में राक्षसों द्वारा मारे गए ऋषि मुनियों की हड्डियाँ देखी।[7] इन्द्रजित् के वध के पश्चात् देव दानव तथा गन्धर्व यह कहने लगे कि ब्राह्मण अब पृथिवी पर निर्भय होकर विचरण करेंगे।[8] यज्ञभूमि में राक्षसों का प्रवेश सारमेयतुल्य तथा अपवित्र होता था।[9]

राक्षसों का सर्वाधिक वर्णित कार्य स्त्रियों का अपहरण एवं सतीत्वभंग था। रावण के शब्दों में स्त्रियों का बलपूर्वक अपहरण तथा उपभोग राक्षसों का धर्म है।[10] रावण नरहत्या, आश्रम विध्वंस और परस्त्रीहरण के लिए विख्यात था। देवों की दृष्टि में रावण का सर्वाधिक नीच कर्म यही था।[11] वह दश दिशाओं से देवासुर-कन्याओं का अपहरण करता था।[12] उसके द्वारा पुञ्जिकस्थला[13] और रम्भा अप्सरा का सतीत्वभंग[14], वेदवती का स्पर्श[15] तथा सीता का अपहरण[16] रामायण में वर्णित

---

1 रा० 1 24 40 1 2 तदेव 1 24 8 10। 3 तदेव 3 2 5 7

4 तदेव 5 22 39 3 2 12 14, 6 48 26

5 तदेव 1 29 11 आगम्य भीममकाशा रुधिरौघानवासृजन।
1 30 12 ता तेन रुधिरौघेण वेदी वीक्ष्य समुक्षिताम्। (म० वि०)

6 तदेव 7 18 20 तान्भक्षयित्वा तत्रस्थान् महर्षीन्यज्ञमागतान्।
वितृप्तो रुधिरस्तेषाम्

7 तदेव 3 5 15 एहि पश्य शरीराणि मुनीनां भावितात्मनाम्।
हतानां राक्षसैर्घोरैर्बहूनां बहुधा वने॥

8 तन्वैव 6 78 48 विज्वरा शान्तकलुषा ब्राह्मणा विचरन्त्विति।

9 तदेव 7 18 [illegible] रावण प्राविशद्यज्ञ सारमेय इवाशुचि।

10 रा० 5 18 5 स्वधर्मो रक्षसां भीरु सर्वदैव न संशयः।
गमनं वा परस्त्रीणां हरणं सम्प्रमथ्य वा॥

11 तदेव 1 15 7 उत्सादयति लोकांस्त्रीन्स्त्रियश्चाप्युपकर्षति।
तस्मात्तस्य वधो दृष्टो मानुषेभ्यः परन्तप॥

12 तदेव 6 111 53 देवासुरजकन्यानामपहर्तारम् ततस्ततः। 7 24 1 3

13 तदेव 6 31 59। 14 तदेव 7 26 20 40

15 तन्वैव 7 17 27 नि०सा०। 16 तदेव 3 47

हैं। सीता का अपहरण तो उनके विनाश का कारण बना।

राक्षमा का आकाशमाग मे उडना भी रामायण म उल्लिखित है। मारीच तथा सुबाहु आकाशमाग मे विश्वामित्र की यज्ञवेदि पर रक्तवर्षा करत हैं।[1] ताटका आकाशमाग स गमन करती थी।[2] विभीषण भी आकाशमाग स विचरण करता हुआ वर्णित किया गया है।[3]

राक्षसो के इतने निन्दित एव कुत्सित कम होने पर भी उनकी वेदा म आस्था थी। अनक राक्षस-वीर स्वस्त्ययन करके युद्धस्थल म जात थ।[4] हनुमान के अनुसार रावण का तपोजन्य पुण्य सीता के स्पश स भी क्षीण नही हुआ था।[5] मारीच प्रारभिक दुष्कर्मों के पश्चात तपस्वी बन गया था।[6] ये तप से प्राप्त सिद्धिया का प्रयोग अधर्माचरण मे करत थे। विभीषण राक्षसा मे एक सज्जन था।[7]

राक्षस यज्ञा का अनुष्ठान करत थ जिनमे अधिकतर अथववेदी यज्ञ हात थे। व यज्ञा मे अजेय शक्ति प्राप्त करना चाहत थ। रावण एक अग्रगण्य याज्ञिक एव अग्निहोत्री था। इसीलिए अग्निहोत्र की अग्नि से उसकी चिता प्रज्वलित की गई।[8] इन्द्रजित छद्मशक्ति पाने के लिए यज्ञ करता था।[9] निकुम्भिला इनकी कुल देवी थी जहा राक्षसिया भी सुरा तथा नरमास का भक्षण कर नत्य करती था।[10] इस देवी के प्रीत्यथ इन्द्रजित ने एक यज्ञ किया था।[11]

राक्षस स्वाध्यायी वदिक यज्ञ एव षडग के ज्ञाता थे। इनम वदिक शिक्षा का प्रसार था। हनुमान लका म वदिक मन्त्रा की ध्वनि सुनत हैं तथा उन्ह स्वाध्याय म सलग्न देखते हैं।[12] रात्रि के चतुथ प्रहर म उन्ह षडग वेदा के ज्ञाता और अनु

1 तदेव 1 29 10 12। 2 तदेव 1 25 13 16

3 तदेव 6 11 9 15

4 तदेव 6 83 7 कृतस्वस्त्ययना सर्वे त रणाभिमुखा ययु ।

5 तदेव 5 57 4 सवथातिप्रकृष्टो सौ रावणो राक्षसेश्वर. ॥

6 रा० 3 39 37 तत्र कृष्णाजिनधर जटावल्कलधारिणम् ।
दृदश नियताहार मारीच नाम राक्षसम् ॥

7 तदेव 3 16 22 विभीषणस्तु धर्मात्मा न तु राक्षस चेष्टित ।

8 तदेव 6 111 103 106 (नि० सा०)। 9 तदव 6 67 5 15

10 तदेव 5 22 44 सुरा चानीयता क्षिप्र सवशोकविनाशिनी ।
मानुष मासमासाद्य नत्यामाऽथ निकुम्भिलाम ॥

11 6 69 24 निकुम्भिलामधिष्ठाय पावक जुहवेन्द्रजित ।

12 रा० 5 3 26 शुश्राव जपता तत्र मन्त्रान् रक्षोगहेषु व ।
स्वाध्यायनिरताश्चव यातुधानान ददश ह ॥

ध्यान करन वाले राक्षसा की ध्वनि सुनाई पी।[1] उन्हें विभीषण के प्रासाद की ओर जात समय रावण क सम्मान म की जान वाली प्रशस्तिया सुनाई दी।[2] उन्हें कुछ एस वदवेत्ता विप्र भी दिखलाई पडे, जिनका लोग सुमनो और अक्षतो से सम्मान कर रह थे।[3]

रावण एक वदिक विद्वान था। उसने सामवद के स्तोत्रा से नमदा के तट पर शिव की आराधना की थी।[4] रावण की मत्यु पर विलाप करत हुए विभीषण उसे 'अहिताग्नि', महातपा और 'वदातग' कहते हैं।[5] एक बार वे सीता के वध के लिए जात हुए रावण का सुपाश्व 'वदविद्याव्रतस्नातक' कह कर एसा करने से रोकते हैं।[6] रावण ने नियमानुसार सागोपाग वदाध्ययन किया तत्पश्चात वदिक विधि से स्नातक की दीक्षा लेकर गहस्थाश्रम म प्रवश किया।[7] रावण का कनिष्ठ पुत्र अतिकाय वेदा मे पारगत था।[8] इल्वल और वातापि परिष्कृत सस्कृत बोलकर ब्राह्मणा को श्राद्ध म आमत्रित किया करत थ।[9]

पिशाच—दानवा का एक अय वग पिशाच है, जो पिशाचि क रूप मे ऋग्वेद म सकलित है। यहा इन्द्र स पीतभृग तथा महान पिशाचि को मारने की प्राथना की गई है।[10] तत्तिरीय सहिता म असुर, राक्षस तथा पिशाचा का देवा,

---

1 नन्व 5 16 2 षडगवेदविदुषा क्रतुप्रवरयाजिनाम।
शुश्राव ब्रह्मघोषाश्च विरात्रे ब्रह्मरक्षसाम।

2 तदेव 6 10 8 पुण्या पुण्याहघोषाश्च वेदविदभिरुदाहृतान।
शुश्राव सुमहातजा भ्रातुर्विजयसश्रितान्।

3 तदेव 6 10 9 पूजिता दधिपात्रश्च सर्पिभि सुमनोक्षत।
मन्त्रवेदविदो विप्रा ददश स महाबल॥

4 तदेव 7 1[illegible] 33 तुष्टाव वषभध्वजम। सामभिर्विविध स्तोत्र प्रणम्य [illegible]
दशानन। (नि० सा०)

5 तदेव 6 109 23 एषो हिताग्निश्च महातपाश्च वेदान्तग कमसु चाग्रयशूर।
(नि० सा०)

6 तदेव 6 80 85 वदविद्याव्रतस्नात स्वकमनिरतस्तदा।
स्त्रिय कस्माद्वध वीर मयसे राक्षसेश्वर।

7 तदेव 6 80 55 वेदविद्याव्रतस्नात। 8 तदेव 57 13

9 तदेव 3 1[illegible] 54 धारयन्ब्राह्मण रूपमिल्वल सस्कृत वदन।

10 ऋ० 1 133 5 पिशगभृष्टिमम्भृण पिशाचिमिन्द्र स मृण। सव रक्षो नि बहय।

मनुष्यो तथा पितरो के साथ विरोध मिलता है।[1] 'अथर्ववेद' म अग्नि स प्रार्थना की गई है कि रुग्ण व्यक्ति के जिस मांस को पिशाचो ने कुतर दिया है वह फिर से रोगी को उसे दे दे।[2] ये अन्तरिक्ष लोक म विचरण करते हुए ग्रामो म प्रवेश कर जाते हैं।[3]

'रामायण' म बहुवचन म ही पिशाचो का उल्लेख हुआ है। यहाँ इन्हें राक्षसो के समान क्रूरकर्मा कहा गया है।[4] रावण को इनसे भी अवध्य होने का वर प्राप्त था।[5] ये राम और रावण का युद्ध भी देख रहे थे।[6]

---

1 श० ब्रा० 2 4 1 1 देवा मनुष्या पितरस्तेऽन्यत आसन्नसुरा रक्षासि पिशाचा स्तेऽन्यत।

2 अथर्व० 5 29 9 दिवा मा नक्त यतमो ददम्भ क्रव्याद यातूना शयने शयानम। 5 29 5 यदस्य हृत विहृत यत्पराभृतमात्मनो जग्ध यतमत पिशाच। तदग्ने विद्वान पुनरा भर त्व शरीरे मासमसुमेरयाम।

3 तदेव 4 37 10 *अवकादानभिशोचानप्सुज्योतय मामकान।*
पिशाचान्त्सर्वानोषधे प्र मृणीहि सहस्व च।

4 रा० 2 25 17 राक्षसाना पिशाचाना रौद्राणा क्रूरकर्मणाम। (म० वि०)

5 तदेव 3 30 18।

6 तदेव 6 95 30।

चतुर्थ अध्याय

रामायण मे वर्णित वैदिक ऋषि

1 ऋषि तत्व

सहिताओ मे मन्त्रपाठ से पूर्व ऋषि देवता तथा छन्द का निर्देश मिलता है। सामान्यतया मन्त्रद्रष्टा अथवा स्तुतियो के प्रयोक्ता व्यक्ति को ऋषि,[1] मन्त्रो के प्रतिपाद्य विषय अथवा स्तुत्य देव को देवता[2] एव अक्षरो के विविध परिणामो को छन्द कहा जाता है।[3] मन्त्रब्राह्मणो के साथ ऋषियो का उच्छेद्य सम्बन्ध है। मन्त्रो के साथ ऋषि का नाम भी आवश्यक है।[4] आर्षानुक्रमणी मे 'ऋग्वेद के द्रष्टाओ को मुनिपुगव कहा गया है।[5] इन ऋषियो की विशेषता स्तुतियो से देवताओ को प्रसन्न करना तथा उनसे ऐश्वर्य सम्पत्ति तथा सरक्षण एव सहायता प्राप्त करना है। ये अव्यक्त शक्ति को व्यक्त बनाते थे।

ऋषि मन्त्रद्रष्टा हैं,[6] अर्थात इन्होने समाधि की अलौकिक स्थिति मे मन्त्रो का दर्शन किया। 'निरुक्त मे कहा गया है कि तपस्या मे रत ऋषियो के पास मन्त्र गए[7] ऋषियो ने धर्म (मन्त्र ब्राह्मण) का साक्षात्कार किया।[8]

---

1 ऋ० सर्वा० 2 4 यस्य वाक्य स ऋषि ।

2 तदेव 2 11 या तेनोच्यते सा देवता ।
वेदार्थ दीपिका 2 5 तेन वाक्येन यत प्रतिपाद्य वस्तु सा देवता ।

3 ऋ० सर्वा० 2 [illegible] यदक्षरपरिमाण तच्छन्द ।

4 तदेव 1 1 शारीरक भाष्य 1 3 30 श्रुतिरपि ऋषिज्ञानपूर्वकमेव मन्त्रेणा नुष्ठान दर्शयति । यो ह वा अविदित्वा ।

5 आर्षानुक्रमणी 1 1 ऋग्वेदमखिल ये हि द्रष्टारो मुनिपुगवा ।

6 नि० 7 3 ऋषयो मन्त्रद्रष्टार ।

7 तत्रैव 7 11 तद यदेनास्तपस्यमानान स्वयम्भवानर्षत, तद् ऋषिणा ऋषि त्वम । त० आ० 2 9 अजान ह व पृश्नीस्तपस्यमानान ब्रह्म स्वयम्भवा नर्षत ।

8 नि० 1 20 साक्षात कृत् धर्माणो ऋषयो बभूवु । पर स्कन्द टीका।

मन्त्ररूप वाक्यो के वक्ता ऋषि हैं, अर्थात जिसने अपनी कामनाओ की पूर्ति के लिए देवता की स्तुति की उसको उस मन्त्र का ऋषि मान लिया गया[1] आचाय दुर्ग[2] एव सायण[3] √ऋष गतौ से 'ऋषि शब्द' व्युत्पन्न मानते हैं। √ऋष् गत्यथक[4] तथा तुदादिगणीय है।[5] वायु-पुराण मे ऋष के गति के साथ श्रुति, सत्य और तप अथ भी दिए गए हैं।[6] सभी गत्यथक धातुएँ ज्ञानाथक हैं[7] अत इस धातु का दशन रूप अथ भी माना जा सकता है। 'शतपथ-ब्राह्मण' म यह शब्द √रिष से निष्पन्न माना गया है।[8] यहा √रिष का अथ 'तप-करना' है। ऋषि' शब्द को √दश√ऋष् अथवा √रिष से निष्पन्न मानकर केवल यही अभिप्राय प्रतीत होता है कि तपस्यारत होकर समाधि स्थित ऋषियों ने मन्त्रो का दशन किया। मन्त्र दशन' को लौकिक स्तर पर मन्त्र प्रणयन' भी कहा गया है।[9] 'महाभाष्य' म/दश का प्रयोग चिन्तन अथ म मिलता है।[10] दशन का अथ मननपूवक साक्षात् उपलब्धि हो जाता है। मन्त्रो मे प्रयुक्त आत्मवाची शब्दो म रचयिता का नाम हो जाता है।[11] सवाद मे वाक्य को कहन वाला भी ऋषि है।[12] यही द्रष्टा और प्रयोक्ता म अन्तर है। द्रष्टा वे है, जिन्होने मन्त्रो का साक्षात्कार किया तथा प्रयोक्ता वे हैं, जिन्होने दृष्ट मन्त्रो का प्रयोग किया।[13] प्रयोक्ता स्तर के ऋषियो के

---

1 नि० 7 1 यत्काम ऋषियस्या देवताया आयपत्य इच्छन स्तुति प्रयुक्ते ।
बृ० दे० 1 6 अथ इच्छन ऋषिर्देव य यमाहायमस्त्वति ।
प्राधान्येन स्तुवन भक्त्या ॥

2 नि० 1 12 ख० पर दुग टीका।

3 ऋ० 1 1 1 पर सायण भाष्य, √ऋष गतौ इति धातु ।

4 सि० कौ तिङन्त 1287 √ऋषी गतौ। 5 क्षीरतरगिणी 6 8

6 वा० पु० 59 79 ऋषीत्यप गतौ धातु श्रुतौ सत्ये तपस्यथ।
एतस्मिनियत तस्मिन्ब्राह्मणो स ऋषि स्मृत ॥

7 नि० 2 16 ख० पर स्कन्द टीका, 3 16 ख०, पर आत्मानन्द टीका
'सर्वे गत्यर्था नानार्था ।

8 श० ब्रा० 6 1 1 श्रमेण तपसा अरिषन्त तस्माद ऋषय ।

9 कपिल देव शास्त्री, वदिक ऋषि एक परिशीलन पृष्ठ 2

10 महाभाष्य 1 4 25 स पश्यति—बुद्धया प्राप्य निवतते।

11 ऋ० 3 33 5 कुशिकस्य सुनु' शब्द प्रयुक्त है।

12 बृ० दे० 2 28 सवादेष्वाह वाक्य य स तु तस्मिन भवेदपि ।

13 वाचस्पत्यम के निम्न श्लोक म ऋषि के दो स्तर हैं।
येन यद ऋषिणा दृष्ट सिद्धि प्राप्ता च येन वे ।
मन्त्रेण तस्य तत्प्रोक्तमषिभाव स उच्यते ॥

लिए 'निरुक्त' मे सम्भवत अवर शब्द का प्रयोग हुआ।[1] ऋषियो को मन्त्रकृत" तथा कवि[3] भी कहा गया है। 'मन्त्रकृत शब्द मन्त्र उपपद होने पर √कृञ् से भूतार्थ म क्विप प्रत्यय होकर बनता है।[4] 'रामायण मे 'मन्त्र' शब्द का प्रयोग केवल वेदमन्त्रो के लिए ही नही अपितु मन्त्रणा अथवा विचार अर्थ म भी मिलता है।[5] अमात्य भी मन्त्री इसलिए होता है कि वह भी राज्यादि के कार्य का सम्यक तया विचार करता है। अत मन्त्रकृत का अर्थ विचार करने वाला भी होता है।[6] यास्क द्रष्टा होने के कारण 'ऋषि शब्द की व्युत्पत्ति मानत हुए अपने पूर्ववर्ती 'औपमन्यव का प्रमाण भी देते हैं।[7] एक स्थल पर औपमन्यव कुत्स को स्तोमो का कर्त्ता भी कहते हैं।[8] यहाँ कर्त्ता का अर्थ द्रष्टा है। ऐसे स्थलो पर सायण[9] भट्ट भास्कर[10] तथा कक ने[11] √कृञ् धातु को दर्शनार्थक माना है। पाणिनि ने √कृञ् की अनेकार्थकता मानी है।[12] इस प्रकार 'मन्त्रकृत का अर्थ 'मन्त्र द्रष्टा' सिद्ध होता है।

---

1 नि० 1 20 तेऽवरेभ्यो साक्षात्कृतधर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रा सप्रादु ।

2 ज० ब्रा० 2 2 66 ऋषिह स्म मन्त्रकृद्ब्राह्मण आजायत ।

3 म०स० 4 1 2 ऋषय कवय ।

4 अ० 3 2 89 सुकर्म पापमन्त्रपुण्येषु कृञ ।

5 रा० 2 33 15 न मया मन्त्रकुशल सह विचारितम ।

2 33 16 सामात्य मन्त्रमित्वा सनेगम ।

2 94 11 मन्त्रो हि विजयमूल राज्ञा भवति राघव ।

6 4 70 तदिहैव निवशो स्तु मन्त्र प्रस्तूयतामिह ।

6 4 72 सम्प्राप्तो मन्त्रकालो न सागरस्येह लघने ।

6 6 12 मन्त्रिणो यत्र निरतास्तमाहुर्मन्त्रमुत्तमम ।

6 युधिष्ठिर मीमासक, वदिक सिद्धान्त मीमासा भाग 1, पष्ठ 333

7 नि० 2 11 ऋषि दर्शनात स्तोमा ददर्श इत्यौपमन्यव ।

8 तदत्र 3 11 ऋषि कुत्सो भवति-कर्त्ता स्तोमानामित्यौपमन्यव ।

9 ऐ० ब्रा० 6 1 पर सायण भाष्य, ऋषिरतीन्द्रियार्थद्रष्टा मन्त्रकृत् करोति धातुस्तत्र दर्शनार्थ ।

10 त० आ० 4 4 1 पर भट्टभास्कर भाष्य, अथ नम ऋषिभ्यो मन्त्रकृद्भ्यो मन्त्राणा दर्शनमेव कर्तत्वम ।

11 का० श्रौ० सू० 3 2 8 पर ककभाष्य ऋषयो मन्त्रकृत मन्त्राणा द्रष्टारो भवेयु ।

12 अ० 7 3 77 गन्धनावक्षेपणसवनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञ ।

'ब्राह्मण काल के आविर्भाव के आस-पास सूक्त रचना की प्रवत्ति समाप्त हो गई।[1] ब्राह्मण ग्रन्थों में ऋषि, ऋत्विक तथा अनक कथाओं के वक्ता के रूप में मिलते हैं। यही प्रवत्ति 'रामायण' में भी मिलती है। ये ऋषि राजाओं तथा राजवंश के महापुरुषों से सम्बद्ध होते थे। ये केवल ऋत्विज ही नहीं प्रत्युत राजाओं के मन्त्री भी होते थे, जो समय समय पर उपस्थित होकर राजाओं को उचित परामर्श देते थे। 'रामायण' में वसिष्ठ, वामदेव, सुयज्ञ जावालि काश्यप, गौतम, मार्कण्डेय तथा कात्यायन कुल परम्परा के दशरथ के मन्त्री है,[2] जो अश्वमेध-यज्ञ[3] दशरथ की मिथिला-यात्रा,[4] राम के अभिषेक,[5] सभा[6] तथा सीता के शपथ-समारोह में उपस्थित थे।[7] ये सभी राम के वनवास तथा दशरथ की मृत्यु के पश्चात्[8] नवीन राजा की नियुक्ति के विषय में परस्पर परामर्श करते हैं।[9] जावालि तो राम को राज्यग्रहण के लिए वन से लौटाने के लिए नास्तिक मत का आश्रय भी लेते हैं।[10]

वदिक-ग्रन्थों के समान[11] रामायण में भी गौतम भरद्वाज विश्वामित्र जमदग्नि वसिष्ठ, कश्यप एवं अत्रि के नाम सप्तर्षियों में आए हैं।[12] इन सप्तर्षियों[13] का स्थान उत्तर दिशा में है[14] कौशिक, यवक्रीत, गार्ग्य गालव और मधातिथि काण्व पूर्व दिशा के वासी हैं।[15] स्वस्त्यात्रेय नमुचि प्रमुचि अगस्त्य, अत्रि सुमुख एवं विमुख दक्षिण दिशा में रहते हैं।[16] नषगु कवषी, धौम्य एवं कौषेय का वास पश्चिम दिशा में बतलाया गया है।[17] ये ऋषि कुछ समय के पश्चात् भूतकाल के प्रतिनिधि हो जाते हैं। इन्हें भी ईश्वर के समान पवित्र समझा जाता है।[18] 'अथववेद' में ऋषियों की लम्बी सूची है जिसमें अंगिरा अगस्त्य अत्रि कश्यप वसिष्ठ भरद्वाज जमदग्नि गविष्ठिर विश्वामित्र कुत्स कक्षीवान् कण्व मेधातिथि, त्रिशोक उशना, काव्य गौतम और मुद्गल के नाम मिलते हैं।[19] इनमें प्रतिद्वन्द्विता चलती थी जो वदिक यज्ञ की विशेषता ब्रह्मोद्य का एक पक्ष होती थी। उपनिषदों के समय ऐसी प्रतिद्वन्द्विता वद्धि को प्राप्त हुई। जनकराज विदेह के यहाँ याज्ञवल्क्य के साथ अन्या

1 ए० बी० कीथ तथा ए० ए० मक्डानल वदिक इण्डेक्स, पष्ठ 129
2 रा० 1 7 4 5 म० वि०। 3 तदेव 1 8 6, 7 91 2 म० वि०
4 तदेव 1 68 4 5। 5 तदेव 6 116 55। 6 तदेव 7 65 4 5
7 तदेव 7 87 2 5। 8 तदेव 2 61 3 4। 9 तदेव 2 61 62।
10 तदेव 2 100। 11 ऋ० 4 42 8, 10 109 4, 10 130 7
शा० स० 14 24, अथव० 11 1 1, 11 1 24 12 1 39
12 रा० 7 1 5 6। 13 ब० उ० 2 2 6
14 रा० 7 1 6 उदीच्यां दिशि सप्तैते नित्यमेव निवासिन।
15 तदेव 7 1 2। 16 तदेव 7 1 3 4। 17 तदेव 7 1 4 5
18 सूर्यकान्त, वदिक कोश पष्ठ 72। 19 अथव० 4 29 18 3 15 16

की प्रसिद्ध प्रतिद्वन्द्विता का उल्लेख 'बृहदारण्यकोपनिषद म है,[1] जिससे काशी के अजातशत्रु को भी व्यथा हुई थी।[2]

'रामायण' म वना म तप एव यज्ञ करते ऋषियो का विवरण मिलता है। वे सभी प्रकार की इच्छाओ का छोडकर[3] सम्भवत इसलिए तपोरत रहते थे, जिसमे उन्हें अमरत्व प्राप्त हो तथा स्वग म स्थान मिले।[4] ऋषियो मे देवताओ का व्यवहार भी मित्रतापूण था। वे कभी-कभी आश्रम तक भी आते थे।[5] ब्रह्मर्षि पद प्राप्त करने के लिए अत्यधिक तप करना पडता था। जब विश्वामित्र ब्रह्मा के सामने ब्रह्मर्षि-पद की कामना व्यक्त करते हैं तो ब्रह्मा कहते हैं कि तुम्हें काम और क्रोध को जीते बिना ब्रह्मत्व कैसे प्राप्त हो सकता है[6]। उन्हें यह पद तभी प्राप्त हो सका जब उन्होने सहस्र-वर्षों तक मौन धारण कर मन म काम और क्रोध का प्रवेश नही होने दिया।[7]

ऋषियो के द्वार अतिथि-सत्कार के लिए सदा खुले रहते थे। भरद्वाज द्वारा भरत की सेना को भोजनादि द्वारा आतिथ्य देना[8] इसकी पुष्टि करता है।

'रामायण' म ऋषियो के भोजन पर भी प्रकाश पडता है। वना म ऋषि उन फलों मूलो और वनस्पतियो पर आश्रित रहते थे, जो बिना किसी विशेष प्रयत्न के प्राप्त होती थीं। वे वक्ष-पत्र जल तथा सूय चन्द्रमा की किरणें और वायु पीकर जीवन व्यतीत करते थे।[9] जो फल या पण वक्षो स जीण होकर गिरते थे, वे उन्हें खाते थे।[10] आश्रम पर ऐसे बहुत से ऋषियो का होने का वणन मिलता है जो कठोर जीवन व्यतीत कर रहे थे। वसिष्ठ के आश्रम मे तपश्चरण और स्वाध्याय के कारण अग्नि के समान दैदीप्यमान, अब्भक्षी वायुभक्षी, शीणपर्णासन, फलमूलाशन दात जितदोष जितेन्द्रिय वालखिल्य जपहोमपरायण तथा वखानस ऋषि थे।[11] कुछ ब्रह्मतेज से युक्त ऋषि जो शरभग के आश्रम म राम के दशन के लिए आए वे वखानस वालखिल्य, सम्प्रक्षाल, मरीचिप अश्मकुट्ट, पत्राहार, तापस दन्तोलूखली, उन्मज्जक, गात्रशय्य, अशय्य अभ्रावकाशिक, सलिलाहार, वायुभक्षी, आकाशनिलय, स्थण्डिलशायी, व्रतोपवासी, दान्त, आर्द्रपटधारी, सजप, तपोनिष्ठ तथा पचतपी थे।[12] मारीच के आश्रम पर नियताहार, वखानस, माष, वालखिल्य तथा

1 ब० उ० 3 1 1। 2 तदेव 2 1 1 कौ० उ० 4 1

3 रा० 3 8 7 8। 4 तदेव 3 5 19 20। 5 तदेव 3 4 20, 3 6 10

6 तदेव 1 62 20 21 ब्रह्मर्षिशब्दमतुल स्वार्जित कर्मभि शुभ।

यदि मे भगवानाह ततो ह विजितेन्द्रिय॥

तमुवाच ततो ब्रह्मा न तावत्त्व जितेन्द्रिय।

7 तदेव 1 64। 8 तदेव 2 85 1 23। 9 रा० 1 50 26, 3 7 2

10 तदेव 1 50 26 शीणपर्णासन। 11 तदेव 1 50 25 28

12 तदेव 3 5 2 5

मरीचिप ऋषि रहते थे।[1] सुग्रीव मनाक पवत क पार ऐसा सिद्ध सेवित आश्रम बतलाते है जहा वखानस, वालखिल्य तथा वीतकल्मष ऋषि रहत हैं।[2] इससे ऋषि जीवन की कठोरता पर प्रकाश पडता है। ये सभी ऋषि स्वाध्याय तथा तपश्चरण मे लगे रहत थे,[3] जिससे वे ब्रह्मतज मे प्रकाशमान दिखाई देते थे।[4] ऋषियो के आश्रम म वेद ध्वनि सुनाई देती थी।[5] वेद म त्रा से वे होमादि काय करते थे। राजा किसी तपोधन के आन पर म त्री एव पुरोहितो के साथ उनका स्वागत करते थे।[6] ऋषियो क आश्रम नदियो क तट पर होत थ। 'रामायण म उत्तर स दक्षिण तक वाल्मीकि, वसिष्ठ विश्वामित्र, गौतम भरद्वाज अत्रि, शर भग, सुतीक्ष्ण अगस्त्य एव मातग के आश्रमो का उल्लेख है। धार्मिक गतिविधियो के मुख्य केंद्र ये आश्रम नगर से दूर होते थे। ऋषि आश्रम बनाने के लिए स्थान का चुनाव बडी सतकता से करत थे। वहा जल समिधा आदि का होना अनिवाय था।[7] राम पचवटी म लक्ष्मण का ऐसे स्थल पर पणशाला बनाने का परामश देते है जहा से सु दर दश्य दिखाई देत हो। वहा जल पुष्प और समिधाए सरलता स प्राप्त थे।[8] राम ने सरलता से अगस्त्याश्रम की स्थिति को जान लिया था क्योकि वहा पुष्पयुक्त वक्ष तथा सु दर मग विद्यमान थे[9] इनका आश्रम कदली वक्षो से घिरा हुआ था। हविर्धू म का उठना वक्षो का फलपुष्पयुक्त होना दभ का निकला हुआ होना, नदी के किनारे पुष्पो का गिरा होना आदि इस प्रकार के सकेत थे,[10] जिसस किसी आश्रम का निकट होना अनुमेय था।

राक्षसो का भय ऋषियो को समूह म रहने के लिए प्रेरित करता था। इनक परस्पर सघ होते थे।[11] दण्डकारण्य मे बहुत से आश्रम थे जिनम वृपी

---

1 रा० 3 33 15 3 33 30। 2 तदेव 4 42 31 32

3 तदेव 1 1 1 1 50 25

4 तदेव 6 4 43 ब्रह्मराशिविशुद्धश्च शुद्धाश्च परमपय।
अचिन्त्यन्त प्रकाशन्त ध्रुव सर्वे प्रदक्षिणम्॥
3 5 5 सर्वे ब्राह्मयाश्रियायुक्ता, पर (अ०)
ब्रह्मविद्यानुष्ठानजनितब्रह्मवर्चसेन।

5 तदेव 3 1 6 बलिहोमार्चित पुण्य ब्रह्मघोषनिनादितम्।
पर (अ०) ब्रह्मघोष -वेदघोष (भू०) ब्रह्मघोष —वेदध्वनि।

6 तदेव 1 17 26 28, 1 49 7 8

7 रा० 3 1 5 6 3 19 77। 8 तदेव 3 14 9 19

9 तदेव 3 10 78 आश्रमो दश्यत तस्य परिश्रान्तश्रमापह।
प्राज्यधूमाकुलवनश्चीरमालापरिष्कृत॥
प्रशान्तमगयूथश्च नानाशकुनिनादित।

10 तदव 3 10 36 39। 11 तदव 3 1 2 5

खनित्र, पिटक, स्रुक, कलश, यज्ञबन्ध, यज्ञसूत्र आदि सामग्री होती थी।

2 ऋषि

अगस्त्य—अगस्त्य ऋषि 'ऋग्वेद' प्रथम मण्डल में कुछ सूक्तों एवं मंत्रों के द्रष्टा हैं।[1] ये मैत्रावरुण तथा उर्वशी से वसिष्ठ के साथ उत्पन्न हुए।[2] इन्हें 'ऋग्वेद' में ही मान, मान्य तथा मान्दार्य भी कहा है।[3] 'ऋग्वेद' में प्रयुक्त 'मानस्य सूनु' का अर्थ सायण 'अग्नि' करते हैं।[4] इनके मान के पुत्र होने में अधिकतर विद्वानों का सन्देह है, इसलिए ये मान अगस्त्य के गोत्र के हो सकते हैं, क्योंकि मान कुछ स्थलों पर गायकों के रूप में आए हैं।[5] उनके मैत्रावरुण के पुत्र होने में सन्देह नहीं, क्योंकि ऋग्वेद[6] आर्षानुक्रमणी[7], निरुक्त[8], बृहद्देवता[9] रामायण[10], भागवत-पुराण[11] तथा नरसिंह-पुराण[12] में इसका उल्लेख है। रामायण में वसिष्ठ एवं अगस्त्य की उत्पत्ति एक आख्यान के रूप में है। मित्र तथा वरुण उर्वशी को देखकर कामपीड़ित हो गए। दोनों ने अपना तेज कुम्भ में गिरा दिया।[13] इस कुम्भ से पहले अगस्त्य उत्पन्न हुए और मित्र से यह कहकर अन्यत्र चले गए कि वे उनके पुत्र नहीं हैं।[14] इसके पश्चात् वसिष्ठ उत्पन्न हुए।[15] नरसिंह-पुराण' के

---

1 ऋ० 1 165 13 15, 1 166-169, 1 170 2, 5 1 177-178, 1 179 3 4, 1 180, 1 191। 2 तदेव 7 33 13

3 तत्रैव 1 165 15 1 166 15, 1 167 11, 1 168 10, 1 77 5

4 तदेव 1 189 8 पर सायण भाष्य

मीयत इति मानो मन्त्र तस्य सूनुरग्नि।
मानेन संमिता यस्मात्तस्मान्मान्य इहोच्यते।
यदा कुम्भादृषि जात कुम्भेनापि मीयते।

5 तत्रैव 1 169 8 1 171 5 1 182 8, 1 184 5

वी० जी० राहुरकर द सायज आफ ऋग्वेद प० 202। 6 ऋ० 7 33 13

7 आर्षानुक्रमणी, प० 244 अगस्त्य एव तनवादि मित्रावरुणयो सुत।
षड्विंशतश्च सूक्तानामपिरित्यवगम्यताम॥

8 नि० 5 11 19 बृ० दे० 5 149-155।

10 रा० 7 56 57 (नि० सा०)। 11 भा० पु० 6 18 5 6

12 न० पु० 6 35 36। 13 रा० 7 56 नि० सा०

14 तदेव 7 57 5 पूर्व समभवत्तत्र अगस्त्यो भगवानृषि।
नाहं सुतस्तवेत्युक्त्वा मित्र तस्मादपाक्रमत। (नि० सा०)

15 तदेव 7 57 6 कस्यचित्त्वथ कालस्य मित्रावरुणसंभव।
वसिष्ठस्तेजसा युक्तो यज्ञे इक्ष्वाकुदैवतम्। (नि० सा०)

अनुसार मित्रावरुण का तेज कमलपत्र, कुम्भ तथा जल म गिरा जिससे क्रमश वसिष्ठ अगस्त्य और मत्स्य उत्पन्न हुए।[1] अगस्त्य के लिए भगवानृषि[2] महर्षि[3], पुण्यकर्मा[4] धर्मनेत्र[5] तपोधन[6], महामुनि[7] कुम्भयोनि[8] और कुम्भसम्भव[9] शब्दो का प्रयोग हुआ है।

अगस्त्य अपने भ्राता एव सुतीक्ष्ण क निकट दण्डकारण्य मे रहते थ।[10] राम ने इनके कहने से दिव्यास्त्र प्राप्त किए।[11] अगस्त्य ने शाप स ताटकापति सुन्द को मारा और ताटका तथा उसके पुत्र को राक्षस बना दिया।[12] इल्वल और वातापि अपने आपको ब्राह्मण कहकर अन्य ब्राह्मणो को श्राद्ध पर बुलाया करते थे। वातापि मेषरूप धारण कर ब्राह्मणो को दिया जाने वाला भोजन बनता था। जब ब्राह्मण भोजन कर लेते तो इल्वल वातापि को पुकारता था। वह ब्राह्मणो क शरीर को छिन्न भिन्न करके निकलता था। इस प्रकार वे सहस्रो ब्राह्मणो को मारा करते थे। अगस्त्य ने देवताओ की प्रार्थना पर इल्वल क श्राद्ध म मेषरूपधारी वातापि का भक्षण किया। इल्वल के पुकारने पर भी जब वातापि न निकला तो इल्वल ने अगस्त्य को मारने का प्रयास किया, परन्तु अग्नितुल्य दृष्टि स अगस्त्य ने उसे भी दग्ध कर दिया।[13] इस प्रकार अगस्त्य ने दक्षिण दिशा को शरण्य बना दिया।[14] इस प्रकार ये अपने कर्मों स विख्यात होकर अगस्त्य हुए। अगस्त्य—(अग स्त्यायति इति)—पवत को वश म करने वाला।[15] एक बार पवतविन्ध्य सूय का माग रोकने के लिए बढ गया परन्तु महर्षि अगस्त्य क रोकने पर नम्र हो गया।[16] इसलिए माधवयोगि ने 'अगस्त्य' का अथ विन्ध्य पवन को स्तम्भित करने वाला किया है।[17] दक्षिण दिशा पर विजय के कारण उसे अगस्त्यसेवित दिशा भी कहा गया

---

1 ने० पु० 6 35 36। 2 रा० 3 11 20, 7। 3 तदव 3 10 30
4 तदेव 3 10 79। 5 तदेव 7 73 8। 6 तदव 7 73 8
7 तदेव 3 10 86। 8 तदेव 7 2 1। 9 तदेव 7 71 1, 7 73 8
10 तत्व 1 1 33 सुतीक्ष्ण चाप्यगस्त्य च अगस्त्यभ्रातर तथा 12 29 11 12
11 तदेव 1 1 34 3 11 29 34। 12 तदेव 1 24 9 11
13 रा० 3 10 53 65
14 तदेव 3 10 79 दक्षिणा दिक्कृता येन शरण्या पुण्यकमणा।
15 तदेव 3 10 77 अगस्त्य इति विख्याता लोके स्वनव कमणा।
16 रा० 3 10 83 माग निरोद्धु सतत भास्करस्याचलोत्तम।
सन्देश पालयस्तस्य विन्ध्यशलो न वधते।
17 तदेव 3 10 77 पर (अ०)—स्वेनव कमणा अगस्त्य इति विख्यात। अग—विन्ध्य स्तम्भयतीति, पषोन्दरादित्वान स्तभशब्दस्य स्त्यादेशे अगस्त्य इति प्रसिद्ध इत्यथ।

है।[1] अगस्त्य ने समुद्र के भीतर सुन्दर स्वणमय महेन्द्रगिरि की स्थापना की थी।[2] कुञ्जर नामक पवत पर विश्वकर्मा द्वारा निर्मित महर्षि अगस्त्य का एक सुन्दर भवन है।[3] यह भवन स्वणमय नानारत्नविभूषित, एक योजन विस्तत तथा दस योजन ऊचा है।[4] अगस्त्य न शापवश शवभक्षण करने वाले स्वर्गीय पुरुष श्वेत-राजा से दिव्य आभूषण ग्रहण करके उसने लिए स्वग का माग प्रशस्त किया।[5] अगस्त्य के बहुत से शिष्य थे।[6] राम ने विशिष्ट तज के आधिक्य स ही तपोनिधि अगस्त्य को पहचान लिया था।[7]

अगस्त्य ऋषि का विन्ध्याचल के पार दक्षिण म आय जाति का बसाने वाला माना जा सकता है।[8] शतपथ ब्राह्मण [9] तथा 'महाभारत [10] म अगस्त्यतीथ (अगस्त्य-पुरी) का नाम आया है। इस प्रकार अगस्त्य उत्तर तथा दक्षिण भारत के ऋषि हैं। 'ऋग्वेद म अगस्त्य से उनकी पत्नी लोपामुद्रा का सम्वाद वर्णित है[11], जिससे उनके ववाहिक जीवन का पता चलता है। रामायण' म लोपामुद्रा का अगस्त्य की पत्नी होन का सकेत मात्र उपलब्ध होता है।[12] उत्तर-काण्ड' म अगस्त्य अधिकतर आख्याना के वक्ता हैं।

अत्रि—अत्रि ऋग्वेद' के पचम मण्डल के ऋषि हैं।[13] बृहद्दवता म पचम

1 तदेव 6 103 14 अगस्त्यन दुराधर्पा मुनिना दक्षिणव दिक।
3 10 82 नाम्ना चेय भगवता दक्षिणा दिक्प्रदक्षिणा।
4 44 5 अगस्त्याचरितामाशा-दक्षिणा।

2 तदव 4 40 19 20 तता हेममय दिव्य मुक्तामणिविभूपितम।
अगस्त्येनान्तर तत्र सागर विनिवशित ॥

3 तदव 4 40 34 तत्र नत्रमन कान्त कुञ्जरा नामपवत।
अगस्त्यभवन यत्र निर्मित विश्वकमणा।

4 तदव 4 40 35 तत्रयोजनविस्तारमुच्छ्रित दशयोजनम।
शरण काञ्चन दिव्य नानारत्नविभूपितम्।

5 तदव 7 68-69

6 तदव 3 11 19 तत शिष्य परिवता मुनिरप्यभिनिष्पतत।

7 तदव 3 11 20 औन्नत्यणावगच्छामि निधान तपसामिदम।

8 बी० जी० राहुकर पूर्वोद्धृत ग्रथ पृ० 207

9 शा० ब्रा० 2 8। 10 महा० वनपव 94 1। 11 ऋ० 1 179

12 रा० 5 24 11 लोपामुद्रा यथागस्त्यम।

13 आपानुक्रमणी, पृ० 249
अवोच्यग्निरपत्यम्य पचम मण्डल प्रति।
पुत्राद्य मह भौमा त्रिमुनिरित्यवगम्यताम्।
अत्र त्वनुक्तगोत्रा य ज्ञेयास्त्वत्रि सुता इति।

मण्डल को अत्रि मण्डल कहा गया है[1], क्योंकि यह अत्रि परिवार द्वारा दृष्ट है। वदिक-साहित्य म सप्तर्षियो के नाम भरद्वाज, कश्यप, गौतम, अत्रि, विश्वामित्र, जमदग्नि तथा वसिष्ठ हैं।[2] नाम स मूल गोत्र चार हैं—अगिरा, कश्यप, भृगु तथा वसिष्ठ।[3] इसके अतिरिक्त अय गोत्र ऋषियो के कम से माने गए। यहा उल्लेख नीय है कि अत्रि ने सप्तर्षियो मे स्थान कम मे प्राप्त किया। जिस प्रकार विश्वा मित्र ने तप से ऋषित्व पाया,[4] उसी प्रकार अत्रि ने सूय को अ धकार से मुक्त करके ऋषित्व पाया।[5] शतपथ ब्राह्मण' म अत्रि एक पुरोहित हैं[6], जि होने अ ध कार को दूर किया था। ये वाक से उ प न हुए।[7] वाक के साथ इनके तादात्म्य का उल्लेख भी मिलता है।[8] 'रामायण' मे इनकी उपमा वश्वानर सूय से की गई है[9] तथा इनका स्थान प्रजापतियो म एक कहा गया है।[10] महाभारत' म इ हें छह महान ऋषियो म एक कहा गया है।[11] इस प्रकार इनकी महत्ता के विषय मे स देह का अवसर नहीं रहता। *अत्रि तथा अत्रि वशजो को 'बृहदारण्यकोपनिषद*[12] तथा 'तत्तिरीय आरण्यक'[13] के आधार पर वास्तविक न मानना उचित नहीं।[14]

---

1 ऋ० दे० 5 12

2 ऋा० स० 14 24 अथव० 11 1 1, 24 श० ब्रा० 2 1 2 4, ब० उ० 2 2 6, रा० 7 1 5

3 महा० शान्तिपव 296 मूलगोत्राणि चत्वारि समुत्प नानि भारत।
अगिरा कश्यपश्चव वसिष्ठोभृगुरेव च।
कमतो यानि गात्राणि समुत्प नानि भारत।
नामधेयानि तपसा तानि च ग्रहण सताम ॥

4 द्र० प्रस्तुत शोध प्रब ध प० 232 233

5 ऋ० 5 40 5 9, अथव० 13 2 4 13 2 12 13 2 26

6 श० ब्रा० 4 3 4 21 अत्रिर्वा ऋषीणा होता साऽयेतत्सदो सुरतमसमभि पुप्लुवे त ऋषयोऽत्रिमब्रुनेहि प्रत्यङडिद तमोऽपजहीति स एतत्तमोऽपाहन।

7 तदेव 1 4 5 13 वाचो देवताया ऐते सम्भूता।

8 तदेव 14 5 2 ॥ वागवात्रि।

9 रा० 6 111 24 अत्रिकुलपतियत्र सुयवश्वानरप्रभ।

10 तदेव 3 13 8। 11 महा० आदिपव 2 58

12 ब० उ० 2 2 4 वागवात्रिर्वाचायू नमद्यतऽत्तिह व नामत्तदन्त्रिरिति।

13 त० आ० 4 36।

14 कीथ तथा मक्डानल, वदिक इण्डक्स, प० 1

अत्रि प्रियमेघो[1], कण्वा[2] गौतमा[3] तथा काक्षिवता[4] से सम्बद्ध थे।

'विष्णु-पुराण' के अनुसार अत्रि ब्रह्मा के पुत्र तथा चन्द्रमा के पिता हैं।[5] अत्रि चतुरात्र-याग के व्याख्याता हैं।[6] याग के प्रसिद्ध होने पर इसका नाम अत्रेय-चतुरात्रयाग हो गया। 'आपस्तम्ब' के अनुसार अत्रिपरिवार के ऋत्विक को दक्षिणा के रूप मे स्वर्ण दिया जाना चाहिए क्योंकि अत्रि ने सूय को स्वर्भानु से बचाया था।[7]

'रामायण' म अनसूया अत्रिपत्नी है[8] जिसका 'भागवत पुराण' म भी उल्लेख है।[9] अनसूया पतिव्रता, तापसी एव धमचारिणी है।[10] जब दस वर्षों तक अनावष्टि से ससार दग्ध होने लगा तब अनसूया ने उग्रतप से फलमूल उत्पन्न किए तथा जाह्नवी की पवित्र धारा उत्पन्न की।[11] इन्होने दस सहस्र वर्षों तक तप करके ऋषियों के विघ्नों का निवारण किया और देवकाय के लिए एक रात्रि को दस रात्रियो के बराबर कर दिया।[12] वह अपने कार्यों से अनसूया के नाम से विख्यात हुई।[13]

अत्रि ने राम को पुत्रवत अपनाया।[14] इन्हें सभी प्राणियो के हित म रत, धमज्ञ एव ऋषिसत्तम कहा गया है।[15] इन्होने राजा निमि का यज्ञ किया था।[16] मकडानल अत्रि शब्द को √अद भक्षणायक से निष्पन्न मानत हैं।[17] 'अत्रि' शब्द

---

1 ऋ० 1 45 3 ऐ० ब्रा० 8 22।

2 तदेव 1 118 7 5 41 1, 10 15 5। 3 तदेव 1 183 5

4 तदेव 10 143 1। 5 वि० पु० 4 6 2। 6 तै० स० 7 1 8

7 आप० श्रौ० सू० 13 6 12 आत्रेयाय प्रथमाय हिरण्य ददाति द्वितीयाय तृतीयाय वा।

8 रा० 2 109 7। 9 भा० पु० 3 21 24

10 रा० 2 109 8 अनसूया महाभागा तापसीं धमचारिणीम।
2 109 17 महाभागामनसूया पतिव्रताम्।

11 तत्रैव 2 109 9 10 दशवर्षाण्यनावष्ट्या दग्धे लोके निरन्तरम्।
यया मूलफले सष्टे जाह्नवी च प्रवर्तिता।

12 तदेव 2 109 10 11 दश वष सहस्राणि यया तप्त महत्तप।
अनसूया व्रतस्तात प्रत्यूहा निवर्तिता।।
देवकार्यनिमित्त च यया सत्वरमाणया।
दशरात्र कृता रात्रि सेय मातेव तेऽनघ।।

13 तदेव 2 117 12 अनसूयेति या लोके कमभि ख्यातिमागता। (म० वि०)

14 तदेव 2 109 5 [illegible] चापि भगवानत्रि पुत्रवत्प्रत्यपद्यत।

15 तदेव 2 109 7 8। 16 तदेव 7 55 9

17 मकडानल, वदिक देवशास्त्र, पृ० 378

भक्षण' अर्थ म 'ऋग्वेद' मे प्रयुक्त हुआ है।[1]

ऋष्यशृग—सहिता साहित्य म 'ऋष्यशृग' का स्थान नही है। 'जमिनी योपनिपद ब्राह्मण म इनका काश्यप के एव शिष्य के रूप मे उल्लेख है।[1] 'तत्तिरी यारण्यक म इनका पतव नाम काश्यप भी दिया गया है।[3] रामायण मे ऋष्य शृग काश्यप के पौत्र तथा विभाण्डक के पुत्र है।[4] इनका पालन वन म ही हुआ। अत ये किसी से परिचित नही थे।[5] ये सदव तप तथा स्वाध्याय मे रत रहते थे।[6] ये नारियो तथा विषयो के सुख से अपरिचित थे।[7] ये गणिकाओ के माध्यम से अग देश आए और वहा अनावृष्टि शान्त हो गई। अगराज की पुत्री शान्ता से विवाह कर य सुख से रहन लग। इन्होने अयोध्या म दशरथ का 'अश्वमेध-यज्ञ' किया तथा वसिष्ठ के साथ अन्य ऋत्विजो को दक्षिणा बाटी।[8] इन्होने दशरथ के लिए ही अथववेद क मन्त्रो से 'पुत्रेष्टि-याग' किया[9], जिससे दशरथ के चार पुत्र उत्पन्न हुए।[10] इस प्रकार ये अत्यन्त मेधावी तथा वेदज्ञ थ।[11]

कश्यप—कश्यप ऋग्वद के कुछ सूक्तो तथा मन्त्रो के द्रष्टा हैं।[12] 'ऋग्वेद' मे इनका एक बार[13] तथा अन्य वेदो म अनेक बार उल्लेख है।[14] इन्हे सवत्र प्राचीन काल का बताया गया है। इनका चरित्र पुराकल्पनात्मक प्रतीत होता है।[15] ऐतरेय[16] तथा शतपथ-ब्राह्मण[17] के अनुसार इन्होने राजा विश्वकर्मा भौवन का अभिषेक किया था। ऐतरेय ब्राह्मण मे ही इनका सम्बन्ध जनमेजय के साथ जोडा गया है।[18]

---

1 ऋ० 2 8 5 अत्रिमनु स्वराज्यमग्निमुक्थानि वावृधु ।

2 ज० उ० ब्रा० 3 40 1 । 3 त० आ० 2 18 10 1, 8

4 रा० 1 8 7 काश्यपस्य तु पुत्रोऽस्ति विभाण्डक इति श्रुत ।
ऋष्यशृग इति ख्यातस्तस्य पुत्रो भविष्यति ।

5 तदेव 1 8 8 स वने नित्यमवद्धो मुनिवनचर सदा ।

6 तदेव 1 9 3 ऋष्यशृगो वनचरस्तप स्वाध्यायने रत ।
अनभिज्ञस्तु नारीणा विषयाणा सुखस्य च ।

7 तदेव 1 9 7 32 । 8 तदव 1 10 12 । 9 तदेव 1 14 1 3

10 तदेव 1 13 46 भविष्यन्ति सुता राजश्चत्वारस्त कुलोद्वहा ।

11 तदेव 1 14 1 । 12 ऋ० 1 99, 8 29, 9 64 9 67 4 6, 9 91 92
9 113 114, 10 137 2 ।

13 तदेव 9 114 2

14 अथव० 1 14 4, 2 37 74 4 20 7, 7 29 3 4 37 1 म०स० 4 29
वा० स० 3 62 ब० उ० 2 2 6

15 गुयकान्त पूर्वोद्धत कोश पृ० 88 । 16 ऐ० ब्रा० 8 21

17 श० ब्रा० 13 7 1 15 । 18 ऐ० ब्रा० 7 27

'रामायण' मे एक कश्यप मरीचि के पुत्र तथा विवस्वान के पिता थे।[1] ये अन्तिम प्रजापति थे।[2] इनका विवाह दक्ष की आठ कन्याओं स हुआ था[3], जिनम अदिति तथा दिति प्रमुख हैं। ये क्रमश देवताओं तथा दत्यो की माताए हुई।[4] एक बार इन्होंने अदिति-सहित सहस्र वर्ष तप करके विष्णु को प्रसन्न किया और अदिति क गभ म विष्णु को पुत्र रूप म प्राप्त करने का वर पाया।[5] तब विष्णु वामन रूप म उत्पन्न हुए।[6] दैत्यो के इन्द्र के द्वारा मारे जाने पर इन्होने दिति को वर दिया कि यदि वह एक सहस्र वष तक पवित्र रहेगी तो उसे ऐसा पुत्र प्राप्त होगा जो इन्द्र क वध म सक्षम होगा। एक बार दिति को अपवित्र पाकर इन्द्र उसके गभ मे प्रवेश कर गए और गभ के सात भाग कर दिए[8], य सभी सप्त मारुत के नाम से विख्यात हुए।[9]

प्राचीन काल मे भागव वशी परशुराम ने 'जो कार्तवीय अर्जुन द्वारा पिता जमदग्नि के वध से उत्पन्न क्रोध के कारण क्षत्रियो क नाशक कहे गए हैं'[10], अपने यज्ञ के अन्त मे सम्पूर्ण पृथिवी कश्यप को दान कर दी थी।[11] पृथिवी प्राप्त कर लेने के पश्चात कश्यप न परशुराम को अपने राज्य मे न रहने के लिए कहा था।[12] यहा यह सकेत मिलता है कि कश्यप ने परशुराम का याग भी किया था। कालिदास प्रणीत 'अभिज्ञान शाकुन्तल' म दुष्यन्त मारीच कश्यप का कहते हैं कि कण्व भी इसी गोत्र म सम्बन्ध रखते हैं।[13] 'मत्स्यपुराण' के अनुसार एक अन्य काश्यप

---

1 रा० 1 29 15 मारीच कश्यप।
  1 69 17 18 मरीच कश्यप सुत विवस्वा कश्यपाज्जज्ञे।
2 तदेव 3 13 9। 3 तदेव 3 13 10 11
4 तदेव 3 13 14 15, 7। 5 तदेव 1 29 15 17 (मै० वि०)
6 तदेव 1 28 9
7 रा० 1 45 4-7
8 तदेव 1 45 17 गभ च सप्तधा राम विच्छेद परमात्मवान्।
9 तदेव 1 46 1 6
10 तदेव 1 74 24 वधमप्रतिरूप तु पितु श्रुत्वा सुदारुणम्।
  क्षत्रमुत्सादयन् रोषाज्जात ज्ञातमनेकश ॥
11 तदेव 1 74 25 पृथिवी चाखिला प्राप्य कश्यपाय महात्मन।
  यज्ञस्यान्तेऽदद राम दक्षिणा पुण्यकर्मणे ॥
12 तदेव 1 75 25 काश्यपाय मया दत्ता यदा पूर्वं वसुधरा।
  विषये म न वस्तव्यमिति मा काश्यपोऽब्रवीत।
13 अ० शा० 7 31 अत्र भवतो युष्मत्सगोत्रस्य कण्वस्य, पृ० 563

शाण्डिल्य हैं जो दिलीप के राज्य मे अयोध्या मे रहते थे।[1] एक काश्यप विभाण्डक के पिता तथा ऋष्यशृग के पितामह है।[2] 'रामायण म एक काश्यप दशरथ एव राम के ऋत्विक तथा मन्त्री भी रह हैं जो मन्त्रणा के अवसरा पर अय ऋषिया के साथ उपस्थित होत हैं।[3] सहिताओ म कश्यप का इतना महत्त्व नही। ब्राह्मण साहित्य और उसके बाद बढा। सर्वाधिक महत्त्व मारीच कश्यप का ही है। 'रामायण म इनका स्थान सप्तर्षि प्रजापतिया मे महत्त्वपूण है।[4] ये देवो और दत्या के पिता हैं।[5] सायण ने इन्ही को सूक्तो को द्रष्टा माना है।[6]

गौतम—'गौतम का 'ऋग्वेद' मे अनकत्र उल्लेख हैं।[7] मेक्डानल एव कीथ इन्हे किसी सूक्त का द्रष्टा नही मानते[8]। ये 'ऋग्वेद' के कुछ सूक्तो तथा मन्त्रा के द्रष्टा हैं।[9] य आगिरसा के सम्बन्धी हैं।[10] इन्होने उषा की स्तुति की, जिसकी तुलना नतकी से की गई है।[11] इससे इनका महत्त्व बढ जाता है। 'शतपथ ब्राह्मण' मे ये *विदेह माधव के पुरोहित हैं जहा ये पूर्व दिशा की ओर बढ्त हुए वश्वानर* अग्नि को रोकते हैं।[12] यहा गौतम की मित्रविन्द इष्टि म दक्षता वणित है।[13] गौतम राहूगण के पुत्र और नाधा तथा वामदेव के पिता हैं।[14] 'रामायण' म एक गौतम दशरथ क ऋत्विक एव मन्त्री हैं।[15]

एक गौतम ऋषि मिथिला के उपवन म रहते थ, जो अहल्या के पति हैं।[16] इनके विषय म बाल[17] तथा उत्तरकाण्ड मे एक आख्यान मिलता है। गौतम और अहल्या विषयक यह आख्यान 'उत्तर काण्ड' मे अधिक विस्तार के साथ दिया गया है ब्रह्मा ने विशिष्ट नारी की सष्टि की। इसका नाम हल्य अर्थात विरूप

---

1 म० पु० 199 18 वा० पु० 73 41 42। 2 रा० 1 8 3
3 तदेव 1 7 5 म० वि०, 1 8 6, 1 68 4 2 61 3, 6 116 55 7 65 4 7 82 2, 7 87 2
4 तदेव 3 13 7 9। 5 तदेव 3 13 13-15
6 ऋ० 8 29 1 पर सायण भाष्य मरीचिपुत्र कश्यपो ववस्वतो मनुर्वा ऋषि । तथा चानुक्रम्यते वभुदश कश्यपो वा मारीचो द्विपदम इति ॥
7 ऋ० 1 62 13 1 78 2, 1 84 5, 1 85 11, 4 4 11
8 कीथ एव मक्डानल, वदिक इण्डक्स भाग 1, पृष्ठ 262
9 ऋ० 1 74 93, 9 31, 9 67, 10 23। 10 तदेव 1 62 1
11 तदेव 1 92 4। 12 श० ब्रा० 1 4 1 10 18। 13 तदेव 11 4 3 20
14 द्र० प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, पष्ठ 185। 15 रा० 1 47 15 16।
16 तदेव 1 47 15 34, 1 48 1 19
17 तदेव 7 30 19 42

ताज य निंद्यत्व न होने के कारण 'अहल्या रखा ।[1] इस नारी को ब्रह्मा ने गौतम के पास धरोहर रूप म रखा । जब गौतम ने इस नारी को लौटाना चाहा तो ब्रह्मा ने उनके इंद्रिय-सयम से प्रसन्न होकर पुन उन्हें ही समर्पित कर दिया । इन्द्र ने जब अहल्या सतीत्वभग किया तो गौतम ने दोनो को शाप दिया था । इस शाप से अहल्या अनेक वर्षों तक वायुभक्षण करती हुई निराहार होकर अदृश्य रही । जब राम उस आश्रम मे आए तब वह शापमुक्त हुई । गौतम ने अहल्या के शाप की अवधि मे हिमालय पर तप किया[2] और शाप की समाप्ति पर पुन उसे स्वीकार कर लिया ।

गौतम के आश्रम के पास इक्ष्वाकुवशी राजा निमि ने एक नगर बसाया जिसका नाम 'वजयन्ति हुआ ।[3] राजा निमि ने यज्ञ करने के लिए वशिष्ठ का ऋत्विक के रूप म वरण किया । वसिष्ठ इन्द्र के यज्ञ के लिए निमि के यज्ञ को बीच मे छोडकर चले गए । इस याग को गौतम ने पूर्ण किया था ।[4]

च्यवन—ये एक अत्यन्त प्राचीन ऋषि हैं 'ऋग्वेद म इनका प्राय च्यावन रूप मिलता है ।[5] ये जराग्रस्त थे जिन्हें अश्विना ने यौवन तथा सौन्दर्य प्रदान कर पत्नी का प्रिय बनाया था । 'शतपथ-ब्राह्मण के अनुसार शर्याति की सुकन्या नामक पुत्री के साथ इनका विवाह हुआ ।[6] 'रामायण मे सुकन्या के च्यवन की पत्नी होने का सकेत मात्र उपलब्ध होता है । 'ऋग्वेद म एक स्थल पर इन्द्र के उपासक राजा तूयमाण से इनका विरोध दिखाया गया है ।[8] जमिनि ब्राह्मण मे भृगु के दूसरे पुत्र विदन्वत द्वारा इन्द्र के विरुद्ध इनकी सहायता का उल्लेख है ।[9] शतपथ-ब्राह्मण' मे सुकन्या के अनुरोध पर अश्विना को यज्ञ मे भाग दिया गया था ।[10] इन्द्र तथा च्यवन का वर शमन हो गया था क्योंकि एतरेय-ब्राह्मण म च्यवन द्वारा शर्याति को एन्द्रमहाभिषेक से अभिषिक्त करने का उल्लेख है ।[11] 'षडविंश ब्राह्मण' के अनुसार

---

1 रा० 7 30 22 हल नामह वरूप्य हल्य तत्प्रभव भवेत ।
यस्या न विद्यत हल्य तेनाहल्येति विश्रुता ।

2 तत्रैव 1 49 32 हिमच्छिखरे रम्ये तपस्तेप महातपा ।

3 तदव 7 55 5 निवेशयामास तदा अभ्याशे गौतमस्य तु ।
पुरस्य सुकृत नाम वजयन्तमिति श्रुतम । (नि० सा०)

4 तदेव 7 55 1 । अनन्तर महाविप्रो गौतम प्रत्यपूरयत । नि० सा०)

5 ऋ० 1 116 10 1 117 13 1 118 6, 5 74 5, 7 68 6 7 71 5, 10 39 4 । 6 श० ब्रा० 4 1 5 1

7 रा० 5 24 11 सुकन्या च्यवन तथा । (म० वि०) । 8 ऋ० 10 61 1 3

9 ज ब्रा०3 121 128 । 10 श०ब्रा० 4 1 5 13 । 11 ए० ब्रा० 8 24 1

च्यवन साम मन्त्रो के द्रष्टा थे।[1] ये अश्विना के प्रिय थे। इन्होने जराग्रस्तता से मुक्ति के लिए साम मन्त्रो से स्तुति की तथा पुन युवावस्था को प्राप्त हुए।'

'रामायण' के अनुसार च्यवन भगुपुत्र हैं जो हिमालय पर तप करते थे।[3] इन्होने कालिन्दी को उसके गर्भ से पराक्रमी पुत्र सगर के होने की बात कही थी।[4] गर-सहित उत्पन्न होने के कारण उसका नाम सगर पडा।[5] इन्होंने शत्रुघ्न को इक्ष्वाकुवशी माधाता के विनाश की बात कही[6] तथा शस्त्र को छोडकर बाहर निकलने पर लवणासुर के वध का परामश दिया। बुध ने इल को पुरुषत्व के सम्बन्ध म इनसे परामश किया था।[8]

जमदग्नि— जमदग्नि 'ऋग्वेद' के कुछ सूक्तो के द्रष्टा है।[9] 'ऋग्वद' म उनका नाम आया है।[10] 'जमदग्नि राजा हरिश्चन्द्र वधास के यज्ञ मे अध्वयु थ।[11] इन्होंने गोवध का निषेध किया है।[12] ये अपनी सम्पत्ति का आधार चातुरात्रयाग बताते हैं और इनके वशज भी इसी से सफल हुए।[13] ये शुन शेप के यज्ञ मे पुरोहित थे।[14]

'रामायण' के अनुसार जमदग्नि ऋचीक के पुत्र थे जिन्होंने अपने पिता से वष्णव धनुष पाया था।[15] ध्यानावस्थित स्थिति मे इनका कार्तवीय अजुन ने वध कर दिया था।[16] इनके पुत्र जामदग्न्य परशुराम इसी क्रोध के कारण क्षत्रियो का

---

1 ष० ब्रा० 13 5 12, 19 3 6, 14 6 10 11 8,11

2 ता० ब्रा० 14 6 10, च्यवनो व दाधीचोऽश्विनो प्रिय आसीत। सोऽजीयत तमेतेन साम्नास्तु ष्येकयतात पुनयुवानमकुरुताम।
श० ब्रा० 4 1 5 11 सा (सुकन्या) होवाच हेऽश्विनौ। पति (च्यवन) नु मे पुनयवाण कुरुतम्।

3 रा० 1 70 31 भागवश्च्यवनो नाम हिमवन्तमुपाश्रित। नि० सा० 7 51 1 भगुनन्दन पप्रच्छ च्यवनम। 7 81 5 च्यवन भगुपुत्रम।

4 तदेव 1 70 32 36 (म० वि०)

5 तदेव 1 69 25 सहतन गरेणव सजात सगरोऽभवत। 6 तदेव 7 59 1 18

7 तदेव 7 59 10 23। 8 तदेव 7 81 1

9 ऋ० 9 62 3 62 16 18, 8 101 0 110, 10 137, 10 167

10 तदेव 3 62 18 8 101 8, 9 62 24 9 65 25। 11 ऐ०ब्रा० 7 16

12 ऋ० 8 101 15 प्र नु वोच चिकितुषे जनाय मा गामनागामदिति वधिष्ट।

13 तै० स० 7 1 9 1 प० ब्रा० 21 10। 14 ऐ० ब्रा० 7 16

15 रा० 1 74 22 ऋचीकस्तु महातजा पुत्रस्याप्रतिकमण।
पितुमम ददौ दिव्य जमदग्निमहात्मन।

16 तदव 1 74 23 अजुनो विदधे मत्यु प्राकृता बुद्धिमास्थित।

विनाश करते थे।[1] जमदग्नि के लिए 'भार्गव' शब्द का प्रयोग मिलता है।[2] इनकी पत्नी रेणुका थी।[3]

भरद्वाज—भरद्वाज 'ऋग्वेद' के कुछ सूक्तों के द्रष्टा हैं।[4] ये बृहस्पति के पुत्र तथा अंगिरा के पौत्र हैं।[5] 'ऋग्वेद' में इन्हें वाजिनेय अर्थात वाजिनि का पुत्र कहा है।[6] भरद्वाज दिवोदास के पुरोहित थे। 'काठक-संहिता' के अनुसार भरद्वाज ने प्रतर्दन को राज्य दिया।[8] 'सूर्यकान्त' के अनुसार यह आवश्यक नहीं कि दोनों स्थलों पर एक ही भरद्वाज का उल्लेख माना जाए तथा प्रतर्दन को दिवोदास का पुत्र माना जाए।[9] 'महाभारत' में भरद्वाज का वशाली से काशी जाने तथा सुदेव के पुत्र दिवोदास के पुरोहित बनने का उल्लेख है।[10] 'वायु-पुराण' के अनुसार भरद्वाज ब्राह्मण से क्षत्रिय हुए तथा उनका नाम द्वयमुष्यायण हुआ।[11]

भरद्वाज का नाम सप्तर्षियों में तो है परन्तु मूल गोत्रों में नहीं है।[12] ऐसा प्रतीत होता है कि मूल गोत्रों में अंगिरा के स्थान पर पुत्र तथा पौत्र गौतम और

---

1 तदेव 1 74 24 वधमप्रतिरूपं तु पितुः श्रुत्वा सुदारुणम्।
क्षत्रमुत्सादयन् रोषाज्जातं जातमनेकशः।

2 तदेव 1 50 11 पर (भू०) भार्गवेण-जमदग्निना।

3 तदेव 1 50 . 1 सगता मुनिना पत्नी भार्गवेणेव रेणुका।

4 सायण भाष्य ऋग्वेद भाग 3 पृष्ठ 2
त्वं ह्यग्ने सप्तोननेति बार्हस्पत्यो भरद्वाजः षष्ठं मण्डलमपश्यत्। इत्यनुक्रान्तत्वात् मण्डल द्रष्टा स एव भरद्वाज ऋषिः।
आर्षानुक्रमणी पृष्ठ 253
त्वं ह्यग्न इत्यनुक्रम्य षष्ठाख्य मण्डलं प्रति।
बार्हस्पत्यो भरद्वाज ऋषिरित्यवगम्यताम्॥

5 आ० ग० सू० 3 4 2, शा० गृ० सू० 4 10, ब० दे० 5 102

6 ऋ० 2 62 2 पर सायणभाष्य, वाजिनेय वाजिन्या पुत्रो भरद्वाजः।

7 प० ब्रा० 15 3 7

8 का० स० 21 10 एतेन ह स्म व भरद्वाज प्रतर्दन सनह्यनेति ततो वै स राष्ट्रमभवत्

9 सूर्यकान्त पूर्वोद्धृत कोश पृष्ठ 351

10 महा० अनुशासनपर्व 30

11 वा० पु० 99 157 58 तस्माद्दिव्यो भरद्वाजो ब्राह्मणात् क्षत्रियोऽभवत्।
द्वयामुष्यायणनामा स स्मृतो द्विपितृस्तु वै॥

12 द्र० प्रस्तुत शोध प्रबन्ध 196

भरद्वाज का नाम सप्तर्षियो मे आया।[1] "तैत्तिरीय ब्राह्मण" के अनुसार भरद्वाज ने सावित्राग्निचयन-यज्ञ करके तीन वेदो का ज्ञान प्राप्त किया, जिसका संकेत 'बृहदारण्यकोपनिषद' मे भी है,[3] जहा ये याज्ञवल्क्य से दार्शनिक वार्तालाप करते हैं।

'रामायण' मे भरद्वाज त्रिकालज्ञ, तप से प्राप्त दिव्यदृष्टियुक्त, तीक्ष्णव्रतधारी एव एकाग्रचित है।[4] इनका आश्रम चित्रकूट मे था।[5] इनसे कुछ दूरी पर राम ने इनके परामर्श पर आश्रम बनाया था।[6] इन्हें राम के वनवास का कारण [7] दशरथ की मृत्यु[8] तथा राम के वनवास के पश्चात उनके आगमन तक की घटनाए पूर्व ही ज्ञात थी।[9] इन्होंने राम को चित्रकूट का मार्ग बताया।[10] इन्होंने सेना एव अपने पुरोहित वसिष्ठ सहित आए भरत को राम विषयक शका निवृत्ति के उपरान्त आदरपूर्वक ठहराया।[11] इन्होने प्रात काल चित्रकूट वर्णन के उपरान्त भरत को कैकेयी पर आक्षेप न करने का परामर्श दिया[12] क्योंकि राम के वनवास से देव दानवो तथा ऋषियो का कल्याण होगा।[13] अयोध्या लौटते समय राम भी इनके आश्रम मे रहे। इन्होंने अपनी पुत्री देववर्णिनी का विवाह विश्रवा के साथ करवाया।[14]

'रामायण' मे एक अन्य भरद्वाज का उल्लेख है जो वाल्मीकि के शिष्य थे। जब वाल्मीकि के मुख से 'मा निषाद—' आदि पद्य निकला तो ये उपस्थित थे।[15] 'योगवासिष्ठ' से पता चलता है कि वाल्मीकि ने इन्हें आख्यान रूप मे 'रामायण' का अध्ययन कराया।[16]

'महाभारत' मे भी एक भरद्वाज का उल्लेख है जो गगा द्वार पर रहते थे। घृताची अप्सरा को देखकर इनका तेज पतो के द्रोण पर गिरने से द्रोण की उत्पत्ति

---

1 बी० जी० राहुरकर, पूर्वोद्धृत ग्रन्थ, पृष्ठ 111
2 तै० ब्रा० 3 10 9 11। 3 बृ० उ० 2 2 4
4 रा० 2 54 11 संशितव्रतमेकाग्र तपसा लब्धचक्षुषम। (म० वि०)
5 तदेव 1 1 26। 6 तदेव 2 48 25 29
7 तदेव 2 4■ 19 श्रुत तव मया चैव विवासन कारणम्।
8 तदेव 2 84 7 जाने दशरथवृत्तम्। 9 तदेव 6 112 4-15।
10 तदेव 2 49 1-7। 11 तदेव 2 84 85
12 रा० 2 86 1 28
13 तदेव 2 92 30 देवाना दानवाना च ऋषीणा भावितात्मनाम।
हितमेव भविष्यद्धि रामप्रव्राजनादिह॥ (म० वि०)
14 तदेव 7 3 3 भरद्वाजो महामुनि।
ददौ विश्रवसे भार्या स्वसुता देववर्णिनीम॥
15 तदेव 1 2 4। 16 योगवसिष्ठ 1 2

हुई।[1] एक अ य स्थल पर ये अपने को दण्डनीति का लेखक कहते हैं।[2]

भगु—'ऋग्वेद' एव परवर्ती साहित्य म भगु एक पुराकथात्मक यक्ति है।[3] ये जमदग्नि[4] एव च्यवन[5] के साथ एक-एक सूक्त के ऋषि हैं। ये 'वरुण' के पुत्र माने गए हैं।[6] उनका पतक नाम 'वारुणि' कुछ स्थलो पर मिलता है।[7] ऋग्व" मे केवल एक स्थान पर एकवचन मे भगु का उल्लख है,[8] अयत्र बहुवचन म अग्निपूजक के रूप मे अनेक भगुओ का उल्लेख है।[9] ऐतरेय-ब्राह्मण' मे प्रजापति के ततीयाश तेज से भगु की उत्पत्ति वर्णित है।[10] 'त्तित्तिरीय ब्राह्मण' म इ हे इ द्र के तेज से उत्प न कहा गया है।[11] 'भागवत पुराण' म ब्रह्मा का नवम मानस पुत्र[12] तथा 'वायु-पुराण' मे ब्रह्मा के मन से उत्प न माना गया है।[13] 'मनुस्मति' के अनुसार मानव भगु अग्नि मे उत्प न हुए।[14] भगुओ का अग्नि स्थापन प्रसग मे अनेकत्र पुरोहितो के रूपमे वणन है।[15] वे दशपेय-याग मे पुरोहित रहे।[16] इनका सम्ब ध आगिरसो के साथ है।[17] भगु एव आगिरसो का सम्ब ध इतना निकट का है कि 'शतपथ-ब्राह्मण मे च्यवन को भागव आगिरस कहा गया है।[18] इनका अग्नि

1 महा०, आश्वमेधिक-पव 130। 2 तदेव, शान्तिपव 57 3
3 सूयका त, पूर्वोद्घत कोश पष्ठ 357
4 ऋ० 9 65 जमदग्नि एव भृगु
5 तदेव 10 19 च्यवन एव भृगु
6 श० ब्रा० 11 6 1 1, तै० आ० 9 1, प० ब्रा० 18 9 2, नि० 2 17
7 ऐ० ब्रा० 3 34 त० ब्रा० 1 8 2 5
8 ऋ० 1 60 1
9 तदेव 1 58 6, 1 127 7, 1 143 4, 2 4 2, 3 2 4, 4 7 1
10 ऐ० ब्रा० 3 34 तस्य प्रजापते यद रेतस प्रथममुददीप्यत तदसावादित्योऽभवद यद द्वितीयमासीत तद् भगुरभवत् त वरुणो यगह्णीत तस्मात् स वारुणि ।
11 त० ब्रा० 1 8 2 5। 12 भा० पु० 3 12 23
13 वा० पु० 1 9 100
14 म० स्म० 5 1-2, 7 2
15 त० स० 4 6 2 5, 5 6 8 6, अथव० 4 14 5 म० स० 1 4 1
16 त० स 1 8 18, तै० ब्रा० 1 8 2 5 प० ब्रा० 18 9 2
17 त० स० 1 1 7 2, म० स० 1 1 8 वा० स० 1 18 त० ब्रा० 1 1 4 8, 3 2 7 6
श० ब्रा० 1 2 1 13 ऋ० 8 35 8, 8 43 13, 10 14 6
18 श० ब्रा० 4 1 5 1

के साथ सम्बन्ध रहा है। ये पथिवी पर यज्ञ की स्थापना और प्रसार के निमित्त समिद्ध करत दीख पडते हैं। बाद के वैदिक साहित्य मे भगु एक वग विशेष का प्रतिनिधिभूत ऋषि बन गया।[1] भृगु का मूल √भ्रस्ज् है।[2] मक्मनल इसे √भ्राज् से निष्पन्न मानते हैं, जिससे भगु शब्द का अथ प्रकाशमान् बनता है।[3]

'रामायण के अनुसार महर्षि भगु ने सगर तथा उनकी दो पत्नियो को उनके तप से प्रसन्न होकर क्रमश एक तथा साठ हजार पुत्र होने का वर दिया था।[4] हनुमान को आश्रम मे उपद्रव करने के कारण भृगु तथा अगिरस वशजो ने शाप दिया था।[5] भगु एव अगिरा दीप्ति के लिए विख्यात है।[6] इनका एक साथ निर्देश इनके सम्बन्ध का सूचक है। विष्णु ने दत्यो को अभय प्रदान करने पर इनकी पत्नी का वध कर दिया। इस पर क्रुद्ध होकर भगु ने उन्हे मत्युलोक म जन्म लेने का शाप दिया तथा उनकी आराधना भी की।[7] राजा निमि के यज्ञ मे अत्रि और अगिरा के साथ भगु भी आए थे।[8] इन्होने वसिष्ठ के शाप से विदेह हुए निमि को देवताओ से पुन देहयुक्त करवाया था।[9]

मेधातिथि काण्व—इनके लिए ऋग्वेद मे मेधातिथि तथा मेध्यातिथि नाम मिलत हैं।[10] ये कई वदिक सूक्तो क द्रष्टा हैं।[11] ऋग्वेद' के एक आख्यान के अनु

---

1 अथव० 5 19 1 भृगु हिंसित्वा स जया वहव्या पराभवन्।
ऐ ब्रा०2 20 7 याश्चेमा पूर्वेद्यु वसतीवर्यो गह्यन्ते याश्च प्रातरेकध नास्ता भृगुरपश्यत।

2 गो० ब्रा० 1 1 3 यद्रेत आसीत तदभृज्यत यदभज्यत्तस्मादभृगु समभवत। अचिषि भृगु सम्भूव। भृगु भ्रज्यमानो न देहे।
ऋ० 1 127 पर सायण भाष्य, भगव भ्रष्टार हविषा पापाना वा।
1 143 1 पर सायण भाष्य भगव पापस्य भ्राजका

3 मक्डानल पूर्वोदधत ग्रन्थ, पष्ठ 364

4 रा० 1 37 6 12

5 तदेव 7 36 30 ततो महषय क्रुद्धा भग्वगिरसवशजा।
शेपुरेन रघुश्रेष्ठ नातिक्रुद्धातिमन्यव॥

6 तदेव 2 29 27 भृग्वगिर सम दीप्तया।

7 तदेव 7 50 11 17। 8 तदेव 7 55 9 (नि० सा०)

9 तदेव 7 57 12 (नि० सा०)

10 ऋ० 8 8 20, 1 36 10 11, 17, 8 1 30, 2 40, 33 4, 49 5, 51 1 9 43 4

11 तदव 1 12 23, 8 1 3, 8 22 23, 9 41 43

सार इन्द्र इनके समक्ष मेषरूप मे उपस्थित हुए थे।[1] यह कथा अयत्र भी मिलती है।[2] सोमसवन के समय इन्द्र को मेधातिथि का मेष कहा गया है। 'रामायण' मे इनके विषय मे अधिक विवरण प्राप्त नही होते। कवल इनका पूव दिशा मे हाने का सकेत मिलता है।[3] मेध्यातिथि कण्व के वशज हैं क्योकि इनका पतक नाम काण्व है।[4] इनका नाम कण्वा क साथ आता है।[5] या 'मेध्यातिथि' का अथ है—'वह जिसके याज्ञिक अतिथि हा अर्थात अग्नि।[6] 'मत्स्य पुराण' के अनुसार भरद्वाज के पुत्र भुवमन्यु के बहत्क्षत्र महावीय नर तथा गग हुए। बहत्क्षत्र के हस्ति नामक पुत्र से अजीमीढ, द्विमीढ तथा पुरुमीढ पुत्र हुए। अजीमीढ के केशिनी के गभ से कव, हुए कण्व से मेधातिथि हुए।[7] इससे काण्वयान ब्राह्मणो की उत्पत्ति हुई।[8]

वसिष्ठ—वदिक परपरा म वसिष्ठ पौरोहित्य की विशेषताओ से सपन्न व्यक्ति हैं। ये ऋग्वेद के सप्तम मण्डल क ऋषि हैं।[9] वसिष्ठा का स्थान इतना महत्त्वपूण था कि ब्राह्मण ऋत्विक का चुनाव इनम म ही किया जाता था।[10] इनका नाम सप्तर्पिया और गोत्रर्षिया म मिलता है। दाशराज्ञ-युद्ध[11] वदिक काल म ऐतिहासिक एव राजनतिक दष्टि से महत्त्वपूण है। इस युद्ध का सबध मुख्यत वसिष्ठ

1 तदव 8 2 40 इत्था धीवन्तमद्रिव काण्व मेध्यातिथि मेषो भूतोऽभियन्नय।
प० ब्रा० 1 1 मेधातिथि हि काण्वायनि मेषो भूत्वा जहार।
ऋ० 1 51 । पर सायण भाष्य

2 ज० ब्रा० 2 79, प० ब्रा० 1 1, श० ब्रा० 2 3 4 18, तै० आ० 1 12 3

3 रा० 7 1 2 कण्वो मेधातिथे पुत्र पूवस्या दिशि ये श्रिता।

4 ऋ० 8 2 40। 5 तदेव 1 36 10 11

6 अथव० 4 29 6 पर सायण भाष्य मेधातिथिम—मेध्या यज्ञार्हा अतिथयो यस्मिन त मेधातिथिमेन ऋषिम।

7 म० पु० 49 34 45

8 तत्र 49 46 47 अजीमीढस्य केशिन्या कण्व समभवत किल।
मेधातिथि सुतस्तस्य तस्मात्काण्वायना द्विजा।

9 ऋग्वेद सायण भाष्य, भाग 3, पष्ठ 263
सप्तम मण्डल वसिष्ठ अपश्यदिति उक्तत्वात मण्डल द्रष्टा वसिष्ठो ऋषि।
आर्षानुक्रमणी, पृष्ठ 254 अग्नि नर इति त्वेतत्सप्तम मण्डल प्रति।
ऋषि वसिष्ठो विज्ञेयो मित्रावरुणयो सुत॥

10 वी० जी० राहूरकर, पूर्वोद्धत ग्रन्थ, पृष्ठ 114

11 ऋ० 7 18 7 33 7 83
द० उमेश चन्द्र शर्मा विश्वामित्रज एण्ड वसिष्ठज पृष्ठ 269 305

से है, क्योकि ये सुदासो के पुरोहित थे ।[1] 'ऐतरेय ब्राह्मण' से पता चलता है कि वसिष्ठ सुदास पजवन के पुरोहित एव अभिषेक्कर्त्ता थे ।[2] इन्होंने राजा की महत्ता बढाने के लिए सोमयाग की एक विशेष विधि बतलाई । 'रामायण' मे वसिष्ठ दशरथ के पुरोहित हैं ।[3] ये इक्ष्वाकुवशी रघुपुत्र सौदास के पुरोहित भी रहे हैं ।[4] वसिष्ठ ने सौदास का यज्ञ किया था ।[5] सौदास ही कल्मापपाद थे[6], जो शापवश नर भक्षी राक्षस हो गए थे । वसिष्ठ ने शाप देते समय इन पर जल छोडा, जिससे इनके पर विचित्रवर्ण के हो गए । इस प्रकार सौदास ही 'कल्मापपाद' के नाम से विख्यात हुआ ।[7] इसी राजा के यज्ञ के स्थान पर वाल्मीकि का आश्रम था ।[8] यास्क विश्वामित्र को सुदास का पुरोहित मानते हैं ।[9] दोनो का एक ही राजा का पुरोहित होना भिन्न भिन्न काल मे ही सभव है।

वसिष्ठ तथा विश्वामित्र का वैर भी प्रसिद्ध है । सायण के अनुसार वसिष्ठ-द्वेषिणी ऋचाओ को वसिष्ठवशी नही सुनते है ।[10] आचार्य दुर्ग 'लोध' शब्द की व्याख्या करने की अनिच्छा व्यक्त करते है क्योकि यह शब्द वसिष्ठ-द्वेषिणी ऋचाओ मे है तथा वे स्वय कपिष्ठल-वासिष्ठ हैं ।[11] वसिष्ठ गोत्र के व्यक्ति का विवाह विश्वामित्र गोत्र के व्यक्ति से आज तक नही होता ।[12] विश्वामित्र भी सुदास का पुरोहित रहा। विश्वामित्र ने सुदास को विपाश और शुतुद्री नदी

1 ऋ० 7 18 6 । 2 ऐ० ब्रा० 8 21

3 रा० 1 7 5 म० वि० 1 8 6 1 68 4, 2 61 3 6 116 55, 7 65 4, 7 92 2

4 तदेव 7 57 9 युष्माक पूर्वको राजा सौदासस्तस्य भूपते ।

5 तदेव 7 57 18 अश्वमेध महायज्ञ त वसिष्ठोऽप्यपालयत ।

6 तदेव 2 102 23 रघोस्तु पुत्रस्तेजस्वी प्रवृद्ध पुरुषादक ।
कल्मापपाद सौदास इत्येव प्रथितो भुवि ।।

7 रा० 7 57 32 33 तेनास्य राक्षसो पादो कल्मापता गतौ ।
तदा प्रभृति राजासौ सौदास सुमहायशा ।।
कल्मापपाद सवृत्त ख्यातश्चैव तथा नृप ।

8 तदेव 7 57 39 40

9 नि० 2 24 विश्वामित्र ऋषि सुदास पैजवनस्य पुरोहितो बभूव ।

10 ऋ० 3 53 21 24 पर सायण भाष्य
इमा अभिशापरूपा ता ऋचो वसिष्ठा न शृण्वन्ति ।

11 नि० 4 2 पर दुर्गवृत्ति, यस्मिन निगमे एष शब्द सा वसिष्ठद्वेषिणी ऋक । अह च कपिष्ठलो वासिष्ठ । अतस्ता न निब्रवीमि ।

12 वी० जी० राहूरकर पूर्वोद्धृत ग्रन्थ पृष्ठ 123

से पार करवाया था।[1] दाशराज्ञयुद्ध के समय वसिष्ठ सुदास के पुरोहित थे। 'ऋग्वेद' मे वसिष्ठ-पुत्र शक्ति से विश्वामित्र की शत्रुता का स्वल्प विवरण मिलता है[2], जिसके अनुसार विश्वामित्र ने वाकशक्ति प्राप्त की तथा सुदास् के परिचरो द्वारा शक्ति का वध कराया। इसके बाद 'तैत्तिरीय संहिता'[3] तथा पचविश-ब्राह्मण'[4] मे वसिष्ठ पुत्र का सुदासो द्वारा वध तथा उन पर वसिष्ठ की विजय का उल्लेख है। यहा स्वय वसिष्ठ का सुदास् से विरोध नही बताया है। इसके विपरीत वसिष्ठ सुदास पजवन के अभिषेककर्त्ता एव पुरोहित थे।[5] इससे यही प्रतीत होता है कि पहले कभी विश्वामित्र ने सुदास के पुरोहित पद को ग्रहण किया था। सुदास के अस्त होने पर ये अपनी पूर्वावस्था मे आ गए और इसके बाद वसिष्ठ पुरोहित हुए। धर्मिक साहित्य मे यत्र-तत्र वसिष्ठ तथा विश्वामित्र की शत्रुता के सकेत प्राप्त हैं।[6] 'रामायण' के अनुसार वसिष्ठ तथा विश्वामित्र के सघर्ष का कारण शबला नाम्नी कामधेनु है। विश्वामित्र वसिष्ठ से इसे मॉगते हैं और न देने पर उनका युद्ध होता है जिसमे वसिष्ठ ब्रह्मबल से विश्वामित्र को पराजित करते हैं।[7] यहा उल्लेखनीय है कि विश्वामित्र पहले राजा थे, बाद मे तप से उन्होने ब्रह्मर्षि पद पाया।

'महाभारत' मे भी इनके वैर का उल्लेख मिलता है। वसिष्ठ के पुत्र शक्ति की पत्नी अदृश्यन्ती से पराशर नामक पुत्र हुआ उसे अपनी माता से यह ज्ञात हुआ कि उसके पिता शक्ति को विश्वामित्र द्वारा नियुक्त राक्षस ने मारा। पराशर उसके विनाश के लिए एक सत्र का आयोजन करना चाहता था, जिससे पितामह वसिष्ठ उसे रोकते हैं। यह राक्षस इक्ष्वाकुवशी कल्माषपाद था, जिसके शरीर मे विश्वामित्र द्वारा नियुक्त किंकर ने प्रवेश किया था।[8]

ऋग्वेद[9], निरुक्त[10], आर्षानुक्रमणी[11], बृहद्देवता[12] रामायण[13], भागवत-पुराण[14] तथा नरसिंह-पुराण[15] में वसिष्ठ के वरुण तथा उर्वशी के पुत्र होने का उल्लेख है।[16]

---

1 ऋ० 7 18 19 नि० 2 24, ऐ० ब्रा० 8 21

2 ऋ० 3 53 15, 16, 21 24। 3 तै० स० 7 4 7 1

4 प० ब्रा० 4 7 3, 8 2 3, 19 3 8, 21 11 2

5 ऐ० ब्रा० 7 34 9, 8 21 11, शा० श्रौ० सु० 16 11 14

6 द्र० प्रस्तुत शोध प्रबध पष्ठ 232। 7 रा० 1 51 64

8 महा० वनपर्व 70 79 83। 9 ऋ० 7 33 11। 10 नि० 5 11

11 आर्षानुक्रमणी, पृष्ठ 244। 12 बृ० दे० 5 149-155

13 रा० 7 57 (नि० सा०)। 14 भा० पु० 6 18 5 6

15 न० पु० 6 35 36। 16 द्र० प्रस्तुत शोध प्रबध, पृष्ठ 234

'रामायण' के अनुसार ये ब्रह्मा पुत्र हैं।[1] एक बार राजा निमि तथा वसिष्ठ परस्पर शाप से देहरहित हो गए। शरीर रहित होने पर वसिष्ठ ब्रह्मा की शरण मे गए, जहा ब्रह्मा ने इन्हें वरुण द्वारा कुम्भ म छोडे गए तेज म प्रविष्ट होने को कहा। इस प्रकार मित्र तथा वरुण के तेज से युक्त कुम्भ स अगस्त्य एव वसिष्ठ का प्रादुर्भाव हुआ। इनके जन्म लेते ही इक्ष्वाकु ने इनका पुरोहित के रूप म वरण किया था।[2]

तैत्तिरीय-संहिता[3] एव 'शतपथ-ब्राह्मण'[4] के अनुसार वसिष्ठ ही ब्रह्मा पुरोहित का कार्य कर सकते थे। बृहद्देवता के अनुसार अन्य ऋषि इन्द्र को प्रत्यक्ष नही देख सकते, केवल वसिष्ठ ही देख सकते हैं।[5] 'रामायण' म पुरोहित के रूप मे उन्होने दशरथ का यज्ञ[6], पुत्रो के नामकरणादि संस्कार[7], भरत के साथ जाकर राम से राज्य ग्रहण हेतु प्रार्थना[8], राम का अभिषेक[9], राम का यज्ञ[10] तथा महाप्रस्थान के समय विधि-पूर्वक धार्मिक क्रियाए करवाई थी।[11] वसिष्ठ भूलोक मे कही भी यज्ञ करवाने मे समर्थ माने गए हैं।

'महाभारत' के अनुसार वसिष्ठ की पत्नी अरुन्धती हैं।[12] अरुन्धती का नाम तैत्तिरीय आरण्यक' म नक्षत्रो म मिलता है।[13] 'रामायण' म भी अरुन्धती के वसिष्ठ-पत्नी होने का सकेत मिलता है, जो वसिष्ठ के क्रोध के कारण नक्षत्र पद को प्राप्त हुई।[14] एक अन्य स्थल पर अगस्त्य अरुन्धती की सीता स तुलना करते हैं।[15]

'रामायण' मे वसिष्ठ के सौ पुत्रो का उल्लेख है।[16] य त्रिशकु के यज्ञ म अस

---

1 रा० 1 64 15 ब्रह्मपुत्रो वसिष्ठ ।
2 रा० 7 57 7 (नि० सा०)
3 तै० स० 3 2 5 ततो वसिष्ठ पुरोहिता प्रजा प्राजायन्त तस्माद् वासिष्ठो ब्रह्मा कार्य प्र व जायत ।
4 श० ब्रा० 12 6 1 41 । 5 बृ० दे० 5 156 159
6 रा० 1 17 11 12 । 7 तदेव 1 17 11-12 । 8 तत्रैव 2 70
9 तदेव 2 102 । 10 तदेव 6 116 55-65 । 11 तदेव 7 100
12 महा० आदिपर्व 1 99 6 यथा वैश्रवणे भद्रा वसिष्ठे चाप्यरुन्धती ।
वनपर्व 113 23 अरुन्धतीव सुभगा वसिष्ठ लोपामुद्रा वा यथा ह्यगस्त्यम ।
13 तै० आ० 3 2 9 ऋषिणामरुन्धती ।
14 रा० 5 24 10 अरुन्धती वसिष्ठ रोहिणी शशिन यथा ।
5 31 7 वसिष्ठ कोपयित्वा त्व नासि कल्याण्यरुन्धती ।
15 तदेव 3 1[illegible] 7 श्लाघ्या च व्यपदेश्या च यथा देवी अरुन्धती ।
16 तदेव 1 57 1 ऋषिपुत्रशतम ।

मयता व्यक्त करते हैं, जिसे वसिष्ठ पहले ही अशक्य कह चुके हैं।[1] ये त्रिशंकु को चाण्डाल होने का शाप देते हैं।[2] त्रिशंकु सशरीर स्वर्ग जाने का यज्ञ विश्वामित्र से करवाते हैं। जब वसिष्ठ के पुत्रों ने विश्वामित्र का अपमान किया तो विश्वामित्र उन्हें कालपाश में बांधकर विभिन्न योनियों में जाने का शाप देते हैं।[3]

वामदेव—परंपरा के अनुसार ये 'ऋग्वेद' के चतुर्थ मण्डल के ऋषि हैं।[4] 'ऋग्वेद' में एक बार इनका उल्लेख है।[5] एक अन्य स्थल पर ये अपने को गोतमपुत्र कहते हैं।[6] याजुष-संहिताओं के अनुसार ये उक्त मण्डल के चतुर्थ-सूक्त के द्रष्टा हैं।[7] वायु-पुराण' के अनुसार ये गौतम राहूगण के पुत्र हैं, जो आंगिरस शाखा के हैं।[8] गौतम के पुत्र वामदेव एवं नोधा हैं।[9] 'बृहद्देवता' में वामदेव के संबंध में दो बड़े विचित्र विवरण प्राप्त होते हैं।[10] एक में कहा गया है कि जब वामदेव कुत्ते की अंतड़ियां पका रहे थे तो इन्द्र श्येन के रूप में प्रकट हुए। अन्य में कहा गया है कि वे संघर्ष में इन्द्र को जीतकर अन्य ऋषियों को सौंप देते हैं। वैदिक-ग्रन्थों में जहां वामदेव का विवरण प्राप्त होता है,[11] वहां वे इन कथाओं के नायक नहीं हैं। ऐतरेय-आरण्यक[12] एवं उपनिषद् में वामदेव के जन्म के पूर्व ज्ञान प्राप्त कर लेने का उल्लेख है।[13] मनुस्मृति के अनुसार वामदेव उचित-अनुचित का विचार न कर सके। उन्होंने अपने जीवन की रक्षा के लिए कुत्ते की अंतड़ियां पका खाई।[14]

---

1 तदेव 1 57 4 अशक्यमिति चोवाच वसिष्ठो भगवानृषि ।
त वयं व समाहर्तु क्रतुं शक्ता कथं तव ॥

2 तदेव 1 57 9 शेषु परम सक्रुद्धाश्चाण्डालत्वं गमिष्यसि ।

3 तदेव 1 58

4 आर्षानुक्रमणी, पृष्ठ 248 त्वा ह्यग्ने सम्मित्यादि चतुर्थमण्डलं प्रति ।
गौतमो वामदेवो ऋषिरित्यवगम्यताम् ॥

ऋग्वेद सायण भाष्य, पृष्ठ 492, वामदेवो चतुर्थे मण्डले पद्यानुवाका
मन्त्रद्रष्टा वामदेवऋषि ।

तदेव पृष्ठ 718 चतुर्थमण्डलं सम्यक वामदेवेन वीक्षितम् ।

5 ऋ० 4 16 18। 6 तदेव 4 4 11 तन्मा पितुर्गोतमादन्वियाय।

7 का० स० 10 5 म० स० 2 1 11 3 2 6

8 वा० पु० 59 90 100। 9 ऋ० 1 62 13

10 बृ० दे० 4 126, 4 131

11 ऋ० 4 24 4 27, अथर्व० 18 3 15 16, ए० ब्रा० 4 30 2, 6 18 1 2, प० ब्रा० 13 9 27, ए० आ० 2 5 1, बृ० उ० 1 4 25

12 ऐ० आ० 2 5 1। 13 ऐ० उ० 2 5। 14 म० स्म० 10 106

ये देवताओं द्वारा प्रदत्त नाम के एक विशेष ऋषि थे।[1]

'रामायण' में दशरथ के ऋत्विजों एवं मन्त्रियो मे इनका नाम भी आता है, जो प्रमुख अवसरों पर सबके साथ उपस्थित होते हैं।[2]

विश्वामित्र—परपरा के अनुसार ये 'ऋग्वेद' के तृतीय मण्डल के ऋषि हैं।[3] 'ऋग्वेद'[4] के समान इन्हें 'रामायण'[5] मे कुशिक का पुत्र कौशिक कहा गया है। इन्हें गाधि के पुत्र एव कुशनाभ के पौत्र भी कहा गया है।[6] गाधि तथा कुशिक अभिन्न है। यास्क ने इनके पिता कुशिक को राजा कहा है[7], जो बाद मे ब्राह्मण बन गए। 'ऋग्वेद' मे उनके राजा होने का उल्लेख नहीं है। पंचविंश-ब्राह्मण' मे विश्वामित्र को राजा कहा गया है।[8]

उमेशचन्द्र शर्मा अनुभव करते हैं कि विश्वामित्र की कथाओं की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण 'रामायण' है।[9] इसमे विश्वामित्र के सभी पूर्वजो का उल्लेख है। विश्वामित्र स्वय अपनी वशावली का वर्णन इस प्रकार करते हैं। ब्रह्मा के पुत्र कुश नामक राजा थे, जिनके वदर्भी नाम्नी रानी के गर्भ से कुशाम्ब, कुशनाभ, आधूतरजस् और वसु नामक पुत्र हुए। घृताची नामक अप्सरा से राजर्षि कुशनाभ के सौ कन्याएं उत्पन्न हुई। इन्ही मे गाधि नामक पुत्र उत्पन्न हुए। विश्वामित्र कहते हैं कि गाधि मेरे पिता है और कुशवश मे उत्पन्न होने के कारण मैं कौशिक भी कहलाता हू।[10] इनकी भगिनी का नाम सत्यवती था जिसका विवाह ऋचीक के साथ हुआ था।[11] पति की मृत्यु के पश्चात सत्यवती सशरीर स्वर्ग को गई।

---

1 ए० ब्रा० 2 2 1 त देवा अब्रुवन्नय व स सर्वेषा वाम इति तस्माद्वामदेव इत्याचक्षत।

2 रा० 1 7 4 (म० वि०) 1 8 6, 1 68 4, 2 61 3, 6 116 55, 7 65 4, 7 92 2, 7 87 2

3 आर्षानुक्रमणी पृष्ठ 246 सोमस्य मेत्युपक्रम्य तृतीय मण्डल प्रति। विश्वामित्र इति ज्ञेय स च गाधिसुत स्मृत।

4 ऋ० 3 33 5, 3 53 7, 3 53 12। 5 रा० 1 33 6 1 67 15

6 तदेव 1 66 24, 1 67 6। 7 नि० 2 25 कुशिको राजा बभूव।

8 प० ब्रा० 21 12 2। 9 उमेशचन्द्र शर्मा, पूर्वोद्धृत ग्रन्थ पृष्ठ 69

10 रा० 1 33 6 स पिता मम काकुत्स्थ गाधि परमधार्मिक। कुशवशप्रसूतोऽस्मि कौशिको रघुनन्दन॥

11 तदेव 1 33 7 पूर्वजा भगिनी चापि मम राघव सुव्रता। नाम्ना सत्यवती नाम ऋचीके प्रतिपादिता।

सत्यधर्म मे स्थित, पतिव्रता सत्यवती नदियो म श्रेष्ठ कौशिकी है।[1] ऋचीक तथा सत्यवती के तीन पुत्र हुए—जमदग्नि, शुन शेप तथा शुनक।[2] शुन शेप विश्वामित्र को मातुल कहते हैं।[3] 'महाभारत' के अनुसार जमदग्नि के पिता ऋचीक ने विश्वामित्र की भगिनी गाधिपुत्री सत्यवती से विवाह किया था।[4] 'ऐतरेय ब्राह्मण' के अनुसार विश्वामित्र ने अजीगर्त के पुत्र शुन शेप को दत्तक पुत्र बनाया और उसका नाम देवरात रखा।[5] उन्होंने अपने सौ पुत्रो को उसे अपना ज्येष्ठ भ्राता मानने को कहा जिसे उन्होने स्वीकार नही किया। 'रामायण' मे ऋचीक के मध्यम पुत्र शुन शेप को राजा अम्बरीष यज्ञपशु चोरी होने पर खरीद लाता है।[6] शुन शेप अपने मातुल विश्वामित्र से अपनी रक्षा की प्रार्थना करता है। विश्वामित्र अपने मधुच्छन्दादि[7] सौ पुत्रो से यज्ञ पशु बनने को कहते हैं। उनके अस्वीकार करने पर वसिष्ठ के सौ पुत्रों के समान श्वमासभोजी होकर चाण्डाल बने रहने का शाप देते हैं। वे शुन शेप को दो गाथाए बताकर उसकी रक्षा करते हैं।[8] 'विष्णु पुराण' मे भी विश्वामित्र के सौ पुत्रो तथा शुन शेप को दत्तक पुत्र मानने का उल्लेख है।[9] वसिष्ठ के साथ विश्वामित्र का संघर्ष हुआ। ये पहले राजा थे। जब वसिष्ठ इन्हें ब्रह्मशक्ति से पराजित कर देते हैं, तब ये तप द्वारा क्रमश राजर्षि महर्षि तथा ब्रह्मर्षि पद प्राप्त करते हैं।[10] 'ऋग्वेद' मे उनका राजा के रूप मे उल्लेख न होने के कारण बहुत से विद्वान उनके राजा होने के विषय म सदेह व्यक्त करते हैं।[11]

'रामायण' म एक अन्य कथा[12] के अनुसार त्रिशकु एक ऐसा यज्ञ करना चाहता था, जिससे सशरीर स्वर्ग जाया जा सके। वसिष्ठ तथा उनके पुत्रो ने उसे करना स्वीकार नहीं किया। वसिष्ठ-पुत्रो के शाप से वह चाण्डाल बन गया। विश्वामित्र

---

1 तदेव 1 33 8 सशरीरा गता स्वर्ग भर्तारमनुवर्तिनी।
कौशिकी परमोदारा प्रवृत्ता च महानदी॥
1 33 11 सा तु सत्यवती पुण्या सत्ये धर्मे प्रतिष्ठिता।
पतिव्रता महाभागा कौशिकी सरितावरा॥

2 तदेव 1 33 1 1

3 तदेव 1 62 3 तप्यन्तमृषिभि साध भातुल परमातुर।

4 महा० आदिपर्व 67, वनपर्व 115

5 ऐ० ब्रा० 7 18 33 अधीयत देवरातो रिक्थयोरुभयो ऋषि।
जह्नूना चाधिपते देवदेव च गाथिनाम॥

6 रा० 1 60 17 तदेव 1 61 12 मधुच्छन्दादय सुता।

8 तदेव 1 61 19 वि०पु० 4 7 16 । 10 द्र०प्रस्तुत शोध प्रबध, पृष्ठ 232

11 कीथ एव मक्डानल, वैदिक इण्डक्स, भाग 2, पृष्ठ 347

12 रा० 1 57-59

ने इस यज्ञ को करना स्वीकार किया। देवताओं और वसिष्ठ द्वारा यज्ञ का विरोध करने पर भी इन्होंने यह यज्ञ किया और त्रिशकु को सशरीर स्वर्ग भेज दिया। इन्द्र ने त्रिशकु को सशरीर स्वर्ग आया देखकर उसे नीचे गिरा दिया। इससे क्रुद्ध होकर इन्होंने नूतन स्वर्ग तथा देवसर्ग निर्माण का निश्चय किया। देवताओं के अनुरोध पर वे अपने कार्य से विरत हुए। यह कथा पुराणों म भी प्राप्त होती है।[1]

'रामायण' के पात्र के रूप में विश्वामित्र दशरथ के पास जाकर राक्षसों के विनाश के लिए राम एव लक्ष्मण को मांगते हैं।[2] पहले दशरथ विश्वामित्र की इस प्रार्थना को अस्वीकार कर देते हैं,[3] परन्तु उनके कुपित होने पर दोनों को उनके साथ भेज देते हैं।[4] विश्वामित्र इन दोनों को बहुत सी कथाए सुनाते हैं दिव्यास्त्र प्रदान करते हैं[5] तथा उनसे राक्षसों का सहार करवाते हैं। ये राम तथा लक्ष्मण के साथ जनक के पास भी गए[6] जहा धनुर्भंग के पश्चात चारों पुत्रों का विवाह सम्पन्न हुआ।[7] यहा ये विवाहकर्म म वसिष्ठ का सहयोग करते हैं[8] जिसके पश्चात् ये उत्तर-पर्वत हिमालय की ओर चले गए।[9]

किष्किन्धा-काण्ड म बाली-पत्नी तारा लक्ष्मण को विश्वामित्र के घृताची नामक अप्सरा में आसक्त रहकर दस वर्षों को एक दिन मानने की बात कहती है।[10] टीकाकारों के अनुसार यहा मेनका को ही घृताची कहा गया है।[11] घृताची नाम की अप्सरा विश्वामित्र के पितामह कुशनाभ की पत्नी रही जिसने सौ कन्याओं को जन्म दिया।[12] 'बालकाण्ड' के अनुसार भी मेनका ही दस वर्षों तक विश्वामित्र के आश्रम में रही।[13] मेनका मे भोगासक्त रहने के कारण विश्वामित्र

---

1 ब्रह्मा० पु० 8 97, ह० पु० 1 12

2 रा० 1 18। 3 तदेव 1 19। 4 तदेव 1 21 1 3। 5 तदेव 1 26

6 रा० 1 49। 7 तदेव 1 66। 8 तदेव 1 72

9 तदेव 1 73 1 आपृष्ट्वा तौ च राजानौ जगामोत्तरपर्वतम।

10 तदेव 4 34 7 घृताच्या किल सक्त दशवर्षाणि, लक्ष्मण ॥
अहोऽमन्यत धर्मात्मा विश्वामित्रो महामुनि ॥

11 तदेव 4 34 7 पर (ति०) घृताचीति मेनकाया नामान्तरम।
(भू०) घृताचीशब्देन मेनकवोच्यते।

12 तदेव 1 31 9 कुशनाभस्तु राजर्षि कन्याशतमनुत्तमम।
जनयामास धर्मात्मा घृताच्या रघुनन्दन।

13 तदेव 1 62 8 तस्या वसन्त्या वर्षाणि पच-पच च राघव।
विश्वामित्राश्रमे सौम्ये सुखेन व्यतिचक्रमु ॥

ने दस वर्षों के समय को एक रात्रि समझा ।[1]

शुन शेप—शुन शेप 'ऋग्वेद' के कुछ सूक्ता के ऋषि हैं ।[3] 'ऋग्वेद' म इनका तीन बार उल्लेख है ।[4] 'काठक-सहिता'[5] एव 'ऐतरेय-ब्राह्मण'[6] के अनुसार वे अजीगत के पुत्र थे, जिन्हें विश्वामित्र ने दत्तक पुत्र बनाया था और इनका नाम देवरात रखा। 'रामायण' मे एक आख्यान[7] के अनुसार वे ऋचीक के मध्यम पुत्र हैं, अजीगत के नहीं। विश्वामित्र की भगिनी सत्यवती इनकी माता थी। मातुल विश्वामित्र इन्हे दो गाथाए देकर इनकी रक्षा करते हैं ।[8] सम्भवत ये गाथाए 'ऋग्वेद' मे सुरक्षित हैं ।[9] शुन शेप पहले ऋषि नही थे। इन्होंने विश्वामित्र का दत्तक पुत्र बनने के पश्चात अपने कार्यों मे ऋषित्व पाया।[10] इसी सम्बन्ध के कारण ये ऋग्वेद के ऋषि हैं ।[11] अथर्ववेद के अनुसार ये वरुण पाशा मे मुक्ति पाकर सुकृत लोक जाना चाहते हैं[12] यजुष-सहिताओ के अनुसार ये वरुण द्वारा गृहीत थे और बाद म वरुण पाशा से मुक्त हुए ।[13]

---

1 तदेव 1 62 11 अहो रात्रापदेशेन गता सम्वत्सरा दश ।

2 ऋ० 1 24 30 9 3

3 आर्षानुक्रमणी, पष्ठ 242 कस्य नूनमुपक्रम्य सूक्ताना सप्तक प्रति ।
आजीगर्ति शुन शेप ऋषिरित्यवगम्यताम ॥

4 ऋ० 1 24 3, 1 24 12 5 2 7

5 का० स० 19 11 27

6 ऐ० ब्रा० 7 3, सर्वानुक्रमणी पष्ठ 6, आजीगर्ति शुन शेपो स कृत्रिमो वश्वा
मित्रो देवरात ।

7 रा० 1 60

8 द्र० प्रस्तुत शोध प्रबन्ध पष्ठ 239 । 9 ऋ० 1 24

10 एच० एल० हरि अप्पा ऋग्वदिक लजेण्डज थ्रू द एजेज पष्ठ 230

11 उमेशचन्द्र शर्मा पूर्वोद्धृत ग्रन्थ, पृष्ठ 153

12 अथव० 7 83 4

13 त० स० 5 2 1 3, का० स० 19 11, म० स० 3 2 1

पचम अध्याय

रामायणगत वैदिक आख्यान

'रामायण म अधोलिखित वदिक आख्यान वर्णित हैं—

1 वेद सबधी आख्यान

इन्द्र तथा वत्र—'ऋग्वेद मे अनेक स्थलो पर इन्द्र तथा वत्र के युद्ध का उल्लेख है[1] जिसमे इन्द्र वत्र को मारते हैं। इस युद्ध मे इन्द्र अपने वज्र नामक अस्त्र का प्रयोग करते है। वर्षा एव नदियो के अवरोधक वत्र को मारकर इन्द्र वर्षा एव नदियो को प्रवाहित करते हैं। वत्र को मारकर इन्द्र को इतना यश मिला कि इनका नाम वत्रहन हो गया। शतपथ-ब्राह्मण मे इन्द्र को त्वष्टा के वज्र से उत्पन्न बताया गया है। यज्ञ करते समय आहुति देने के लिए प्रयुक्त वाक्य म स्वर की त्रुटि से वत्र की पराजय हुई।[3] यही वत्र को उदर भी बताया गया है। ब्राह्मण साहित्य मे इन्द्र-वत्र की तात्त्विक स्थिति को ओझल नही होने दिया गया है। 'ऋग्वेद' से विदित होता है कि प्राकृतिक अवस्था ही इन्द्र-वत्र-युद्ध के रूप मे वर्णित है। इनका युद्ध वास्तविक युद्ध न होकर वर्षाकाल का अलकारिक वणन है। नरुक्त आचार्यों का कथन है कि मेघस्थ जल और ज्योति का मिश्रण रूप-कम ही यह युद्ध है। ग्रीष्म ऋतु के बाद वर्षा के आरम्भ होने के समय जल भार से झुका मेघ ही वत्र है। वष्टि का प्रेरक इन्द्र अपने विद्युत रूप वज्र से उसे मारता है और मेघ के शरीर मे स्थित जल मुक्ति पा जाता है और वर्षा हो जाती है।[4] रामायण और 'महाभारत म इस कल्पना को ऐतिहासिक रूप दे दिया गया।

'रामायण' मे वत्रवध का उल्लेख है।[5] उत्तर-काण्ड मे यह प्रसग एक आख्यान रूप मे मिलता है।[6] लक्ष्मण इस आख्यान को अश्वमेध-महात्म्य का वणन करते

---

1 ऋ० 1 32, 1 57, 3 45 4 19 5 30, 5 32, 8 89

2 तदेव 3 45 2 वत्रसादो वलरुज ।

8 89 3 वत्र हनति वत्रहा शतक्रतु वज्रेण शतपवणा।

3 श० ब्रा० 1 6 3 1 17

4 नि० 2 16

5 रा० 1 23 17 2 22 13, 4 24 13 (म० वि०)

6 तदेव 7 75 76

हुए सुनाते है। प्राचीन काल मे देवो तथा दत्यो का प्रेम था। उस समय पथिवी पर वत्रासुर राज्य करता था। वह सौ योजन विस्तीर्ण तथा तीन सौ योजन ऊचा था। वह धमन कृतज्ञ, बुद्धिमान तथा अत्यन्त दक्ष था। उसके राज्य म सभी प्राणी सुखी एव पथ्वी धन धाय से सम्पन थी। उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज्य देकर उग्र तप आरम्भ किया, जिससे देवताओ को अत्यन्त ताप हुआ। इद्र को भय हुआ कि कही वह तप स त्रलोक्य को अपने अधीन न कर ले। वे व्यग्र होकर विष्णु के पास गए और वत्र-वध की प्राथना करने लगे। विष्णु ने वत्र के प्रेम पाश मे आबद्ध होने के कारण वत्रवध मे असमथता व्यक्त की और इद्र को ही वृत्र-वध का उपाय बतलाया, जिसके अनुसार विष्णु के तीन अशो मे एक अश इद्र, एक वज्र तथा एक अश भूतल म गया। देवताओ सहित तपस्या म रत वत्र के पास जाकर इद्र न दोनो हाथो से उस पर वज्र फेंका जिससे वत्र मारा गया। इसके साथ ही सारा ससार त्रस्त हो गया। इद्र वत्रवध के पश्चात अपन अनुचित काय से व्यग्र होकर त्रलोक्य म घूमने लगे। अन्त म इद्र ब्रह्म-हत्या से ग्रस्त हो गए। इद्र ऐसे स्थान पर चले गए जहा जनशून्य प्रदेश था। उनकी देह भुजग के समान सकुचित थी। इनके बिना ससार अनावष्टि से पीडित रहा। सभी देवो ने विष्णु की प्राथना की, जिन्होने इद्र को ब्रह्महत्या से निवत्ति के लिए अश्वमेध-यज्ञ का परामश दिया। अश्वमेध-याग' करने पर ब्रह्म-हत्या को चार अशो म बाटा गया। ब्रह्महत्या का एक अश वर्षा ऋतु के चार मासो को मिला एक अश भूमि को, एक ऋतुकाल म तीन दिनो तक स्त्रियो को तथा एक अश उन्हें मिला जो निरपराधी ब्राह्मणो के वध म मिथ्या आरोप करके कारण बनेंगे। ब्रह्महत्या को स्थान मिल जाने पर इद्र मुक्त हुए। वे पापरहित होकर पुन राज्य करने लगे और पथिवी पर शान्ति छा गई। इसके बाद यह आख्यान महाभारत[1] तथा पुराणों[2] म विस्तार के साथ प्रस्तुत किया गया है।

वेद की रक्षा के लिए कटिबद्ध इतिहास और पुराणो ने इसे पूण आख्यान बना दिया। इस प्रकार यह वणन वदिक वणन स दूर हो गया।

2 ऋषि सम्बधी आख्यान

वसिष्ठ विश्वामित्र—यह आख्यान ऋग्वेद' मे सकेतित है।[3] विश्वामित्र

---

1 महा० आदिपव 65 33, 67 44, 169 50 वनपव 100 4, 101 14, उद्योगपव 9 48, 9 52, 10 27 31 शान्तिपव 279 13 21 280 57 59 281 13 21 282 9 283 59 60

2 भा० पु० 6 9 13

3 ऋ० 7 33।

क्षत्रियत्व से ब्राह्मणत्व प्राप्त करने के लिए लालायित थे। वसिष्ठ ने इन्हे स्वीकार नही किया। तपोबल से विश्वामित्र ने ब्राह्मणत्व प्राप्त कर लिया। ऋग्वेद के बाद यह आख्यान 'बृहद्देवता',[1] रामायण[2] तथा पुराणों[3] मे प्राप्त होता है। दोनो ऋषियो मे महान सघर्ष दिखाया गया है। वसिष्ठ शबला नामक कामधेनु की सहायता से विश्वामित्र का अन्नपानादि द्वारा अभूतपूर्व स्वागत करते है।[4] विश्वामित्र सेना सहित तृप्त होकर वसिष्ठ से कामधेनु मागते हैं।[5] वसिष्ठ के अस्वीकार करने पर शबला को बलपूर्वक ले जाने का प्रयास करते हैं। शबला बधन छुडाकर वसिष्ठ के पास आकर दुख प्रकट करती है। वसिष्ठ विश्वामित्र के युद्ध मे ब्रह्म बल का प्रयोग करते हैं जिससे विश्वामित्र की पराजय होती है। विश्वामित्र हिमालय पर जाकर तप करते हैं।[6] तप करके वे महादेव को प्रसन्न कर अस्त्र शस्त्र प्राप्त करते हैं। इन आयुधो को प्राप्त कर वे पुन वसिष्ठ पर आक्रमण करते हैं। वशिष्ठ के ब्रह्मदण्ड के सामने विश्वामित्र के सभी आयुध विफल हो जाते हैं।[7] इस पर व ब्राह्मणत्व प्राप्ति का दृढ निश्चय करते हैं। वे दक्षिण दिशा मे जाकर तप करते हैं।[8] जहा ब्रह्मा उन्हे केवल राजर्षि स्वीकार करते है। इन्होने त्रिशकु का यज्ञ करना स्वीकार कर लिया, जिसे वसिष्ठ नही करते। त्रिशकु राजा वसिष्ठो के शाप से चाण्डालत्व को प्राप्त हो चुका था। चाण्डाल के यज्ञ मे देव तथा ऋषि निमन्त्रण स्वीकार नही करते। जिन मुनियो ने यज्ञ मे आमन्त्रण स्वीकार नही किया, उन्हे विश्वामित्र शाप देकर नष्ट कर देते हैं।[9] यज्ञ सम्पन्न करने के पश्चात वे त्रिशकु को सशरीर स्वर्ग भेज देते हैं। त्रिशकु को सशरीर स्वर्ग आया देखकर इन्द्र उसे नीचे गिरा देते हैं। इस पर विश्वामित्र नूतन देव तथा देवलोक निर्माण का निश्चय करते हैं। देवताओ के अनुरोध पर वे इस काय से विरत हो जाते हैं।[10] इसके बाद व पुष्करतीर्थ पर घोर तप करते हैं। राजा अम्बरीष ऋचीक के मध्यमपुत्र शुन शेप को यज्ञ-बलि बनाने के लिए खरीदते हैं। शुन शेप की प्रार्थना पर विश्वामित्र उसकी रक्षा करते है।[11] इसके बाद इन्होने एक-सहस्र वर्ष की घोर तपस्या करके महर्षि पद पाया। एक बार मेनका अप्सरा इनके आश्रम पर आती है जिस पर आसक्त होकर ये दस वर्षों का समय व्यतीत करते है। दस-वर्षों पश्चात उन्हें अपने कुकृत्य पर पश्चाताप होता है। व सम्मानपूर्वक मेनका को विदा करके पुन तप करते हैं। इन्द्र पुन तपोभग के लिए रम्भा नामक अप्सरा भेजते हैं। रम्भा को ये क्रोध से शिला बनने का शाप देकर व घोर तप

---

1 बृ० दे० 4 105 108, 110-120
2 रा० 1 51 64। 3 म० पु० 9 9। 4 रा० 1 51। 5 रा० 1 52
6 तत्रैव, 53। 7 तत्रैव 1 54। 8 तदेव 1 55
9 रा० 1 57 58। 10 तदेव 1 59। 11 तदेव 1 60 61

करने लगे।[1] इसके बाद इन्होंने काम और क्रोध पर विजय पाई। इनकी निष्ठा को देखकर ब्रह्मा इन्हें ब्रह्मर्षि पद प्रदान करने के लिए बाध्य हो जाते हैं। वसिष्ठ भी इसका अनुमोदन करते हैं।[2]

अगस्त्य-वसिष्ठोत्पत्ति—अगस्त्य एवं वसिष्ठ की उत्पत्ति से सम्बद्ध यह आख्यान 'ऋग्वेद' में मिलता है।[3] जब वसिष्ठ देहधारणार्थ ज्योति छोड़ रहे थे तब उन्हें मित्रावरुण ने देखा तथा अगस्त्य ने यहाँ लाया।[4] ये मित्रावरुण तथा उर्वशी के पुत्र हैं।[5] इन्हें ब्रह्मा का मानस पुत्र भी कहा गया है।[6] ये यम द्वारा विस्तृत वस्त्र को बुनने के लिए अप्सरा द्वारा उत्पन्न हुए।[7] निरुक्तकार भी इसी के आधार पर इन्हें मित्र-वरुण तथा उर्वशी का पुत्र मानते हैं।[8] 'बृहद्देवता' में इसी प्रसंग को वर्णित किया गया है।[9] 'रामायण' में यह आख्यान विस्तृत है।[10] यहाँ वसिष्ठ ब्रह्म पुत्र हैं।[11] एक बार इक्ष्वाकु-पुत्र राजा निमि ने वसिष्ठ का ऋत्विक् के रूप में वरण किया परन्तु वसिष्ठ को इन्द्र का यज्ञ करने के लिए जाना पड़ा। वसिष्ठ ने इन्द्र का यज्ञ पूरा होने तक निमि को प्रतीक्षा करने के लिए कहा। निमि ने पुनः गौतम का वरण करके अपना यज्ञ करवा लिया। इन्द्र का यज्ञ पूरा हो जाने पर वसिष्ठ जब लौटे तो उन्हें निमि के यज्ञ पूरा होने का ज्ञान हुआ। उन्होंने क्रोध में आकर निमि को विदेह हो जाने का शाप दिया। इसके पश्चात् वह राजा पुनः देह प्राप्त कर लेने पर भी विदेह के नाम से ही विख्यात हो गया था। स्वयं विदेह होने पर निमि ने भी वसिष्ठ को विदेह होने का शाप दिया। शरीर रहित होकर वायुरूप में वसिष्ठ अपने पिता ब्रह्मा के पास गए और उनसे पुनः देह प्राप्ति के लिए प्रार्थना की। ब्रह्मा ने उन्हें मित्रावरुण के तेज में प्रविष्ट होने का परामर्श दिया। जब वायुरूप वसिष्ठ वरुणलोक (सागर) गए उस समय मित्र भी वरुणत्व को प्राप्त

---

1 रा० 1 62 63। 2 तदेव 1 64

3 ऋ० 7 33 10 13

4 तत्रैव 7 33 10 विद्युतो ज्योतिः परि संजिहानं मित्रावरुणा यदपश्यतां त्वा।
तत् ते जन्मोतैकं वसिष्ठागस्त्यो यत् त्वा विश आजभार॥

5 तत्रैव 7 33 11 उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन्मनसोऽधिजातः।

6 तत्रैव 7 33 11 ब्रह्मन्मनसोऽधिजातः।

7 तत्रैव 7 33 12 सत्रे ह जाताविषिता नमोभिः कुम्भे रेतः सिषिचतुः समानम्।
ततो ह मान उदियाय मध्यात् ततो जातमृषिमाहुर्वसिष्ठम्।

8 नि० 5 13 तस्या दर्शनान्मित्रावरुणयो रेतश्चस्कन्द।
5 14 अप्यसि मैत्रावरुणो वसिष्ठ। उर्वश्या ब्रह्मन्मनसोऽधिजातः।

9 बृ० दे० 5 155। 10 रा० 7 55 57 (नि० सा०)

11 तदेव 1 64 15 ब्रह्मपुत्रो वसिष्ठः।

होकर यहा रह रहे थे। उसी समय उर्वशी नामक अप्सरा यहा आई। वरुण उर्वशी के सौन्दय को देखकर काममोहित हो गए। उर्वशी द्वारा मित्र का प्रथम वरण की बात जानकर उन्होंने अपना तेज देवनिर्मित कुम्भ म डाल दिया। जब उर्वशी मित्र के पास पहुची तो उन्होंने क्रुद्ध होकर उसे मृत्युलोक म पुरुरवा की पत्नी बनने का शाप दिया[1] देवनिर्मित कुम्भ म मित्र का तेज पहले ही रखा हुआ था। इस कुम्भ स दो महर्षि अगस्त्य एव वसिष्ठ उत्पन्न हुए। प्रथम अगस्त्य का जन्म हुआ था। वे मित्र स यह कहकर अन्यत्र चल गए कि मैं तुम अकेले का पुत्र नही हू।[2] कुछ समय के पश्चात उसी कुम्भ से महात्मा वसिष्ठ का जन्म हुआ।[2] इस कारण उन्ह मित्र तथा वरुण का पुत्र माना गया है। उर्वशी स वे प्रत्यक्ष उत्पन्न नही हुए, प्रत्युत उर्वशी उनके जन्म का कारण बनी, इसलिए इन्ह उर्वशी क मन स उत्पन्न माना गया है। इसके बाद इक्ष्वाकु ने अपने वश क कल्याण क लिए निर्दोष वसिष्ठ का पुरोहित के रूप म वरण कर लिया। भागवत-पुराण म ऋषियो की उत्पत्ति के वणन प्रसग म इस आख्यान का सकेत प्राप्त होता है।[3] 'नरसिंह-पुराण म प्राप्त विवरण क अनुसार[4] काममोहित मित्रावरुण का तेज तीन स्थानो पर गिरा। ये तीन स्थान हैं—कमल, कुम्भ तथा जल। कमल से वसिष्ठ, कुम्भ स अगस्त्य तथा जल स मत्स्य की उत्पत्ति हुई। इसके बाद उर्वशी स्वग चली गई।[5]

गौतम, अहिल्या तथा इन्द्र—यह आख्यान वेदो म प्राप्त नही होता। मुशी राम शर्मा 'ऋग्वेद म जार आ भगम्—'[6] वाक्याश स इस कथा की उत्पत्ति

---

1 रा० 7 56 (नि० सा०)

2 तदेव 7 57 (नि० सा०)

3 भा० पु० 6 18 5 6 अगस्त्यश्च वसिष्ठश्च मित्रावरुणोऋषि।
रेत सिषिचतु कुम्भे उवश्या सन्निधौ द्रुतम्॥

4 न० पु० 6 20 40

5 तदेव 6 35 त्रिधा समभवद्रेत कमलेऽथ स्थले जले।
अरविन्द वसिष्ठस्तु जात मुनिसत्तम
स्थले त्वगस्त्य सम्भूतो जले मत्स्यो महाद्युति ।

6 36 स तत्र जातो मतिमान् वसिष्ठ,
कुम्भे त्वगस्त्य सलिलेऽथ मत्स्य ।
स्थानत्रये तत्पतित समान
मित्रस्य यस्माद्वरुणस्य रेत ॥

6 37 एतस्मिन्नेव काले तु गता सा उर्वशी दिवम् ।

6 ऋ० 10 11 6

की सम्भावना व्यक्त करते हैं।[1] इस कथा का उल्लेख ब्राह्मण-ग्रन्थो मे प्राप्त होता है।[2] तत्तिरीयारण्यक' म प्राप्त विवरण के अनुसार इन्द्र गौतम की पत्नी अहल्या का जार था।[3] 'रामायण'[4] के अनुसार जब सवप्रथम प्रजा निर्माण किया गया था तो वह वण भाषा तथा स्वरूप की दष्टि से समान थी। प्रजा म भिन्नत्व की दष्टि मे ब्रह्मा ने एक सुन्दर स्त्री का निर्माण किया। सर्वाधिक सुन्दर होने के कारण उस स्त्री का नाम अहल्या रखा गया। ब्रह्मा ने महर्षि गौतम के पास उस स्त्री को धरोहर रूप मे रखा, जबकि इन्द्र उस श्रेष्ठ स्त्री को पाना चाहते थे। कुछ समय के पश्चात गौतम ने उस स्त्री को ब्रह्मा को लौटाना चाहा, परन्तु ब्रह्मा ने उसका जितेन्द्रियत्व देखकर पुन उन्हें ही उस स्त्री को पत्नी रूप म समपण कर दिया। अहल्या को गौतम की पत्नी देखकर इन्द्र-सहित सभी देवता निराश हो गए। इन्द्र गौतम के आश्रम म जाकर अहल्या के सतीत्व-हरण मे सफल हुए जिस पर गौतम ने इन्द्र को शाप दे दिया। इसी कारण इन्द्र शत्रुओ म पराजित होते रहे और अपने अभय्य स्थान स च्युत हुए। अहल्या को गौतमने उसके सौन्दय के नाश का वर दिया। तब से बहुत सी प्रजा भी रूप सम्पन्न होने लगी। अहल्या ने गौतम की कृपा प्राप्त करने के लिए इन्द्र के उनका ही रूप धारण करके आने की बात कही और न पहचानने के कारण हुई भूल पर पश्चाताप प्रकट किया। इस पर गौतम ने राम के आगमन पर उस पवित्र होने का वर दिया।[5] 'बाल-काण्ड' म प्राप्त विवरण के अनुसार गौतम ने जब अपना वेष धारण किए हुए इन्द्र को देखा तो उन्हें वृषणरहित होने का शाप दिया था। देवो के अनुरोध पर पितृदेवो ने मष के वृषण इन्द्र म प्रत्यारोपित किए थ।[6] अहल्या को उन्होने सहस्रा वर्षों तक निराहार और अदृश्य रहकर आश्रम म रहने का शाप दिया था।[7] इसके बाद गौतम ऋषि हिमालय क शिखर पर तप करने लगे। अहल्या आश्रम मे ही अदृश्य रहती हुई तप करती रही जब राम उस आश्रम म पहुच तो उस रूप प्राप्त हुए। इसके बाद गौतम न वहा पहुच कर राम का धन्यवाद किया और अहल्या को स्वीकार कर लिया।[8]

---

1 मुन्शी राम शर्मा, वदिक निबधावली पृष्ठ 168
2 श० ब्रा० 3 3 4 18, ज ब्रा० 2 79
3 त० आ० 1 12 4 गौरावस्कन्दिन्नहल्याय जार।
4 रा० 1 47-48,7 5 रा० 7 30
6 तदव 1 47 22 32 48 1 11
7 तदव 1 48 31 वातभक्षा निराहारा तप्यन्ती भस्मशायिनी।
अदृश्या सवभूतानामाश्रमेऽस्मिन्निवत्स्यति ॥ (म० वि०)
8 तदव 1 48 22 23

शुन शेप — ऐतरेय-ब्राह्मण'[1] एव 'शाखायनश्रौतसूत्र'[2] के अनुसार वरुण की कृपा से हरिश्चन्द्र को पुत्र प्राप्ति पुत्र का वरुण को समपण, पुत्र रोहित का पलायन, हरिश्चन्द्र को रोग प्राप्ति, रोहित द्वारा अजीगत के मध्यम पुत्र का यज्ञ बलि के लिए क्रय, विश्वामित्र द्वारा शुन शेप को दत्तक पुत्र बनाना शुन शेप का नाम देवरात रखना, देवकृपा से अजीगत शुन शेप का वध्य-पशु होने से बचना आदि घटनाए नितान्त प्रख्यात हैं। जिन मन्त्रा द्वारा शुन शेप ने वरुण-स्तुति की वे 'ऋग्वेद मे सकलित हैं।[3] वहा केवल इतना ही उल्लेख है कि शुन शेप दवी सहायता से मत्युभय से मुक्त हुए। याजुष-सहिताओ मे यद्यपि कथा का उल्लेख नही है तथापि वहा वरुण द्वारा शुन शेप के गहीत होने का तथा वरुण के पाशा से मुक्ति का वणन मिलता है।[4]

'रामायण म यह कथा कुछ भिन्न रूप म मिलती है।[5] अयोध्या के राजा अम्बरीष का यज्ञ-पशु इन्द्र चुरा लेते हैं। पुरोहित राजा की अनवधानता के कारण यज्ञ पशु की चोरी मानकर उन्हें यज्ञ-समाप्ति के पूव अन्य-पशु अथवा किसी नर को लाने का परामश देते हैं। यज्ञ-पशु की खोज करते हुए अम्बरीष भृगुतुग-पवत पर पत्नी और पुत्रा सहित बठे ऋचीक को देखत हैं। वे एक सहस्र गाए देकर ऋचीक के मध्यम पुत्र शुन शेप को खरीद लेते हैं।[6] जब शुन शेप पुष्कर पहुचा तो वह ऋषियो के समूह म बठे अपने मातुल विश्वामित्र की गोद म गिरकर रक्षाथ प्राथना करने लगा। विश्वामित्र ने अपने पुत्रा से यज्ञ-पशु बनने की प्राथना की, जब उन्होने अपने पिता विश्वामित्र का उपहास किया तो विश्वामित्र ने उन्ह सहस्रा वर्षों तक चाण्डाल होकर रहने का शाप दिया।[7] इन्होने शुन शेप को दो गाथाए बताई। शुन शेप ने मन ही मन म इन्द्र तथा उपेन्द्र की स्तुति की, जिससे प्रसन्न होकर इन्द्र ने उस दीघ जीवी होने का वर दिया।[8]

इस प्रकार 'ऐतरेय-ब्राह्मण तथा 'रामायण म यह आख्यान बहुत भिन्न है।

3 इतर आख्यान

पुरूरवा उवशी—वदिक युग की यह रोमाचक प्रणय कथा ऋग्वद म मिलती

---

1 ऐ० ब्रा० 7 13 18। 2 शा० श्रो० सू० 25 20 1 26 11 1
3 ऋ० 1 24 25।
4 त० स० 5 2 1 3, का० स० 19 11, म० स० 3 2 1
5 रा० 1 59 61। 6 रा० 1 60।
7 तदेव 1 61 17। 8 तदेव 1 61 8 16
9 तदेव 1 [illegible] 18 28

है।[1] इस कथा को रोचक विस्तार 'शतपथ ब्राह्मण' मे दिया गया है।[2] यह शत पथ ब्राह्मण की मरुभूमि म रम्य शान्वल प्रदेश के समान है। उवशी का पुरूरवा से प्रेम हो जाता है। अप्सरा राजा की पत्नी बनने के लिए पुरूरवा से कुछ प्रति नाए करवाती है। प्रतिज्ञाभग क अवसर पर उवशी राजा को छोडकर चली जाती है। विरहाकुल राजा उवशी को हसिनी के रूप म तरत हुए एक सरोवर मे देखत हैं। यहा तक की कथा 'ऋग्वेद से समानता रखती है। उवशी राजा पर द्रवित होकर एक वप पश्चात पुन मिलती है। उस समय वह राजा स कहती है कि तुम्हें प्रात ग धव एक वर देंगे। तुम उनसे अपनी अभीष्ट वस्तु माग लेना। राजा उवशी स ही वर के विषय म पूछता है। उवशी मानव से ग धव बनन का वर मागन को कहती है। गन्धर्वों के कहने पर वह अभीष्ट वर मागता है। ग धव उसे अग्निहोत्र सम्पादन की एसी विधि बतलाते है, जिससे मानव ग धव बन सकता है। ग धव बनने से राजा के एक पुत्र उत्पन्न होता है। उवशी-अप्सरा से मित्रा वरुण द्वारा वसिष्ठ तथा अगस्त्य की उत्पत्ति आश्चयजनक ढग से हुई।[3]

'रामायण क अनुसार पुरूरवा को ठुकराकर उवशी को पश्चाताप हुआ था।[4] उवशी द्वारा वरुण का प्रथम वरण करन पर कुपित होकर मित्र उसे मत्युलोक म निवास करन तथा काशीराज पुरूरवा की पत्नी बनने का शाप देते हैं।[5] पुरूरवा बुध के पुत्र हैं। उवशी शापवश बुध के औरस-पुत्र प्रतिष्ठान-नगरवासी पुरूरवा की पत्नी बनकर वभवशाली और बलाढय आयु नामक पुत्र को जन्म देती है। आयु स इन्द्र के स्थान पर कुछ समय तक राज्य करन वाले नहुष का जन्म होता है। बहुत वर्षों तक पथिवी पर वास करने क पश्चात शापक्षय होने पर उवशी पुन इन्द्रलोक चली गई।[6] यही कथा मत्स्य-पुराण मे कुछ भिन्नता के साथ मिलती है।[7] यहा पुरूरवा को बुध और तारा का अत्यन्त प्रतापी पुत्र कहा गया है जिसके स्वरूप पर मुग्ध होकर उवशी उसकी पत्नी बनी। पुरूरवा न दानवराज केशि को पराजित करके उसस उवशी को छुडाया और इन्द्र को सम पित कर दिया। एक बार उवशी भरतमुनि प्रणीत लक्ष्मीस्वयवर नाटक मे लक्ष्मी का अभिनय कर रही थी। वह पुरूरवा को वहा देखकर अपनी सुध बुध खो बठी। इस पर क्रुद्ध भरतमुनि के शाप स वह पचपन वप तक पथिवी पर सूक्ष्म लता रही

---

1 ऋ० 10 95। 2 श० ब्रा० 11 5 1। 3 ऋ० 10 95 10 17

4 रा० 3 46 18 प्रत्याख्याय हि मा भीरु पश्चाताप गमिष्यसि।
चरणेनाभिहत्येव पुरूरवसमुवसी॥

5 तदेव 7 56 25 बुधस्य पुत्रो राजर्षि काशीराज पुरूरवा।
तमभ्यागच्छ दुर्बुद्धे स त भर्ता भविष्यति॥ (नि० सा०)

6 तत्रैव 7 56 26 29 (नि० सा०)। 7 म० पु० 24 15 33

शाप की समाप्ति पर पुरूरवा और उवशी पति-पत्नी बने।

इला-- ऋग्वेद' म इला अथवा इडा श द एक देवी के लिए प्रयुक्त है।[1] एक स्थल पर अग्नि को इला का पुत्र कहा गया है।[2] 'निघण्टु म इस गो का पर्याय माना गया है।[3] यह देवी दुग्ध और हवि का मानवीकरण है।[4] हवि का प्रतिरूप होने के कारण इडा को घृतहस्त'[5] तथा 'घृतपदी[6] कहा गया है। 'तत्तिरीय संहिता' म इसे घृतपदी गो कहा गया है।[7] 'शतपथ ब्राह्मण के अनुसार यह मनु तथा मत्रावरुण की पुत्री है।[8] पुरूरवा इला का पुत्र है जो ऋग्वेद' क 'पुरूरवा-उवशी सूक्त का नायक तथा ऋषि है।[9] एक स्थल पर इला यूथमाता है तथा उसका सम्ब ध उवशी से है।[10] इतिहास एव पुराणो म इ ही सम्ब धो के कारण इलोपाख्यान की उत्पत्ति हुई।[11] 'मत्स्य पुराण के अनुसार पुरूरवा का पिता बुध तथा माता इला है।[12] यह बुध च द्रमा का पुत्र था।[13]

'रामायण' म इस सम्ब ध म विचित्र आख्यान है।[14] प्राचीनकाल म प्रजापति कदम का पुत्र, बाल्हीक देश का अधिपति इल नामक राजा था। मह दव दत्य, नाग राक्षस, ग धव तथा यक्षो द्वारा पूजित था। वह चत्र मास म सेवको सेना तथा

---

1 ऋ० 6 1 6 8, 10 70 8। 2 तदेव 3 29 9 10। 3 निघण्टु 2 11

4 मक्डानल वदिक देवशास्त्र प० 324

5 ऋ० 7 16 8 येपामिळा घृतहस्ता।

6 तदेव 10 70 8 हुवीपीळा देवी घृतपदी जुप त। 7 त० स० 2 6 7

8 श० 1 8 1 8 ता होचतु कासीति। मनोदुहितेति।

11 5 3 5 स होवाच। इडव मे मान यग्निहोत्री।

1 8 1 27 उतमत्रावरुणीति।

14 9 4 27 इडासि मत्रावरुणी वीरे वीरमजीजनथा।

9 ऋ० 10 95 18 इति त्वा देवा इम आहुरळ यथमेतदभवसि मत्यु ब धु।
कपिलदेव शास्त्री, वदिक ऋषि एक परिशीलन, प० 139

10 ऋ० 5 41 19 अभि न इळा यूथस्य माता स्म नदीभिरुवशी वा गृणातु।

11 गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, पुराण परिशीलन प० 215

12 म० पु० 24 9 10 इलोदरे च धर्मिष्ठ बुध पुत्रमजीजनत।
पुरूरवा इति ख्यात सवलोकनमस्कृत।

13 म० पु० 24 8 रान सोमस्य पुत्रत्वाद् राजपुत्रो बुध स्मृत।

14 म० पु० उवाच प्राञ्जलि सा त सोमस्येति पितामहम।
तत पितामहो ब्रह्मा ददौ सोमस्य राजा बालकम।
तदा त मूर्ध्नि चाघ्राय सोमो राजा प्रजापति।
बुध इत्यकरो नाम तस्य बालस्य धीमत॥

वाहनो के साथ रमणीय वन मे मगया के लिए गया। उस वन म कार्तिकेय की उत्पत्ति हुई थी। वहा जो भी प्रवेश कर जाता, वह स्त्री रूप मे परिणत हो जाता था। वह वन शकर एव पावती का क्रीडा स्थल था। वह अपने अनुचरो सहित स्त्री रूप म परिणत हो गया। वह अपनी अवस्था से दुखी होकर शकर की शरण म गया। उन्होने उसे पुरुपत्व देना स्वीकार नही किया। शकर का अधवर देने वाली उमा मे उसने एक मास पुरुष तथा एक मास स्त्री रहन का वर माग लिया। इसके पश्चात वह एक मास राजा इल तथा एक मास इला नामक सुदरी वन जाता था। उसके पुरुष होने पर स्त्रीत्व का तथा स्त्री होने पर पुरुपत्व का स्मरण नहीं रहता था। एक बार जब इला वन मे सखिया सहित भ्रमण कर रही थी तो उसने सरोवर के जल म तपस्या करत हुए सामपुत्र बुध को देखा। बुध उसके सौदय को देखकर जल से बाहर आए तथा सखिया सहित इला के सम्बध म जाना। इला की सखिया को बुध ने किपुरुषी के नाम स प्रसिद्ध होकर उसी पवत पर रहने की आना दी। इसके बाद वह इला के साथ जीवन व्यतीत करन लगा। वैशाख का एक मास बीतन पर जब वह पुरुप रूप मे अपनी शय्या से उठा तो उसने बुध स अपनी सेना तथा अनुचरा के विषय मे प्रश्न किया। बुध ने उसे सान्त्वना दी तथा वप भर वहीं रुकने का आग्रह किया। बहुत अधिक आग्रह पर इल ने वहा रहना स्वीकार कर लिया। इसक पश्चात वह स्त्री रूप म बुध के पास एक मास रहती थी। एक मास पुरुपत्व प्राप्त हान पर वह अपना चित्त धम की ओर लगाता था। नवें मास इला से पुरूरवा नामक पुत्र का जन्म हुआ। सम्वत्सर के अवशिष्ट भाग म बुध ने जितेंद्रिय रहकर धमयुक्त कथाए सुनाकर इल का मन बहलाया। बुध ने अनेक ऋषिया को वहा बुलाया। प्रजापति कदम भी वहा पहुचे तथा उन्होने शकर की प्रसन्नता क लिए अश्वमेध का परामश दिया। मरुत्त नाम क राजर्षि ने बुध क आश्रम क निकट यज्ञ किया, जिसस प्रसन्न होकर शकर न इल को पुरुपत्व प्रदान किया। इसक बाद इल बाल्हीक देश को छोडकर प्रतिष्ठान नगर म राज्य करने लगा। इसकी मत्यु पर यहा का राजा पुरूरवा बना।

सप्ट्युत्पत्ति—'ऋग्वेद' के पुरुष-सूक्त म जगत की उत्पत्ति एक विशाल आकार के पुरुष म बताई गई है।[1] इसक अनुसार देवताओ न एक यज्ञ किया। हवि रूप पुरुष का सिर आकाश बन गया, नाभि वायु तथा उसके चरण धरती बन गए। उसके मन स चद्रमा, चक्षु स सूय मुख से इद्र तथा अग्नि और प्राण से वायु की उत्पत्ति हुई। इसका मुख ब्राह्मण, भुजाए क्षत्रिय ऊरू वश्य तथा चरण शूद्र बन। अथववेद' तथा 'उपनिषदो[3] म इस पुरुष को विश्व से अभिन्न कहा

1 ऋ०10 90। 2 अथव० 10 2। 3 मु० उ० I 10 पुरुष एवेद विश्वम्।

गया है। शतपथ-ब्राह्मण के अनुसार पुरुष वही है जो स्रष्टा प्रजापति है।[1] छान्दोग्योपनिषद में इसी पुरुष का ब्रह्म से तादात्म्य स्थापित किया गया है।[2]

ऋग्वेद में ही असत से सत की उत्पत्ति भी कही गई है।[3] इसके अनुसार पहले पृथिवी, आकाश और अदिति उत्पन्न हुए। अदिति के साथ आठ दक्ष जन्मे। इसके बाद देवताओं की उत्पत्ति हुई। देवताओं ने सूर्य को बनाया। अदिति के आठ पुत्र हुए। आठवें पुत्र मार्त्तण्ड को उसने जन्म मरण के लिए रखा तथा दूर फेंक दिया। यहां तीन स्तर प्रत्यक्ष हैं —पहले सृष्टि फिर देवता तथा अन्त में सूर्य की रचना।

'ऋग्वेद[4] में यह अनुमान लगाया गया है कि आरम्भ में कुछ नहीं था, केवल शून्य था। यह सब अविविक्त जल तथा अन्धकार से प्रछन्न था। वहां एक तत्त्व तपस से उत्पन्न हुआ। उसके बाद मन का प्रथम बीज काम उत्पन्न हुआ। सत और असत के मध्य एक कड़ी थी। इसके आविर्भाव से देवता उत्पन्न हुए।

'तैत्तिरीय-ब्राह्मण के अनुसार आरम्भ में कुछ नहीं था न स्वर्ग न पृथिवी और न ही अन्तरिक्ष।[5] छान्दोग्योपनिषद में कहा है कि सत-असत बना। सत अण्डाकार बनकर फट गया। इससे द्युलोक तथा पृथिवी बने। जो कुछ भी उत्पन्न हुआ वह सूर्य है तथा ब्रह्म है।[6] बृहदारण्यकोपनिषद में कहा है कि आरम्भ में जगत जल था। उससे सत्य उत्पन्न हुआ। सत्य से ब्रह्म ब्रह्म से प्रजापति तथा प्रजापति से देवता उत्पन्न हुए।[7]

अथर्ववेद में विश्वदेव स्कम्भ, प्राण, रोहित और काम आदि नाम जगत के स्रष्टा के रूप में आते हैं।[8] वेदों में पुरुष अथवा हिरण्यगर्भ सृष्टि का जनक कहा गया है। ब्राह्मणों में यही प्रजापति बना। तैत्तिरीयारण्यक के अनुसार प्रजापति की सर्वप्रथम उत्पत्ति हुई।[9] ये पुष्कर पर्ण पर उत्पन्न हुए थे। इन्होंने तप करके अपने शरीर के रस से कूर्म उत्पन्न किया। यह कूर्म पहले ब्रह्म रूप था। इसने प्रजापति से शरीर धारण किया तथा आगे सृष्टि की।

'शतपथ ब्राह्मण में भी सृष्टि विषयक अनेक आख्यान हैं। ये सभी प्रजापति

---

1 श० ब्रा० 11 1 6 2 तत सम्वत्सर पुरुष समभवत। 2 छा० उ० 1 7 5।
3 ऋ० 10 72। 4 तदेव 10 82, 129।
5 तै० ब्रा० 2 2 9 1 न द्यौरासीत न पृथिवी नान्तरिक्षम तदसदेव सन्मनो कुरुत स्यामिति।
6 छा० उ० 3 19 1 4
7 बृ० उ० 5 5 1 आप एवेदमग्र आसुस्ता आप सत्यमसृजन्त सत्य ब्रह्म ब्रह्म प्रजापति प्रजापतिर्देवान।
8 अथर्व० 6 2, 15 1, 9 7, 10 8   9 तै० आ० 1 23 3।

से सम्बद्ध हैं, जिनम प्रजापति सृष्टि के लिए अपने को कष्ट देत हैं, तप करते हैं, अन सष्टि के बाद व दुबल, क्षीण एव शक्तिहीन हो जात हैं। एक आख्यान के अनुसार प्रजापति न तप स पक्षी, सरीसप तथा सर्पादि उत्पन्न किए जो उत्पन्न हान ही नष्ट हो गए।[1] अब प्रजापति ने स्तनपायी जीव उत्पन्न किए जो जीवित रहे। एक अन्य स्थल पर प्रजापति द्वारा अपन अगा से सृष्टि की उत्पत्ति का उल्लेख है[2] जिसक अनुसार मन या मस्तिष्क से उत्पन्न होन क कारण मनुष्य सब श्रेष्ठ माना गया। प्रजापति ने आख से अश्व, श्वास स धेनु कण म मेष एव वाणी स अज को उत्पन्न किया। इस प्रकार मनुष्य सभी प्राणियों म शक्तिशाली हुआ। एक आख्यान क अनुसार प्रारम्भ म केवल असत् ऋषि ही था, जिसन तप से सात पुरुष उत्पन्न किए, जिन्हें मिलाकर प्रजापति बना।[3] प्रजापति ने तप स ब्रह्म को उत्पन्न किया, जो सबकी आधार भित्ति है। इस पर अवस्थित होकर प्रजापति न पुन तप किया, जिसस सवप्रथम जल उत्पन्न हुआ। वेद की सहायता से उन्होंने अण्ड भी उत्पन्न किया, जिससे अग्नि की उत्पत्ति हुई और उसका कोष पृथिवी बन गया।

रामायण' म एक स्थल पर अगस्त्य ऋषि सृष्टि क सम्बन्ध म कहत हैं[4] कि सलिल सम्भव प्रजापति न सव प्रथम जल उत्पन्न किया। उस जल की रक्षा के लिए कुछ प्राणी बनाए। वे प्राणी क्षुधा से व्याकुल होकर प्रजापति से पूछने लगे कि हम क्या करें। प्रजापति ने जल की रक्षा करने के लिए कहा। इस पर जिन्होंने 'रक्षाम' कहा व राक्षस कहलाए तथा जिन्हान यक्षाम' कहा, व यक्ष कहलाए। एक अन्य स्थल पर वसिष्ठ जगत की उत्पत्ति के विषय म कहत हैं[5] कि पहले सवत्र जल ही जल था। उस जल स पृथिवी उत्पन्न हुई। इसक बाद स्वयम्भू ब्रह्मा इतर दवताओ क साथ प्रकट हुए। ब्रह्मा न वराह[6] बनकर पृथिवी को जल स बाहर निकाला और उन्हाने ही जितेन्द्रिय पुत्रो सहित सारे ससार को उत्पन्न किया। ये पुत्र सप्तदश प्रजापति थे। नित्य शाश्वत और अव्यय ब्रह्मदेव आकाश से उत्पन्न हुए। उनस मरीचि और मरीचि से कश्यप कश्यप से विवस्वान् और विवस्वान् से मनु उत्पन्न हुए। मनु के पुत्र इक्ष्वाकु हुए जिन्हे सवप्रथम समद पृथिवी प्रदान करके राजा बनाया गया। इसी प्रकार आगे इक्ष्वाकु वश चल गया।

1 श० ब्रा० 2 5 1 1 3 । 2 तदेव 7 5 2 6
3 तदेव 6 1 1
4 रा० 7 4 9 13 । 5 तदेव 2 102 3 9
6 तदव 2 102 3 पर (अ०) स भगवान ब्रह्मा वराह स्वपरमूर्तिपृथिवीतरव प्रधान धरणीवराहविष्णवात्मका।

एक अय स्थल पर जटायु राम को सष्टि के विषय म बताते हैं कि भगवान् ब्रह्मा के सग काल म सप्तदश प्रजापति हुए जिनके नाम हैं—कदम, विकृत, शेष, सश्रव बहुपुत्र स्थाणु मरीचि, अत्रि, ऋतु, पुलस्त्य, अगिरा, प्रचेता पुलह, दक्ष, विवस्वान अरिष्टनमि तथा कश्यप। ये सभी प्रजापति सष्टि क उत्पादक कहे गए हैं। प्रजापति दक्ष के साठ कयाए हुइ, जिनम से आठ का विवाह कश्यप से हुआ। इन आठ के नाम अदिति, दिति, दनु कालिका, ताम्रा क्रोधवशा मनु तथा अनला थे। इनमे अदिति से तंतीस देवता, दिति स दत्य दनु स अश्वग्रीव तथा कालिका से नरक तथा कालक उत्पन हुए। ताम्रा न क्रौंची भासी, श्येनी धतराष्ट्री तथा शुकी नामक पाच कयाओ को जम दिया। क्रौंची स उल्लू, भासी स भास, श्येनी से श्येन एव गद्ध, घृतराष्ट्री से हस कलहस तथा चक्रवाक और शुकी स नता 'जो विनता की माता थी', उत्पन हुई। क्रोधवशा स मगी मृगमदा हरि, भद्रमदा' मातगी, शादूली श्वेता सुरभि, सवलक्षण सम्पन्ना सुरसा तथा कद्रुका नामक दस कयाए उत्पन हुई। मगी के पुत्र मग कहलाए। मगमदा से ऋक्ष समर, चमर, हरि तथा वानर हुए। भद्रमदा से इरावती नामक कया हुई जिसका पुत्र एरावत महागज हुआ। हरि से सिंह, वानर तथा गोलागूल उत्पन हुए। शादूली ने याघ्रो को जम दिया। मातगी से विशाल गज उत्पन हुए। श्वता स दिग्गज उत्पन हुए। सुरभि की रोहिणी तथा गधर्वी नाम्नी दो पुत्रिया उत्पन्न हुई। रोहिणी से गो तथा गधर्वी से अश्व हुए। सुरसा न नागो को तथा कद्रुका ने पनगो को उत्पन्न किया।

मनु स मनुष्य उत्पन हुए। मनुष्यो म ब्राह्मण क्षत्रिय, वश्य तथा शूद्र जातिया थी। मनु स ही पुण्य फल, बक्ष तथा अनल भी हुए। रावण का जम पौलस्त्यवश मे कहा गया है *जबकि पुलस्त्य का नाम भी प्रजापतियो म आया है।* विनता क दो पुत्रो से क्रमश जटायु और सम्पाति भी उत्पन हुए।

यह सष्टिक्रम ववस्वत मवतर प्रकार स वर्णित बताया गया है।[1]

---

1 रा० 3 14 30 पर (भू०) अय च सष्टि क्रम ववस्वतमवत्तरप्रकार.।

षष्ठ अध्याय

रामायण मे वर्णित वैदिक-यज्ञयाग

यज्ञ—वदिक धम की प्रमुख विशेषता 'यज्ञ' है। पहले यज्ञ शब्द यजन, पूजन अथवा उपासना के सामान्य अथ म प्रयुक्त होता था, किन्तु बाद म अग्नि म आहुति देने के साथ अनेक प्रकार की क्रियाओ से युक्त अनुष्ठान को ही 'यज्ञ' समझा जाता रहा है। देवता के नाम पर द्रव्य त्याग ही याग है।[1] अशेष ब्राह्मण ग्रन्थ यज्ञ प्रपचो से परिपूण है। यज्ञ विवरण याजुष सहिताओ से आरम्भ होकर ब्राह्मण एव परवर्ती सूत्रो म इतना अधिक बढ गया कि उसे अनन्त कहा जा सकता है। श्रुति में वदिक-कर्मों को पाच भागो म विभक्त किया गया है—अग्निहोत्र दशपूणमास, चातुर्मास्य, पशु और साम।[2] 'गौतम धम-सूत्र' के अनुसार यज्ञो का विभाजन निम्न प्रकार स है—

1 पाकयज्ञ सस्था अष्टका, पार्वण श्राद्ध, श्रावणी, आग्रहायणी, चैत्री तथा आश्वयुजी।[3]

2 हविर्यज्ञ सस्था अग्न्याधेय अग्निहोत्र दशपूणमास, आग्रायण, चातुर्मास्य, निरुढपशुबन्ध तथा सौत्रामणी।[4]

3 सोमयज्ञ-सस्था अग्निष्टोम अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र तथा आप्तोर्याम।[5]

प्रथम पाकयज्ञ सस्था गृह्य सूत्रो के अन्तगत आती है। गृह्यकम केवल गार्हपत्य-अग्नि मे ही गृहस्थो द्वारा किए जाते हैं। इसमे पक्वान्न की आहुतिया दी

---

1 का० श्रौ०सू० 1 2 2 द्रव्य देवता त्याग।

2 ऐ०ब्रा० 2 3 3 4 स एष यज्ञ पचविधोऽग्निहोत्र, दर्शपूणमासो चातुर्मास्यानि पशु सोम।

3 गौ० ध० सू० 8 16 अष्टका पार्वण श्राद्ध श्रावण्याग्रहायणी चत्र्याश्वयुजीति सप्तपाकयज्ञसस्था।

4 तदेव 8 17 अग्न्याधेयमग्निहोत्र दर्शपौर्णमासावाग्रायण चातुर्मास्यानि निरुढपशुबन्ध सौत्रामणीति सप्त हविर्यज्ञसस्था।

5 गौ० ध० सू० 8 18 अग्निष्टोमोऽत्यग्निष्टोमो उक्थ्य षोडशी वाजपेयोऽति रात्रोऽप्तोर्याम इति सप्त सोमसस्था।

जाती हैं परन्तु हवि तथा सोमयन सस्था का स्थान श्रौतसूत्रो म श्रौतकर्मों के अन्तगत है। श्रौतकम त्रिविधाग्नि म सपत्नीक सम्पादित होते हैं। इनम एक से लेकर सोलह तक ऋत्विजो की आवश्यकता होती है। इनके लिए वसन्त म ब्राह्मण, ग्रीष्म मे राजन्य और वर्षा म वैश्य अग्नि का आधान करता है।[1] तीनवण अमावस्या को अग्नि का आधान करते है।[2] पुत्रवान और कृष्णकेशों वाला व्यक्ति ही अग्नि का आधान कर सकता है।[3] यदि अनुष्ठान मध्य म विच्छिन्न हो जाए तो पुन अग्नियो का आधान कर यज्ञ सम्पादन किया जाता है।

I श्रौत यज्ञ

'रामायण म कुछ वदिक यज्ञो का विस्तृत विवेचन मिलता है, कुछ का केवल उल्लेखमात्र है। विशाल-यज्ञो मे अश्वमेध सर्वाधिक महत्वपूण है। इस यज्ञ म एक अश्व को छोडा जाता था, जिसका चोरी हो जाना एक बडा विघ्न माना जाता था। पशु चोरी हो जाने पर अम्बरीष का पशु के स्थान पर मनुष्य शुन शेप को क्रय करना पडा।[4] सगर का पशु ढूढने के लिए उसके साठ हजार पुत्रो का नाश हुआ।[5] राजा अग्नियो म हवि देने के लिए बुद्धिमान एव विद्वान ऋत्विजो को नियुक्त करते थे। उन्हे होम की सूचना समय समय पर मिलती थी।[6] राम के वनवास चल जाने पर उन्हे वन स राज्य ग्रहणाथ लौटाने के लिए नास्तिकमत का अवलम्बन करते हुए यागादि की निन्दा करते हैं, जबकि राम उसका खण्डन करते हुए प्रशसा करते हैं।[8]

अग्निष्टोम— रामायण म दशरथ के अग्निष्टोम प्रभति यज्ञ करने का सकेत मिलता है।[9] यह यज्ञ सोम यागो म सरल तथा सामान्य है। यह एकाह सोमयागो म प्रकृति-याग है। इसकी तयारी म चार दिनो का समय लग जाता है। पाचवें दिन सुत्या होती है। इसम प्रात माध्यन्दिन एव साय तीन सवन होते हैं। तीनो सवनों म सोमाभिषव ग्रह ग्रहण और उसके होमादि का अनुष्ठान होता

---

1 श०ब्रा० 2 1 3 5 वसन्ते ब्राह्मणोऽग्निमादधीत ग्रीष्मे राजन्यो वर्षासु वश्य ।

2 का० श्रौ० सू० 4 7 1 अमावस्यायामग्न्याधेयम ।

3 सूयकान्त वदिक कोश पृष्ठ 392 पर
उन्धृत जातपुत्र कृष्णकेशोऽग्निमादधीत ।

4 रा० 1 60 21 22 । 5 तदेव 1 39 28

6 तदेव 2 94 8 कच्चिदग्निषु ते युक्तो विधिज्ञो मतिमानजु ।
हुत च हाय्यमाण च काले वेदयते सदा ॥

7 तदव 2 100 12 17 । 8 तदेव 2 101

9 रा० 4 4 8 अग्निष्टोमादिभियज्ञैरिष्ट्वानाप्तदक्षिण (म० वि०)

है। इसमें अग्नि तथा सोम के लिए पशुयाग किया जाता है।[2] यह सोमयाग 'अग्निष्टोमसंस्थ' होने से 'अग्निष्टोम' कहलाता है। 'अग्निष्टोम' सामवेद के गीता का नाम है। संस्थ' शब्द समाप्तिवाची है। इस यज्ञ के अन्त में 'अग्निष्टोम' सामन गाया जाता है।[2] इसका आयोजन वसन्तऋतु में होता है।[3] इसमें षोडश ऋत्विज कार्य करते हैं।[4]

अग्निहोत्र—अग्निहोत्र' सरल परन्तु महत्वपूर्ण कर्म है। यह प्रातः सूर्योदय से पूर्व सायं[5] सूर्यास्त के पश्चात्[6] किया जाता है। 'रामायण' में सन्ध्यावन्दन, गायत्री-जप के पश्चात् अग्निहोत्र के अनुष्ठान का विधान है।[7] जब विश्वामित्र के आश्रम में प्रातः राम और लक्ष्मण उठे तो उन्होंने अग्निहोत्र करके आसन पर विराजमान विश्वामित्र को प्रणाम किया।[8] जब राम लक्ष्मण और सीता शरभंग के आश्रम पर पहुंचे तो वे अग्निहोत्र समाप्त कर चुके थे।[9] रावण नित्य अग्नि होत्र करता था, इसलिए उसकी चिता को उसी अग्नि से प्रज्वलित किया गया।[10] 'रामायण' में सामान्य गृहस्थी तथा ऋषियों के अग्निहोत्र करने का उल्लेख मिलता है।[11] यद्यपि अग्निहोत्र का अनुष्ठान घोर विपत्ति में फंस जाने पर भी आवश्यक बताया गया है,[12] तथापि राम के विरह में अयोध्यावासियों ने अग्निहोत्र नहीं किया।[13] अग्निदेवतोद्देश्यक प्रवृत्ति के कारण इस कर्म का नाम अग्निहोत्र पड़ा। इसका अधिकारी वही है जिसने त्रेताग्नि की स्थापना कर ली हो। इसमें हवि

---

1 का० श्रौ० सू० 7 1 10 9

2 सूर्यकान्त, पूर्वोद्धृत कोश, पृष्ठ 399 409
कमला प्रसाद सिंह ए क्रिटिकल स्टडी आफ कात्यायन-श्रौतसूत्र, पृष्ठ 86 94

3 का० श्रौ० सू० 7 1 5 वसन्तेऽग्निष्टोम ।

4 तदेव 7 1 7 षोडशर्त्विज ।

5 का० श्रौ० सू० 4 15 1 प्रातर्जुहोत्यनुदिते ।

6 तदेव 4 14 6 अस्तमितेजुहोति ।

7 रा० 1 34 9 तत स्नात्वा यथान्याय सतर्प्य पितृदेवता ।
हुत्वा चैवाग्निहोत्राणि प्राश्य चामृतवद्धवि ॥

8 तदेव 1 29 20 हुताग्निहोत्रमासीन विश्वामित्रमवन्दताम् । (म० वि०)

9 तदेव 3 4 20 अग्निहोत्रमुपासीन शरभङ्गमुपागमत् ।

10 तदेव 6 111 103 रावणस्याग्निहोत्र तु निर्वापयति स त्वरम् ।

11 तदेव 1 34 9 2 36 9, 2 48 11, 2 69 13, 2 86 2 2 111 5
3 4 21, 7 9 14

12 का० श्रौ० सू० 4 13 4 नित्यो दक्षिणाग्नि पर कक्रमाप्य

13 रा० 2 36 9 नाग्निहोत्राण्यहूयन्त नापचन् गृहमेधिन ।

द्रव्य मुख्यत दुग्ध है,[1] परन्तु ग्राम की कामना वाला यवागु[2] बल की कामना वाला तण्डुल[3] इन्द्रिय की कामनावाला दधि[4] तथा तेज की कामना वाला घृत से हवन करता है।[5] दक्षिणाग्नि नित्य प्रज्वलित रहती है।[6] यजमान नियमानुसार आहवनीय अग्नि की ओर मध्य से गमन करता है और पत्नी के दक्षिण मे बठती है।[7] इसके बाद एक पुवत्सा गो का दक्षिण की ओर से दोहन किया जाता है।[8] दूध को दूसरे पात्र मे डालकर गार्हपत्य अग्नि के अगारो पर गम किया जाता है।[9] अब यजमान पलाश की समिध आहवनीय अग्नि म डालता है।[10] इसके जलने पर प्रथम हवि दी जाती है।[11] इसके बाद स्रुक को कूच पर रखकर गार्हपत्य-अग्नि का सम्यक अवलोकन किया जाता है।[12] अब पुन स्रुक से अधिक मात्रा मे दुग्ध की आहुति दी जाती है।[13] इसके बाद गार्हपत्य अग्नि म भी समिध मौन अवस्था म डालकर प्रथम तथा द्वितीय हवि दी जाती है।[14] इसी प्रकार दक्षिणाग्नि म भी दो आहुतिया दी जाती हैं।[15] इसके पश्चात स्रुक स शेष हवि का अनामिका स दो बार प्राशन किया जाता है।[16] इसके बाद जल स देव, पित तथा ऋषियो के लिए

1 का० श्रौ० सू० 4 15 20 पयसा स्वगकाम पशुकामो वा।
2 तदेव 4 15 21 यवाग्वा ग्रामकाम ।
3 तदेव 4 15 22 तण्डुलबलकाम ।
4 तदेव 4 15 23 दध्नेन्द्रियकाम ।
5 तदेव 4 15 25 घतन तेजस्काम ।
6 तदेव 4 13 4 नित्यो दक्षिणाग्नि।
7 तदेव 4 13 12 13 अन्तरेणापरागना गत्वा दक्षिणेन वा प्रदक्षिणमाहवनीय परीत्योपविशति यजमान । पत्नी च पूववत्।
8 तदेव 4 14 1 अग्निहोत्री दोहयति पुवत्सामशूद्रेण।
9 तत्रैव 4 14 2 पूर्वेणाहवनीयमाहृत्य गाहपत्येऽधिश्रयत्युत्तरतो निरूह्यागारान।
10 तदेव 4 14 13 मध्ये निगृह्योदगहोपविश्य समिधमाधानि।
11 तत्रैव 4 14 14 प्रदीप्तामभिजुहोति।
12 तदेव 4 14 16 कूर्चे निधाय गाहपत्यमवेक्षत होष्यन्नग्निम्।
13 तत्रैव 4 14 17 तूष्णीमुत्तरा भूयसीम।
14 का० श्रौ० सू० 4 14 22 23 इतरयाश्च पुष्टिकाम स्या या स्रुवेण । तूष्णीं द्वितीयाम।
15 तत्रैव 4 14 24 25 अग्नयेऽन्नायान्नपतये स्वाहेति दक्षिणाग्नो । तूष्णीं द्वितीयाम्।
16 तत्रैव 4 4 26 अनामिकया द्वि प्राश्नाति।

पथिवी पर तपण किया जाता है।[1] अव तीन समिध तीनों अग्नियों में डालने के पश्चात यह यज्ञ समाप्त हो जाता है।[2] यहा सायकाल अग्नि मुख्य देवता होता है और प्रजापति स्विष्टकृत् स्थान का अग देवता होता है। इसी प्रकार प्रात सूय मुख्य तथा प्रजापति अग देवता होता है।

दशपूणमास—'रामायण' मे वसिष्ठ द्वारा दशपूणमास यज्ञों का किए जान का सकेत मिलता है।[3] सभी इष्टियो की प्रकृति होने के कारण य याग महत्त्वपूर्ण हैं।[4] क्रमश अमावस्या तथा पूर्णिमा के दिन अनुष्ठान होन के कारण इनका नाम दशपूणमास पड़ा। पूर्णिमा को अग्नि के लिए अष्टादशकपालपुरोडाशयाग, अग्नि तथा सोम के लिए आज्यद्रव्यकउपाशुयाग तथा अग्नि एव सोम क लिए ही एका दशकपालपुरोडाशयाग ये तीन याग होते हैं। अमावस्या को अग्नि के लिए पुरोडाशयाग इन्द्रदेवता के लिए पुरोडाशयाग तथा इन्द्र के ही लिए पयोद्रव्यकयाग। पूर्णिमा को याग के लिए दो दिन लगते हैं जबकि दश के लिए एक दिन। प्रारभिक क्रियाओ को एक दिन पूव कर लिया जाता है। इसका वास्तविक आयोजन प्रतिपदा को होता है।[5] इसमे अन्याधान अध्वयु या यजमान करता है।[6] यजमान पहले दिन अरण्य-औषधियो का खाता हुआ[7] गाहपत्य और आहवनीय-आगार मे शयन करता है।[8] यदि याग एक ही दिन म करने की इच्छा हो तो सभी काय प्रात प्रतिपदा के दिन ही कर लिए जाते हैं।[9] प्रात अग्निहोत्र के पश्चात ब्रह्मा का वरण किया जाता है।[10] इसके बाद यज्ञीय-पात्रों का सग्रह करके तण्डुल-पेषण तथा उपाधान कम एक साथ किए जाते हैं।[11] इसके बाद अग्नि तथा सोम के लिए दो पुरोडाश तयार किए जाते हैं।[12] आज्य की आहुतिया के पश्चात्

1 तदेव 4 14 27 28 उत्सृप्य निर्लेपयाचम्योत्सिचति, दर्वा त्रन्व पितृभ्यिजन्व तृतीयामुदुक्षति सप्त ऋषीभ्यिन्विति। चतुर्थी मूत्रस्थाने त्रीनिपिभ्यति ।
2 तदेव 4 14 30 समिध आदधाति सर्वेषु ।
3 रा० 1 52 23 दशश्च पूणमासश्च यज्ञाश्चवाप्तदक्षिणा।
4 आ० श्रौ० सू० 24 3 32 दशपूणमासाविष्टिनाना प्रकृति।
5 का० श्रौ० सू० 2 1 1 पूर्वां पौणमासीमत्तरा वोत्सृत्।
6 तदेव 2 1 2 अग्न्याधानमध्वयुयजमानो वा।
7 तदेव 2 1 14 वक्षारण्ययोषधीनामश्नीयाद्वा।
8 तदेव 2 1 15 आहवनीयगहशाय्यधा गाहपत्यस्य वा।
9 तदेव 2 1 16 सद्यो वा प्रात ।
10 तदव 2 0 17 अग्निहोत्र हुत्वा ब्रह्माण वणाते।
11 तदव 2,4 24 पपणोपधाने युगपत्।
12 तदेव 2 5 19 धर्मोऽसीति पुरोडाशौ युगपत्।

मुख्य याग मे पूर्णिमा की प्रतिपदा को प्रथम पुरोडाश अग्नि तथा द्वितीय अग्नि सोम को दिया जाता है जबकि दश मे द्वितीय इन्द्राग्नि को दिया जाता है। इन दोनो हवियो के मध्य एक आज्याहुति अग्नि-सोम अथवा विष्णु को दी जाती है।[1] यदि यजमान ने सोमयाग कर लिया हो तो दश मे प्रथम पुरोडाश के पश्चात् इन्द्र अथवा महेन्द्र को सानाय्य की आहुति देने का विधान है।[2] सानाय्य दुग्ध तथा दधि का मिश्रण होता है। इसके बाद इन्ही देवो को दुग्ध तथा दधि की हवि दी जाती है।[3] जिन्होने सोमयाग का अनुष्ठान नही किया उनके लिए सानाय्य की हवि का विधान वकल्पिक है।[4] इसके पश्चात स्विष्टकृद्धवि देकर यजमान और पुरोहित हवि प्राशन करते हैं।[5] इस याग मे दक्षिणाग्नि पर पका हुआ अन्वाहार्य ओदन दक्षिणा होती है।[6] सभी देवो को दी जाने वाली सयुक्त हवि के पश्चात[7] पत्नी सयाज म सोम, त्वष्टा देवाना पत्नी तथा अग्नि के लिए होम होता है।[8] ये हविया दक्षिणाग्नि म तूष्णीक दी जाती है।[9] कुशा अग्नि मे डालकर[10] तीन पग चलकर *विष्णुक्रमण किया जाता है।*[11] *अन्त मे यजमान व्रत विसर्जन करता है।*[12]

अश्वमेध—श्रौतयागो मे महत्त्वपूर्ण अश्वमेध-यज्ञ का आयोजन अभिषिक्त एव सार्वभौम सम्राट बनने के अभिलाषी राजा द्वारा किया जाता है।[13] इसे सब यज्ञो का राजा कहा गया है।[14] सभी देव इस यज्ञ म आते है। इस यज्ञ का करने वाला सब दिशाओ म विजय प्राप्त करता है।[15] यद्यपि इसका सवन समय तीन दिन का

---

1 का० श्रौ० सू० 3 3 23 पुरोडाशावन्तरेणाग्नीषोमा उपांशुयाज्यस्य।

2 तदेव 4 2 10 ऐन्द्र भवति माहेन्द्र वा।

3 तदेव 4 2 45 सोमयाजी सन्नयेत।

4 तदेव 4 2 26 कामादितर ।

5 तदेव 3 3 25 यावद्धविरुत्तरार्द्धात्स्विष्टकृत ।
3 4 19 20 उपहूता प्राश्नन्ति युक्ता । यजमानश्च ।

6 तदेव 3 4 28 सा दक्षिणा। 7 तदेव 3 6 17 सत्रवाञ्जुहोति।

8 तदेव 3 7 7 यजति सोम, त्वष्टार देवाना पत्नीरग्नि गहपतिमिति।

9 तदेव 3 7 15 सव्येनावत्य दक्षिणाग्नौ जुहोति।

10 तदेव 3 8 5 बर्हि सम्बर्हिरिति।

11 तदेव 3 8 10 विष्णुक्रमान क्रमते ।

12 तदेव 3 8 25 व्रत विसजते येनोपेयात।

13 का० श्रौ० सू० 20 1 1 राज्ञोऽश्वमेध सर्वकामस्य।

14 श० ब्रा० 13 2 2 1 राजा व एष यज्ञाना यदश्वमेध ।

15 तदेव 13 2 2 1 सर्वा वै देवता अश्वमेधे अवायत्ता। तस्मात् अश्वमेध याजी सर्वा दिशो जयति।

है[1] तथापि इसके आयोजन मे एक वष का समय लग जाता है। अश्वमेध करने से सभी पापा से निवत्ति प्राप्त होती है।[2] इस यन से ब्रह्महत्या निवत्ति कही गई है।[3] 'रामायण' मे इस यज्ञ स इन्द्र को ब्रह्महत्या से निवृत्ति[4] तथा राजा इल को पुरुषत्व प्राप्ति हुई।[5] यहा इस यज्ञ का सर्वाधिक महत्व है क्याकि इस यज्ञ का पूण विवरण 'रामायण' म मिलता है। दशरथ तथा राम का यज्ञ क्रमश सरयू नदी के तट पर[6] तथा नमिषारण्य मे हुआ था।[7]

यह फाल्गुन शुक्ला अष्टमी या नवमी को आरम्भ होता है।[8] इसे सोलह ऋत्विज् करत हैं।[9] इस दिन चार बडे ऋत्विजो का भोजन दिया जाता है।[10] अब यजमान की चार स्त्रिया महिषी, वावाता परिवृक्ता और पालागली आभूषणो से अलकृत सौ-सौ अनुचरियो के साथ राजा के आगे आती है।[11] साथ यजमान अग्नि होत्र करके वावाता के साथ ब्रह्मचय की रक्षा करता हुआ सोता है।[12] प्रात अग्नि होत्र की पूर्णाहुति के बाद पथिकृत् इष्टि होती है।[13] तब दभ की रस्सी कोधी से पोतकर अश्व को बाधा जाता है।[14] तदनन्तर एक शूद्र द्वारा वश्य-स्त्री से उत्पन्न मनुष्य स चार आखो वाले कुत्ते[15] को सिध्रक मूसल से मरवाकर वेतस की चटाई

---

1 रा० 1 13 33 ह्यहोऽश्वमेध सख्यात कल्पसूत्रेण ब्राह्मण ।

2 तदेव 7 75 2 अश्वमेधो महायज्ञ पावन सवपाप्मनाम ।
 श० स० 5 3 2 सर्वे व एतेन पाप्मान देवा अतरन् ।

3 तत्रैव 5 3 12 अपि व एतेन ब्रह्महत्यामतरन तरति ब्रह्महत्या यो अश्वमेधेन यजते ।

4 रा० 7 75 3 ब्रह्महत्यावृत शक्रो हयमेधेन पावित ।

5 तदेव 7 81 24 ईदृशो ह्यश्वमेधस्य प्रभाव पुरुषषभ ।
 स्त्रीपूव पौरुष लेभे यच्चान्यदपि दुलभम ।

6 तदेव 1 13 1 सरय्वाश्चोत्तरे तीरे राज्ञो यज्ञोऽभ्यवतत ।

7 तदेव 7 82 17 अनुभूय महा-यज्ञ नमिषे रघुनन्दन ।

8 का० श्रौ० सू० 20 1 2 अष्टम्या नवम्या वा फाल्गुनी शुक्लस्य ।

9 रा० 1 13 31 षोडश ऋत्विज ।

10 का० श्रौ० सू० 20 1 4 5 ब्रह्मोदन पचति । अवत्वेनमाद्यत्विभ्य प्रयच्छति ।

11 तदेव 20 1 12 पत्यश्चाय त्यलङ्कृता निष्किण्यो महिषी वावाता परिवृक्ता सानुचय शतन शतेन ।

12 तदेव 20 1 17 वावातायाा ब्रह्मचारी ।

13 तदेव 20 1 20 21 पूर्णाहुत्यन्ते वरदान ब्रह्मणे । पुरोडाशोऽग्ये पथिकृते ।

14 तदेव 20 1 26 बध्नात्यश्वम् ।

15 आखो के ऊपर आख के समान चिह्न वाले कुत्ते को चार आखो वाला कहते हैं

पर अश्व के नीचे से जल म बहाने के पश्चात होम किया जाता है ।[1] इसके बाद तीन इष्टिया होनी है। ये द्वादशकपाल सावित्र्य इष्टिया होती है।[2] तदनन्तर ऋत्विज के अतिरिक्त ब्राह्मण यजमान विषयक स्वनिर्मित तीन गाथाओ का वीणा पर गान करता है।[3] इसके पश्चात याज्ञिक अश्व का सौ वद्ध घोडो के साथ छोड दिया जाता है जिसकी रक्षा के लिए आयुधो से सुसज्जित चार सौ रक्षक होत है।[4]

अश्व की अनुपस्थिति म चार ऋत्विक तथा यजमान परिप्लव-आख्यान, प्रक्रम होम तथा धृति होम करत हैं।[5] य सभी काम प्रतिदिन अधमास, मास प्रमास और षण्मास अथवा वष के विकल्प से चलत हैं।[6] इसम अश्व का जीवित लौटना आवश्यक है अन्यथा यही क्रिया पुन की जाती है। अश्व के लौटन पर चत्र पूर्णिमा को दीक्षणीया इष्टि आरम्भ होकर वैशाख कृष्णाषष्ठी को सात इष्टिया समाप्त होती है।[8] तब द्वादश-दीक्षाए वशाख शुक्लतृतीया तक तथा चतुदशी तक द्वादश उपसद होते है।[9] चतुदशी को अग्नि एव सोम क लिए पशुयाग होता है। इसमे इक्कीस यूपो से इक्कीस पशु बाधे जात हैं।[10] दशरथ न यज्ञ म जब एक वष पश्चात अश्व चारो दिशाओ म घूमकर आया तो याग का आयोजन सरयू तट पर हुआ। इसमे ऋष्यशृग प्रमुख षोडश ऋत्विज् वद तथा कल्प-सूत्रो के ज्ञाता थे।[11]

---

1 का० श्रौ० सू० 20 1 36 38 आपोमवाह श्वान चतुरक्षमभिमन्यस्वेति। सिध्रकमूसलनन हन्ति।
20 2 2 वेनसकटेनाधोऽश्व प्लावयति।

2 का० श्रौ० सू० 20 2 6 द्वादशकपालान्निवपति।

3 तत्रैव 20 2 7 प्रभाजेषु दक्षिणतो ब्राह्मणो गाथा गायत्युत्तरमन्द्रायाम।

4 तदेव 20 2 10 11 पशुमवुत्सृजन निरष्टेऽश्वशाने। देवा आशापाला इति तथा सख्यम्।

5 तदेव 20 2 22 परिप्लव प्रैषयति।
20 23 4 दक्षिणाग्नौ जुहोति प्रक्रयान् धतिरिह रन्तिरिति।

6 तदेव 20 3 6 अधमास मास प्रमासयण्मास्यानि पके।

7 तदेव 20 3 31 मृताश्वनयोरन्यस्य रपनादानाग्नि करोत्यश्वयुक्तम्।

8 तदेव 20 4 4 अध्वरदीक्षणीयायाश्चत्वारि त्रीणि त्रीणि चाश्वमेधिकानि।

9 तदेव 20 4 13 दीक्षाद्वादशोपसदश्च।

10 का० श्रौ० सू० 20 4 16, 21 एकादशिनीवदेकविंशतियूपा। प्रतियूप मग्निष्टोमीया।
20 4 23 एकादशिनो सवनीया पशवो भवन्ति।

11 रा० 1 13 1 3

सर्वप्रथम प्रवर्ग्य एवं उपसद का आयोजन हुआ।[1] दूसरे दिन प्रातःसवन[2], इन्द्र का भाग देकर माध्यंदिन सवन[3] तथा सायं तृतीय सवन पूर्ण हुआ।[4] इस यज्ञ में शास्त्रोक्त स्वर्ण तथा वस्त्रालंकृत छह बिल्व के, छह खदिर के, दो देवदारु तथा एक श्लेष्मायुक्त यूप था।[5] यूप के वस्त्र पर सप्तर्षियों की आभा थी। ये पुष्प और चन्दन से अलंकृत थे।[6] इंटों से अग्निकुण्ड तथा स्वर्ण की इंटों से अठारह प्रस्तार की गरुड़ की आकृति बनाई गई।[7] यूपों में यथा स्थान सर्प, पक्षी, जलचर जन्तु तथा तीन सौ पशुओं के साथ प्रत्येक दिशा से घूमकर आया हुआ अश्व भी बांधा गया।[8] महिषी कौसल्या ने अश्व का पूजन करके तीन कृपाणों से अश्व के टुकड़े किए और घृणा रहित मन से अश्व के शव के साथ रात्रि व्यतीत की।[9] तब होता, अध्वर्यु तथा उद्गाता ने महिषी, परिवृक्ता तथा वावाता को नियोजित किया।[10] इसके बाद अश्वाओं का हवन षोडश ऋत्विज करने लगे।[11] अन्य यज्ञों में प्लक्ष शाखाओं की किन्तु केवल अश्वमेध में वेतस की हवि दी जाती है।[12] अश्वमेध में तीन दिन की सवन क्रिया में क्रमशः अग्निष्टोम[13], उक्थ्य[14] और अतिरात्र[15] के परिकल्पित हैं।[16] इसके बाद इक्कीस अनुबन्ध्या पशु वाला अवभृथ होता है।[17]

---

1 तत्रैव 1 13 4 प्रवर्ग्यं शास्त्रतः कृत्वा तथैवोपसदं द्विजाः ।

2 तदेव 1 13 5 प्रातः सवनपूर्वाणि कर्माणि मुनिपुङ्गवाः ॥

3 तदेव 1 14 6 ऐन्द्रश्च विधिवद्दत्तो राजा चाभिष्टुतोऽनघ ।
माध्यंदिनं च सवनं प्रावर्तत यथाक्रमम् । (म० दि०)

4 तदेव 1 14 7 तृतीयसवनं चैव राज्ञोऽस्य सुमहात्मनः । (म० वि०)

5 तदेव 1 13 19 20। 6 तदेव 1 13 21-22

7 तदेव 1 13 23 गरुडो रुक्मपक्षो वै त्रिगुणोऽष्टादशात्मकः ।

8 तदेव 1 13 24 25

9 रा० 1 13 34 37

10 तदेव 1 13 28 होताऽध्वर्युस्तथोद्गाता हयेन समयोजयन् ।
महिष्या परिवृत्त्या च वावाता च तथा पराम् ।

11 तदेव 1 13 29 30

12 तदेव 1 13 32 प्लक्षशाखासु यज्ञानामन्येषां क्रियते हविः ।
अश्वमेधस्य यज्ञस्य वैतसो भाग इष्यते ॥

13 का० श्रौ० सू० 20 4 21 23। 14 तदेव 20 5 1 प्रातरुक्थ्य ।

15 तदेव 20 8 12 अतिरात्र उत्तम ।

16 रा० 1 13 33 34 चतुष्टोममहस्तस्य प्रथमं परिकल्पितम् ।
उक्थ्यं द्वितीयं सङ्ख्यातमतिरात्रं तथोत्तरम् ।

17 का० श्रौ० सू० 20 8 23 एकविंशतिरनुबन्ध्या ।

अन्त मे उदवासानीय हवि के पश्चात चार ऋत्विजो को अनुचरिया सहित चार पत्निया या केवल अनुचरिया दक्षिणा के रूप म देने का विधान है[1], परतु दशरथ ने पूव दिशा का राज्य होता, पश्चिम का अध्वयु को दक्षिण का ब्रह्मा और उत्तर दिशा का राज्य उदगाता को दक्षिणा के रूप मे देकर मनु के समान पथिवी दान कर दी।[2] वेदपाठी ब्राह्मणा ने इसे स्वीकार नही किया।[3] इस पर राजा ने एक लाख गाए, दश करोड स्वण तथा चालीस करोड रजत धन ऋत्विजा को दिया, जिसे प्रमुख ऋत्विक ऋष्यश्रृग ने अय ऋत्विजो को भी दिया। राजा ने एक निधन ब्राह्मण को तो अपने हाथ के आभरण उतार कर दे दिए।[4] इस प्रकार दशरथ और राम दोना ने ही बहुत-से अश्वमेध-यज्ञ किए।[5] अश्वमेध-यज्ञ मे अधिक से अधिक लोगो का बुलाया जाता था। इसम दूर-दूर से स्त्री-पुरुष अधिक सख्या मे आकर यथेष्ठ भोजन करत थे।[6] ब्राह्मणो का बहुत आदर होता था। सभी ब्राह्मण शिष्यो सहित आते थे।[8] नमिषारण्य मे सुग्रीव सहित वानर[9] तथा विभीषण सहित राक्षस[10] भी आए थ। इसमे देश-देशान्तर से राजा आत थे। दो सवनो के मध्य जो समय बचता, उसमे विभिन्न शास्त्राथ होते थे।[11] लव और कुश का रामायणगान सुनने के लिए सभी प्रकार के विद्वाना को बुलाया गया था,[12] अत अश्वमेध-यज्ञ का धार्मिक महत्त्व ही नही अपितु सास्कृतिक महत्त्व भी था।[13] यदि असमथ राजा करता तो उसे हटा दिया जाता था।[14]

राजसूय—राजसूय एक मिश्रित धार्मिक आयोजन है, जिसका सम्बध राजनीति से है।[15] राजा का कत्तव्य राजसूय है। अथर्ववेद एव परवर्ती साहित्य मे

1 तदेव 20 8 24 उदवसानीयान्ते भार्या ददाति यथासवाद सानुचरी।
2 रा० 1 13 36-37 प्राची होत्रे ददौ राजा दिश स्वकुलवधन।
अध्वयुव प्रतीची तु ब्रह्मणे दक्षिणा दिशम।
उदगात्रे तु तथोदीची च दक्षिणपा विनिर्मिता।
अश्वमेध महायज्ञे स्वयम्भूविहिते पुरा॥
3 रा० 1 13 36 38। 4 तदेव 1 13 40 44
5 तदेव 1 1 73, 4 4 5। 6 तदेव 1 13 12। 7 तदेव 1 13 13
8 तदेव 1 13 7। 9 तदेव 7 83 6। 10 तदेव 7 83 7
11 तदेव 1 13 14। 12 तदेव 7 85 5 11
13 श्यामशास्त्री, "श्री रामचद्र जी का अश्वमेध और उसका महत्त्व कल्याण रामायणाक पृ० 129 131
14 त० ब्रा० 3 8 9 4
15 गगाधर मिश्र वदिक एव वदोत्तर भारतीय सस्कृति, पष्ठ 18

इसका उल्लेख मिलता है[1] एव विशेषताए भी वर्णित हैं।[2] 'रामायण' म राजा दशरथ के इस यज्ञ को करने का संकेत मिलता है।[3] इस यज्ञ से शत्रुविनाशक-मित्र की वरुणत्व प्राप्ति[4] तथा सोम की कीर्ति-प्राप्ति का उल्लेख मिलता है।[5] इसमे बहुत से सोम-यज्ञ अन्तर्भूत हैं—पवित्र, अभिषेचनीय, दशपेय केशवपनीय, व्युष्टिद्विरात्र और क्षत्रधृति। जिसने वाजपेय यज्ञ न किया हो वही राजसूय-यज्ञ को कर सकता है।[6] फाल्गुन शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को पवित्र नामक सोम-याग किया जाता है। इसमे चार दीक्षाए, तीन उपसद तथा एक सुत्या होती है और सहस्र गाए दक्षिणा म दी जाती हैं।[7] इसके बाद पाच इष्टिया होती हैं।[8] इनमें प्रथम चार दिन अनुमति अग्निवायु, अग्निसोम का हवि देकर वसन, स्वण, गौ तथा वृषभ दक्षिणा के रूप म दिए जाते हैं।[9] पाचवें दिन आग्रयण इष्टि होती है जिसमे गौ दक्षिणा दी जाती है।[10] फाल्गुनी-पूर्णिमा को चातुर्मास्य प्रयाग आरम्भ होता है।[11] इसकी समाप्ति पर पचवातीय-होम इन्द्रतुरीया इष्टि, अपामार्ग-होम और त्रिसयुक्ता इष्टि स्थान लेती है।[12] इसके बाद राजा द्वारा सम्बन्धियों को

---

1 अथर्व० 4 8 1, 11 7 1 तै० स० 5 6 2 1 ऐ० ब्रा० 7 15 8
श० ब्रा० 5 1 1 12

2 श० ब्रा० 5 2 3 1, म० स० 4 3 1 तै० स० 1 8 1 1

3 रा० 4 5 5 राजसूयाश्वमेधैश्च वह्निर्येनाभितर्पित ।

4 तदेव 7 74 6 इष्ट्वा तु राजसूयेन मित्र शत्रुनिबर्हण ।
सुहुतेन सुयज्ञेन वरुणत्वमुपागमत ॥

5 तत्रैव 7 74 7 सोमश्च राजसूयेन इष्ट्वा धर्मेण धर्मवित् ।
प्राप्तश्च सर्वलोकेषु कीर्ति स्थान च शाश्वतम् ।

6 का० श्रौ० सू० 15 1 1 राज्ञो राजसूयाऽनिष्ट्वा वाजपेयेन ।

7 तदेव 15 1 3 पवित्रश्चतुर्दीक्ष सहस्रदक्षिण ।

8 का० श्रौ० सू० 15 1 6 पञ्चोत्तराणि ।

8 तदेव 15 1 7 अष्टाकपालोऽनुमत्यै ।
15 1 10-13 वासो देयम । हिरण्यमाग्नावैष्णव । पुनरुत्सृष्टो गौर-
ग्निष्टोमाय अनड्वान्सौम्ये एन्द्राग्ने ।

10 तत्रैव 15 1 14 गौराग्रायणे ।

11 तत्रैव 15 1 15 चातुर्मास्यप्रयोग फाल्गुन्याम ।

12 तदेव 15 1 18 पचवातीय ।
15 1 22 इन्द्रतुरीयम ।
15 2 1 अपामार्गहोम ।
15 2 11 त्रिसयुक्तेष ।

एक एक के क्रम से दी जाने वाली द्वादशरत्न हवि का स्थान आता है।[1] तदनन्तर अभिषेचनीय और यज्ञ करके[2] आठ देवासू नामक हवियाँ दी जाती हैं।[3] अब विभिन्न स्रोतो से भिन्न भिन्न जल लेकर यजमान इस गम जल म मिलाकर उदुम्बर के पात्र म डाल देता है।[4] मरुत्वतीय ग्रह के पश्चात अध्वयु व्याघ्र चम फलाता है।[5] इसक बाद वह छह पाथ हविया देता है।[6] तब उक्थ्य-संस्थ अभिषेचनीय क्रतु से राजा का अभिषेक व्याघ्रचम पर होता है। इसक बाद वाज पेय के समान ही रथावरोहण होता है।[8] रथ पर बठकर राजा अन्तःपात्य देश म रथ रोककर उतरता है।[9] अब खदिर की आसन्दी पर बिठाकर उस पाच अक्ष दिए जाते हैं, जिनम वह अपने सम्बन्धियो की सहायता से द्यूत खेलता है।[10] स्विष्टकृत्-हवि के पश्चात् माहेन्द्रग्रह लेकर अवभृथ-आयोजन तथा तीन अनुबन्ध्या गायो की हवि दी जाती है।[11] इन अनुष्ठानो के अनन्तर दश-संसृपा हविया होती है।[12] अब दशपेय सोमयाग किया जाता है।[13] तदनन्तर वशाख शुक्ल पूर्णिमा को पचबिल नामक पचहविष्क-कम होता है।[14] इसक बाद बारह प्रयुग्हवि इष्टियां होती है, जो एक मास क अन्तर से होती है।[15] इसके बाद केशवपनीय व्युष्टि द्विरात्र और क्षत्रधृति सोमयाग किए जात है।[16] कार्तिक पूर्णिमा को सौत्रामणी

---

1 तदेव 15 3 1 द्वादशोत्तराणि रत्नहवींषि।

2 तदेव 15 3 33 अभिषेचनीयदशपेययोर्न्मिणोत्तरे देवयजने।

3 तदव 15 4 4 देवसुवीपि निवपति।

4 तदेव 15 4 21 इडा तऽपा गह्णाति। 15 4 39 औदुम्बर पात्रे समा सिचति।

5 तदेव 15 5 1 मरुत्वतीयान्त पात्राणि पूर्वेण व्याघ्रचर्मास्तृणाति ।

6 15 5 3 पार्थानामग्नये स्वाहेति षड जुहोति प्रतिमन्त्रम।

7 का० श्रौ० सू० 15 5 25 व्याघ्रचर्मावरोहयति।

8 तदेव 15 6 15 वाजपेयवद्रथमवहृत्य ।

9 तदेव 15 6 22 अन्त पात्यन्देशे स्थापयति। 15 [illegible] 29 अवरोहति।

10 तदेव 15 7 5 पञ्चाक्षान पाणावधाय पश्चादनम ।

11 तदेव 15 7 22 23 पयस्यास्विष्टकृन्डि करोति। माहेन्द्रादि च।

12 तदेव 15 8 1 दशोत्तराणि ससृपाहवींषि निवपति। 13 तदेव 15 8 2 28

14 तदव 15 9 1 उत्तर शुक्ले पञ्चबिल।

15 तदेव 15 9 7 द्वादशोत्तराणि प्रयुग्घवींषि मासान्तराणि।

16 तत्व 15 9 15 तदन्ते केशवपनीयोऽतिरात्र ।
15 9 17 व्युष्टिद्विरात्र ।
15 9 19 क्षत्रधृति ।

और त्रिपशुबन्ध होता है।[1] त्रैधातवि हवि के साथ यह यज्ञ समाप्त हो जाता है।[2]

यह एक लोकप्रिय उत्सव था। इसमें राजा को परिधान से सुसज्जित कर उसका यथाविधि अभिषेक होता था। इसके पश्चात अपने किसी सबंधी पर वह कृत्रिम आक्रमण करता था या किसी राजा से छद्म-युद्ध।[3] अक्ष क्रीडा में उसे विजयी दिखाया जाता था। इस प्रकार यह यज्ञ राजा के विश्वव्यापी शासन का प्रतीक था। यह धर्मसेतु और धर्म से प्राप्त पुण्य का वर्धक और पापनाशक है।[4] यह सब होने पर भी रामचन्द्र इसलिए इसे नहीं कर सके क्योंकि भरत का परामर्श था कि इस यज्ञ के होने पर पृथिवी पर राजवंश का नाश होता है।[5] इससे क्रोध उत्पन्न होता है और पृथिवी पर वीर्यवान पुरुषों का क्षय हुआ करता है।[6] गुणों का उपयोग पृथिवी के नाश के लिए नहीं करना चाहिए। इस पर राम राजसूय-यज्ञ करने का विचार ही छोड देते हैं।[7]

वाजपेय—'रामायण' में अयोध्या के ब्राह्मणों द्वारा वाजपेय-यज्ञ से छत्र प्राप्ति का उल्लेख है।[8] सोमयागों में विशिष्ट यह वाजपेय शरदृतु में ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों द्वारा ही किया जाता है।[9] वाजपेय के आदि तथा अंत के शुक्ल पक्षों में एकाह समाप्य बृहस्पतिसव तथा ज्योतिष्टोम का विधान है।[10] इसमें सप्तदश दीक्षाएं होती हैं।[11] कार्तिक कृष्णा-द्वादशी को प्रायणीया इष्टि के बाद सोम एवं सुरा का

---

1 का० श्रौ० सू० 15 9 22 उत्तरे शुक्ले सौत्रामणी।
15 10 1 त्रिपशु पशुबन्धू स्व।
2 तदेव 15 10 24 त्रैधातव्यानुपूर्व्ययोगात्।
3 श० ब्रा० 5 4 3 1। 4 त० स० 1 8 15
5 रा० 7 74 5 धर्मप्रवचन चैव सर्वपापप्रणाशनम्।
युवाभ्यामात्मभूताभ्यां राजसूयमनुत्तमम्।
6 तदेव 7 74 13 पृथिव्यां राजवंशानां विनाशो यत्र दृश्यते।
पृथिव्यां ये पुरुषा राज पौरुष्यमागताः।
सर्वेषां भविता तत्र संक्षयः सर्वकोपजः॥
7 तदेव 7 74 18 एष्यदस्मदभिप्रायाद्राजसूयात्क्रतूत्तमात्।
निवर्तयामि धर्मज्ञ तव सुव्याहृतेन च॥
8 रा० 2 40 20 वाजपेय समुत्थानि छत्राण्येतानि पश्य न।
2 41 21 एभिश्छायां करिष्यामः स्वैश्छत्रैर्वाजपेयकैः।
9 श० ब्रा० 5 1 5 2 3
का० श्रौ० सू० 14 1 1 वाजपेय शरद्यवैश्यस्य
10 तदेव 14 1 [illegible] 3 उभयत शुक्लपक्षौ बृहस्पतिसवेन यजेत। ज्योतिष्टोमेन वा।
11 तदेव 14 1 10 सप्तदश दीक्षा।

श्रय होता है।[1] तीन दिन प्रात -साय प्रवर्ग्य उपसद के होते हैं। चतुर्दशी को अग्नि ष्टोमीय-पशु एव सप्तदश अरत्नि का एक यूप लाया जाता है।[2] सुराग्रह के लिए सप्तदश-पात्र तथा बाईस सवनीय पशु होते हैं।[3] होम के पश्चात् अध्वर्यु सोलह रथो म चार-चार अश्व जोतता है।[4] आग्नीध्र के पीछे दो स्तम्भ गाडकर उन पर सत्रह शकु वाले काष्ठ को रखकर, उनम सत्रह दुन्दुभि को बाधता है।[5] जब उध्वर्यु दुदुभि बजाता है।[6] तदनन्तर क्षत्रिय सत्रह बाणो को छोडता है जहा प्रथम बाण गिरता है, वहा से दूसरा बाण छोडता है। सत्रहवें बाण गिरने के स्थान पर उदुम्बर की शाखा गाडता है।[7] यजमान रथ पर बठता है और अन्य क्षत्रिय तथा वश्य दूसरे रथो म बठकर उदुम्बर शाखा की ओर दौडते हैं।[8] इस धावन के समय ब्रह्मा साम गायन करता है।[9] उदुम्बर की शाखा की परिक्रमा करके[10] सब देवयजन के स्थान पर आकर अध्वयु सहित जो जिसका रथ हो, उसी को दे देता है।[11] तब मधु तथा सौर ग्रहो का प्रसार होता है।[12] तब यजमान तथा पत्नी पहले से तयार यूप पर काष्ठनिर्मित इक्कीस कदमो वाली सीढी पर चढते हैं।[13] यजमान के पुत्र एव पौत्र सत्रह अश्वत्थ-पत्रो से बने पुटो को यजमान की ओर फेंकते हैं[14], जिन्हे वह पकडता है।[15] यह स्वर्गारोहण है। तब किसी अन्न को छोडकर सभी ग्राम्य एव

---

1 तदेव 14 1 14 सोमात् क्रीयमीणात सहित दक्षिणत सीसेन परिस्रुत क्रयणम ।
   14 1 15 तद्द्रव्याणा वा।
2 तदेव 14 1 20 यूपवष्टन सप्तदशभिवस्त्र व्युन्यायन वा परिव्ययणकाले।
   14 1 21 श्वो वा सवनीयेषु।
3 तदेव 14 1 28 प्रात सवनेऽतिग्राह्यान गृहीत्वा षोडशिन पच चैन्द्रान।
   14 2 3-4 सप्तदशपारान। नेष्टा च तावत सौरान।
4 तदेव 14 3 1-9
5 तदेव 14 3 14 सप्तदश दुन्दुभिनासजत्यनुवेदि पश्चादाग्नीध्रात।
6 का० श्रौ० सू० 14 3 15 बृहस्पत वाजमित्येक दुदुभिमाहन्ति तूष्णीमितरान।
7 तदेव 14 3 16 क्षत्रिय सप्तदशेषु प्रव्याधानस्यति तीर्थादुदीच ।
   14 3 17 अन्त्ये मिनोत्योदुम्बरी शाखाम।
8 तदव 14 3 20 राजन्यो वश्यो वा।
9 तदेव 14 4 1 ब्रह्मा त्रि साम गायति।
10 तदेव 14 4 7 शाखा प्रदक्षिण कृत्वा यन्ति।
11 तदेव 14 4 11 14
12 तदेव 14 4 15 अध्वर्युयजमानौ मधुग्रह सौरप्रतिग्रहाय प्रयच्छत उत्तरस्या।
13 तदेव 14 5 8 प्रजापतेरित्यारोहत ।
14 तदेव 14 5 12 सप्तदशाश्वत्थपत्रोपनद्धानूषपुटानुदस्यन्त्यस्मै विश ।
15 तदेव 14 5 13 प्रतिगृह्णात्येतान्।

आरण्य अन्न से सात बार होम किया जाता है[1] शेष अन्न से यजमान का अभिषेक होता है।[2] तब आज्याहुति, वशा —प्रचार तथा त्रैधातवीया हवि होती है।[3] इसे राजसूय से श्रेष्ठ कहा गया है।[4] कहीं-कहीं इसका आरंभ बृहस्पतिसव से न कह कर राजाओं के प्रसंग में राजसूय से बताया गया है।[5] 'शतपथ-ब्राह्मण' में बृहस्पतिसव से इसका अभेद बताया गया है।[6] रथ धावन में यह आवश्यक है कि यज्ञकर्ता विजयी रहे। कुरुक्षेत्र का रथ धावन सूत्र-साहित्य में विशेष प्रसिद्ध रहा है।[7] 'रामायण' के अनुसार रामचन्द्र ने दश-सहस्र वर्षों तक कई अश्वमेध तथा इससे दसगुन वाजपेय-यज्ञ किए।[8] इससे पाश्चात्यों की यह धारणा साम्य नहीं रखती कि वाजपेय एक ऐसा प्रारंभिक संस्कार है जो पुरोहित के रूप में प्रतिष्ठित होने से पूर्व ब्राह्मण तथा अभिषेक से पूर्व राजा को करना होता था।[9]

2 गृह्य यज्ञ तथा कृत्य

पाकयज्ञसंस्थाओं का निरूपण गृह्य-सूत्रों में मिलता है। इनका अनुष्ठान गृह्याग्नि में किया जाता है, जिसकी स्थापना विवाह-संस्कार अथवा भ्राताओं के मध्य सम्पत्ति विभाजन के समय की जाती थी।[10] चतुर्थी-होम के अनन्तर इस अग्नि की स्थापना होती है।[11] गृहस्थ प्रतिदिन गृह्य कर्म इस अग्नि में करते हैं।[12]

---

1 का० श्रौ० सू० या 14 5 1 यावत्स्मति वैश्वजम्।
14 5 23 स्रुवेण सम्भताज्जुहोति ।
2 तदेव 14 5 24 शेषेणाभिषिचति यजमानं देवस्य त्वेति।
3 तदेव 14 5 28 36। 4 श० ब्रा० 5 1 1 13
5 त० सं० 5 6 2 1 तै० ब्रा० 1 7 6 1, आ० श्रौ० सू० 9 9 19
ला० श्रौ० सू० 8 11 1
6 शा० ब्रा० 5 2 1 2, का० श्रौ० सू० 14 1 2
7 शा० श्रौ० सू० 15 3 14, आ० श्रौ० सू० 18 3 7
8 रा० 7 99 9 दशवर्ष सहस्राणि वाजिमेधानथाकरोत।
वाजपेयान्दशगुणांस्तथा बहुसुवर्णकान ॥ (नि० सा०)
9 मैक्डानल एवं कीथ वैदिक इण्डेक्स, भाग 2 पृष्ठ 321
10 पा० गृ० सू० 1 2 1 2 आवसथ्याधानं दारकाले। दायाद्यकाल एकेषाम।
गौ० ध० सू० 5 7 भार्यादिरग्निर्दायादिर्वा।
11 पा० गृ० सू० 1 2 1 पर हरिहर भाष्य,
गृह्यस्याग्नेराधानमावसथ्याधानं तद्दारकाले विवाहकाले चतुर्थीकर्मान्तर कुर्यात्।
12 या० स्मृ० 1 97 कर्म स्मार्तं विवाहाग्नौ कुर्वीत प्रत्यहं गृही।

अतिथि सत्कार—गृह्य सूत्रो में अतिथि-सत्कार के अवसर पर पाद्य अर्घ्य मधुपर्कादि का विधान है।[1] 'रामायण' में ये कार्य विधिवत मिलते हैं। जब विश्वामित्र दशरथ से मिलने आए तो राजा ने उन्हें विधिवत अर्घ्य प्रदान किया था तथा इसके बाद मित्रों की कुशलता के विषय में पूछा।[2] इसके बाद सभा भवन में वे यथोचित आसनो पर बैठ गए।[3] जब विश्वामित्र सहित राम और लक्ष्मण अहल्या के आश्रम में गए तो वह शाप समाप्त होने पर उनके चरणो में गिर पड़ी। इसके बाद अहल्या ने अर्घ्य पाद्यादि से उनका सत्कार किया। उन्होने शास्त्रोक्त विधि से उसे ग्रहण किया।[4] जब वनवास के पश्चात राम, लक्ष्मण और सीता भरद्वाज के आश्रम में पहुंचे तो उन्होने मधुपर्क के लिए गाय, अर्घ्य और उदक मगवाया।[5] वन में फल और मूलो से तैयार नाना प्रकार के रस उन्हें दिए।[6] गो सहित मधुपर्क वेदाध्यायी, आचार्य, ऋत्विक, स्नातक, राजा या किसी धार्मिक पुरुष को दिया जाता है।[7] मधुपर्क दुग्ध दधि घृत तथा मधु का मिश्रण होता है।[8] गवालम्भ का विधान विवादास्पद रहा है। पारस्कर के अनुसार अर्घ्य मास रहित नहीं हो सकता, इसलिए यज्ञ और विवाह में गवालम्भ करना चाहिए।[9] आचार्य के इस प्रकार कहने पर भी टीकाकारो ने इसकी व्याख्या नहीं की है। हरिहर ने इसे अस्वर्ग्यकर्म कहकर कलियुग में वर्जित माना है।[10] 'ऐतरेय-ब्राह्मण'

---

1 पा० गृ० सू० 1 3

2 रा० 1 17 28 29 प्रहृष्टवदनो राजा ततोऽर्घ्य समुपाहरत।
त राज्ञ प्रतिगृह्यार्घ्य शास्त्रदृष्टेन कर्मणा।
कुशल चाव्यय चैव पर्यपृच्छन्नराधिपम।

3 रा० 1 17 31 विविशु पूजितास्तत्र निषेदुश्च यथार्हत।

4 तदेव 1 48 18 पाद्यमर्घ्य तथातिथ्य चकार सुसमाहिता।
प्रतिजग्राह काकुत्स्थो विधिदृष्टेन कर्मणा।

5 तदेव 2 48 16 उपानयत धर्मात्मा गामर्घ्यमुदक तत।

6 तदेव 2 54 18 नानाविधा नरसान्व यमूलफलाश्रयान। (मै० वि०)

7 तदेव 2 48 16 पर (ज०) गामधुपर्कार्हो वेदाध्याय्याचार्य ऋत्विक्स्नातको राजा वा धर्मयुक्त।

पा० गृ० सू० 1 3 1 षडर्घ्या भवन्त्याचार्यऋत्विग्वैवाह्यो राजाप्रिय स्नातक इति।

8 तदेव 1 3 5 मधुपर्क दधिमधुघृतमपिहित।

9 तदेव 1 3 29 30 न त्वेवामासोऽर्घ्य स्यात्। अधियज्ञमधिविवाह कुरुतेत्येव ब्रूयात।

10 तदेव 1 3 30 पर हरिहर 'यद्यप्येव मधुपर्के गवालम्भ आचार्येणोक्त तथापि अस्वर्ग्यत्वाल्लोकविद्विष्टत्वाच्च कलौ न विधेय।

से ज्ञात होता है कि अतिथि सत्कार के लिए किसी वृषभ या गर्भघातिनी गाय की हिंसा की जाती थी।[1] 'सायण' के अनुसार यह सत्कार विधान युगान्तरधर्म म रहा है।[2] 'रामायण' के समय गाय की हिंसा प्रतीत नही होती क्योकि राम भरद्वाज का अपने वनवास के विषय म कहते हुए वानप्रस्थ धर्म ग्रहण करके फल मूल पर जीवन निर्वाह की बात भी कहते हैं।[3] पारस्कर ने इस अवसर पर दी जाने वाली गाय को स्वछन्द विचरण हेतु छोड़ने का विकल्प भी बताया है।[4] अगस्त्य के आश्रम पहुचने पर भी राम, लक्ष्मण और सीता का पाद्य-अर्घ्यादि से स्वागत हुआ।[5] अगस्त्य ने अग्निहोत्र के पश्चात अर्घ्य देकर पुन अतिथि-सत्कार करके वानप्रस्थ धर्म के अनुसार फलमूलादि भोजन दिया।[6] यदि अग्निहोत्र करने के पश्चात आए हुए अतिथि का सत्कार करके भोजन न दिया जाए तो परलोक में तपस्वी भी दुख का भागी होकर स्वकीय मासभक्षण करता है।[7] इस सबध में 'उत्तर काण्ड' म एक कथा भी है।[8] एक श्वेत नामक राजा अपनी मृत्यु के पश्चात स्वर्ग जाने पर भी एक सरोवर म आकर अपने शव का भक्षण किया करता था। ब्रह्मा के अनुसार वह अपनी तपश्चर्या मे रत रहता हुआ केवल अपना शरीर पुष्ट किया करता था। उसने तप करते हुए किसी को कुछ नही दिया, जबकि वह

1 ऐ० ब्रा० 3 4 15 मनुष्यराज आगतऽयस्मि वाऽक्षरुक्षाण वा वेहत वा क्षदन्त।

2 तदेव 3 4 15 पर सायणभाष्य, गृह प्रत्यागते सत्यतिथि-सत्कारार्थ शास्त्र कुशला शिष्टा कश्चिदुक्षाण वृषभ वा वेहत गर्भघातिनी वशा गा वा क्षदन्ते हिंसति।
अय सत्कार स्मृतिषु प्रसिद्धो युगातर धर्मो द्रष्टव्य।

3 रा० 2 48 15 धर्ममेवाचरिष्यामस्तत्र मूलफलाशना।

4 पा० गृ० सू० 1 3 28 अथ यद्युत्सिसृक्षेत्मम चामुष्य च पाप्मा हत ओमु त्सजत तृणान्यत्त्विति ब्रूयात्।

5 रा० 3 11 23 प्रतिगृह्य च काकुत्स्थमर्चयित्वा सनोदकै।
कुशलप्रश्नमुक्त्वा च आस्यतामिति सोऽब्रवीत।

6 तदेव 3 12 26 अग्नि हुत्वा प्रदायार्घ्य अतिथी प्रतिपूज्य च।
वानप्रस्थेन धर्मेण स तेषा भोजन ददौ॥ (मं० वि०)

7 तदेव 3 11 25 26 अग्नि हुत्वा प्रदायार्घ्य अतिथि प्रतिपूजयेत
अन्यथा खलु काकुत्स्थ तपस्वी समुदाचरन्॥
दुखाक्षीव परे लोके स्वानि मासानि भक्षयेत्।

8 रा० 7 69

स्वय भोजन कर लेता था।[1] एक बार उससे अगस्त्य ऋषि उस सरावर पर मिले जहा वह अपने शरीर का भक्षण करता था। उन्होंने इस पुरुष से उत्कृष्ट आभूषण दान लिया, तब उसे इस कम स मुक्ति मिली।[2] जब रावण के वध के पश्चात राम लौटे तब वे पुन भरद्वाज के आश्रम म ठहरे। वहा उन्हें अर्घ्य-पाद्यादि दिए।[3] सीता ने परिव्राजक वेशधारी रावण का अतिथि-सत्कार करते हुए[4] वृसी पर बठ कर पाद्य ग्रहण करने तथा वन म प्राप्य भाजन ग्रहण करने को कहा।[5] राजा एक पुरोहित रखते थे। जिसका काय अयकार्यों के साथ अतिथि-सत्कार करना भी होता था।[6] यदि पुरोहित न हो तब भी अतिथि-पूजन आवश्यक था। राम वन वास दुख का वणन करते हुए सीता से कहते हैं कि वन म आए हुए अतिथियो का प्रतिदिन विधिपूवक सत्कार करना पडेगा।[7]

रामायण' मे स्नान के पश्चात् जप का उल्लेख प्राप्त होता है।[8] यहा दिन मे तीन बार स्नान का सकेत है।[9] 'रामायण' म अनेक स्थलो पर राम और लक्ष्मण के सध्या करने का उल्लेख है[10] जिसके अनुसार उनके द्विकालिक सध्या नियम का ज्ञान होता है। प्रात काल सूय की ओर की जाने वाली सध्या को पूर्वा सध्या[11]

---

1 तदेव 7 69 14 15 स्वादूनि स्वानि मासानि तानि भक्षय नित्यश ।
स्वशरीर त्वया पुष्ट कुवता तप उत्तमम ।
अनुप्त रोहते श्वेत न कदाचिन्महामत ।
दत्त न तेऽस्ति सूक्ष्मोऽपि तप एव निषेवसे ॥

2 तदेव 7 69 23 27

3 तदेव 6 112 15 अर्घ्य प्रतिगृहाणेदमयोध्या श्वो गमिष्यसि ।

4 तदेव 3 44 31 सर्वैरतिथिसत्कार पूजयामास मथिली ।

5 तदेव 3 44 34 इय वसी ब्राह्मण काममास्यतामिद च पाद्य प्रतिगृह्यतामिति।
इद च सिद्ध वनजातमुत्तम त्वदथमव्यग्रमिहोपभुज्यताम ॥

6 रा० 1 69 14 राज्ञा च मन्त्रिसहित सोपाध्याय सबाधव ।

7 तदेव 2 28 14 प्राप्तानामतिथीना च नित्यश प्रतिपूजनम । (म० वि०)

8 तदेव 1 22 3 स्नात्वा कृतोदकौ वीरौ जेपतु परम जपम् ।

9 तदेव 2 28 15 कार्यस्त्रिरभिषेकश्च काले-काले च नित्यश (म० वि०)

10 तदेव 1 23 1 3 1 34 2 1 69 1, 2 44 24 3 17 1

11 तदेव 1 29 21 प्रातकाले चोत्थाय पूर्वां सध्यामुपास्य च । (म० वि०)
2 6 6 पूर्वां सध्यामुपासीनो जजाप सुसमाहित ।
1 34 2 पूर्वा सध्या प्रवतते ।

तया सायकालिक सन्ध्या को पश्चिमा सन्ध्या कहा गया है।[1] सुयज्ञ के मध्याह्न-सन्ध्या करने का भी सकेत मिलता है।[2] रात्रि के प्रथम प्रहर तक साय सन्ध्या का समय रहता है।[3] 'उत्तर-काण्ड' म वाली के भी सन्ध्या करने का उल्लेख है। जब रावण उसे अपने वश म करना चाहता था वह वदिक-मन्त्रो स पवत के समान अचल होकर सन्ध्या कर रहा था।[4] रावण को बाधने के पश्चात भी वह सन्ध्या करने मे लगा रहा।[5] सन्ध्याकम समाप्त करने के पश्चात वह रावण को लेकर किष्किन्धा पहुचा।[6] स्त्रिया के सन्ध्यावन्दन करने का कही स्पष्ट उल्लेख नही है। राम के वन गमन के समय कौसल्या ने वेदमन्त्रा से हवन किया।[7] टीकाकारा ने 'ऋत्विजा के मुख से हवन करवा रही थीं' ऐसा अथ किया है।[8] एक स्थल पर हनुमान् यह सोचकर सीता की प्रतीक्षा करत रहे कि वे यहा सन्ध्या करने आएगी।[9] यहा स्त्रियो के सन्ध्या करने का आभास हाता है। जलतपण तथा गायत्री जप सन्ध्या के मुख्य-अग थे।[11]

---

1 तदेव 2 44 24, 2 47 1 सन्ध्यामन्वास्य पश्चिमाम ।
3 6 62 अन्वास्य पश्चिमाम सन्ध्याम ।
3 10 67 रामस्यास्त गत सूय सन्ध्या कालोऽभ्यवतत ।
उपास्य पश्चिमा सन्ध्या सहभ्राता यथाविधि ॥

2 तदेव 3 29 3 तत सन्ध्यामुपस्थाय ।

3 रा० 1 33 16 पार्नविसज्यते सन्ध्या नभो नत्ररिवावतम् ।

4 तदेव 7 34 12 रावणो वालिन दृष्ट्वा सन्ध्योपासनतत्परम् ।
इत्येव मतिमास्थाय वाली मोनमुपास्थित ।
7 34 18 जपन् व मगमान् मन्त्रास्तस्थौ पवतराडिव ।
तस्मिन्सन्ध्यामुपासित्वा जप्त्वा च वानर ।

5 तत्रैव 7 34 29 तत्रापि सन्ध्या अन्वास्य वासवि स हरीश्वर. ।

6 तदेव 7 34 32 किष्किन्धामभिमतो गृह्य पुनराममत ।

7 तदेव 2 17 9 10 अग्निहोत्र जुहोति स्म मन्त्रवत्कृतमगला ।
प्रविश्य च तदा रामो मातरन्त पुर शुभम् ।
ददश मातर तत्र हावयन्ती हुताशनम् ॥

8 तदेव 1 17 9 पर (अ०) ज्येष्ठपत्नीत्वादृत्विङ्मुखेनेति शेष ।

9 तदेव 5 12 49 सन्ध्याकालमना श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी ।
नदीं चेमां शुभजलां सन्ध्यार्थे वरवर्णिनी ॥
5 12 51 यदि जीवति सा देवी ताराधिप-निभानना ।
आगमिष्यति सावश्यमिमां शीतजलां नदीम् ॥

10 तत्रैव 1 22 3, 1 23 1

नामकरण—पारस्कर ने दशम अथवा द्वादश रात्रि के नामकरण का विधान किया है।[1] जन्म के बारहवें दिन वसिष्ठ ने चारों पुत्रों का नामकरण किया।[2] इस दिन ब्राह्मणों को भोजन कराया गया तथा रत्न राशि बांटी गई।[3]

विवाह—दशरथ के चारों पुत्रों का विवाह एक ही दिन गृह्यसूत्रोक्त[4] उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में हुआ था, जिसका स्वामी भग है।[5] इससे पूर्व दशरथ ने राजकुमारों की मंगल-कामना के लिए श्राद्धादि करके ब्राह्मणों ने गोदान किया था।[6] विजयमुहूर्त में चारों को वसिष्ठप्रमुख ऋत्विजों ने मंगलाचार रीति कराई।[7] वेदी को गन्ध पुष्प स्वर्णशलाकाओं, छिद्रयुक्त कुम्भ दूर्वांकुर, शराव, धूपपात्र तथा शंखादि पात्रों से सजाया गया।[8] लाजा होम के लिए लाजा से पूर्ण पात्र जल से धुले अक्षत तथा विधिपूर्वक कुश बिछवाए गए।[9] विधिवत अग्नि स्थापन कर वसिष्ठ हवन करने लगे। राजा जनक ने कन्या दान किया।[10]

बलिकर्म—प्रतिपदा[11] के दिन ब्रह्मा, प्रजापति विश्वदेव और द्यावापृथिवी को हवि देने के पश्चात देवों, भूतदेवों गृह्यदेवों तथा आकाश को बलि देने का विधान।[12]

---

1 पा० गृ० सू० 1 17 1 दशम्यामुत्थाप्य ब्राह्मणान्भोजयित्वा पिता नाम करोति।

2 रा० 1 17 11 अतीत्यैकादशाहं तु नामकर्म तथा करोत्।
1 17 12 वसिष्ठः परमप्रीतो नामानि कृतवांस्तदा।

3 तदेव 1 18 22 ब्राह्मणान्भोजयामास पौरजानपदानपि।
अददद्ब्राह्मणानां च रत्नौघममलं बहु॥ (म० वि०)

4 पा० गृ० सू० 1 4 6 त्रिषु त्रिषूत्तरादिषु।

5 रा० 1 71 11 पाणीन्गृह्णन्तु चत्वारो राजपुत्रा महाबलाः।
1 71 13 उत्तरे दिवसे ब्रह्मन्फल्गुनीभ्यां मनीषिणः।
वैवाहिकं प्रशंसन्ति भगो यत्र प्रजापतिः॥

6 तदेव 1 71 18 29

7 तदेव 1 72 8 युक्ते मुहूर्ते विजये सर्वाभरणभूषिते, भ्रातृभिः सहितो रामः कृतकौतुकमंगलः।

8 तदेव 1 73 19 20 (म० वि०)

9 तदेव 1 73 21 22 (म० वि०)

10 तदेव 1 73 18 26

11 पा०गृ०सू० 1 12 1 पक्षादिषु स्थालीपाकं श्रपयित्वा दर्शपूर्णमास देवताभ्यो हुत्वा जुहोति ब्रह्मणे। प्रजापतये विश्वेभ्यो देवेभ्यो द्यावापृथिवीभ्याम्।

12 तदेव 1 12 2 विश्वेभ्यो देवेभ्यो बलिहरणं भूतगृह्येभ्य आकाशाय च।

इसम दुष्ट स्त्रिया का भी वलिया दी जाती है ।[1] कौसल्या न राम का सभी देवा के अतिरिक्त राक्षस पिशाच, वन्यपशुओं से स्वस्ति प्राथना करके पुरोहितो से हवन कराया और वाह्य-वलि की स्थापना की ।[2] राम न वास्तुशान्ति के पश्चात वेदि स्थल चत्य तथा आश्रम के किनारो पर वलि स्थापित की थी ।[3] वलि का प्रमुख तात्पय शान्ति ही है ।[4]

शालाकम—वनवास के समय चित्रकूट म राम और लक्ष्मण न पर्णशाला का निर्माण किया । उसम प्रवश स पूव उन्होंने विधिवत् वास्तुशान्ति की । व वास्तु शान्ति के लिए लक्ष्मण का मगमास लाने का आदेश दत है ।[5] यह याग दीघजीवी होने की इच्छा वाला को करना चाहिए ।[6] यह कम शास्त्र समर्थित तथा विधिधमपरक है ।[7] इस कम क लिए शुभ दिन तथा मुहूत भी शुभ होना चाहिए ।[8] इसम मल मास गुरु या शुक्रास्त, गुरु की सिंह राशि म स्थिति भाग्य नक्षत्रादि दोष वर्जित है ।[9] इस कम क लिए कृष्णमग समस्तांग-युक्त होना चाहिए ।[10] यहा कृष्णमग को मारकर लाया गया तथा मेध्य का जातवेदस (अग्नि) पर रखा गया ।[11] श्री राम ने स्नान करके आवश्यक मन्त्रा स सक्षेप म वास्तुशान्ति की ।[12] इसक उपरान्त उन्होंने पर्णशाला म प्रवेश किया ।[13] उन्होंने वश्वदेव, रुद्र तथा विष्णु सबधी बलियाँ

---

1 तत्रैव 1 12 4 बाह्यन स्त्रीबलि हरति ।

2 रा० 2 22 1 12

3 तदेव 2 25 29 उपाध्याय स विधिना हुत्वा शान्तिमनामयम ।
हुतहव्यावशेषेण बाह्य बलिमकल्पयत् ॥ (मै० वि०)

4 तत्रैव 2 56 23 पापशमन रामश्चकार बलिमुत्तमम् ।
वदिस्थलविधानानि चत्यायतनानि च ।
आश्रमस्यानुरूपाणि स्थापयामास राघव ॥ (म० वि०)

5 रा० 2 50 15 तेणेय मासमाहृत्य शाला यक्ष्यामहे वयम् ।

6 तत्रैव [illegible] 56 22 कतव्य वास्तुशमन सौमित्रे दीघजीविभि । (म० वि०)

7 तत्रैव 2 56 23 कतव्य शास्त्रदृष्टो हि विधिधमममनुस्मर । (म० वि०)

8 तत्रैव 5 56 25 मुहूर्तोऽय ध्रुवश्च दिवसोऽप्ययम् । (मै० वि०)

9 पा० गृ० सू० 3 4 2 पुण्याहे शाला कारयेत । पर हरिहर भाष्य ।

10 रा० 2 50 18 अय-ममस्नाग श्वत कृष्णमृगो यथा ।

11 तत्रैव 2 50 1[illegible] स लक्ष्मण कृष्णमग हत्वा मेध्य प्रतापवान् ।
अथ चिक्षप सौमित्रि समिद्धे जातवेदसि ॥

12 तदेव 2 50 29 सगृहणाकरा श्रवा मन्त्रान्मन्त्राववमानिवान् ।

13 तत्रैव 2 58 दृष्ट्वा देवगणा सर्वा विवेशावसथ शुचि । (म० वि०)

का विधान करके मगलार्थ प्रार्थना की तथा नदी म स्नान किया।[1] उन्होने एक बलि पापशान्त्यर्थ दी तथा वेदि, विविध स्थलो, चैत्यो तथा देवालयो म बलि की स्थापना की।[2] एक स्थल पर लक्ष्मण द्वारा पुष्पबलि से शान्तिकर्म करने का उल्लेख है।[3] इस वास्तुशान्ति मे किन किन मन्त्रो का प्रयोग हुआ इसका अनुमान लगाना सम्भव नही क्योकि गृह्य सूत्रो म[4] आज्य तथा चरु की आहुतियो का विधान है। इसमे वास्तोष्पति प्रभृति चार ऋचाओ का उच्चारण होना है। चित्रकूट पर्वत पर वनवास समय म आज्य तथा चरु का सर्वथा अभाव होगा। ऐसी स्थिति म उनका मेध्य मगमास या चरु ही हो सकता है। ऋत्विजो क अभाव म राम न यह सब कार्य सक्षेपत किया होगा। यहा बलि रखने के लिए चत्य तथा देवालयो का भी अभाव ही है। इन्ही कारणो स कुछ विद्वान इस प्रकरण को प्रक्षिप्त मानते हैं।[5]

उत्तर क्रिया— रामायण में उत्तर क्रिया अथवा मरणोत्तर-सस्कार का उल्लेख कुछ स्थलो पर हुआ है। दशरथ अपना प्रेतकृत्य तथा उदक क्रिया राम से ही करवाना चाहते थे।[6] यहा दशरथ[7] वालि[8], जटायु[9] तथा रावण[10] के मरणोत्तर सस्कार का वर्णन प्राप्त होता है। दशरथ की मृत्यु के बाद वसिष्ठ ने भरत को शोक छोडकर सस्कार का परामर्श दिया।[11] भरत न ऋत्विक पुरोहित तथा आचार्य का वरण किया।[12] दशरथ की होमशाला से अग्नियां लाकर याजको ने

---

1 रा० 5 56 31 वश्वदेव बलि कृत्वा रौद्र वष्णवमेव च।
वास्तुसशमनीयानि मगलानि प्रवर्तयत ॥ (म०वि०)

2 तदेव 2 56 33 पापसशमन रामश्चकार बलिमुत्तमम।
वेदिस्थलविधानानि चत्यायतनानि च।
आश्रमस्यानुरूपाणि स्थापयामास राघव (म० वि०)

3 तदेव 2 14 25 तत पुष्पबलि कृत्वा शान्ति च स यथाविधि।

4 पा० ग० सू० 3 4, आ० ग० सू० 2 9 7

5 श्रीपाद दामोदर सातवालेकर अयोध्या काण्ड के उत्तरार्द्ध का निरीक्षण रा० भाग 3 पृ० 455 456

6 रा० 2 22 92 मा स्म म भरत कार्षी प्रेतकृत्य गतायुष। (म० वि०)
2 14 16 17 राम कारयित यो म मतस्य सलिलक्रियाम।
सपुत्रया त्वया नव कतव्या सलिलक्रिया। (म० वि०)

7 तदेव 2 70 3 23 2 71 1 4। 8 तदेव 4 24 22 32

9 तदेव 5 64 35। 10 तदेव 6 111 100 (नि० सा०)

11 तदेव 2 70 1 11 अब्रवोद्वचन भूयो वसिष्ठस्तु महामुनि।
प्रेतकार्याणि यान्यस्य कर्तव्यानि विशापते।

12 तदेव 2 70 13 ऋत्विग्भियाजकश्चव आह्रियन्त यथाविधि।

यथाविधि होम किया।[1] उनके दाह-सस्कार के अवसर पर साम-मन्त्रो का गान किया गया। चिता प्रज्वलित करने से पूर्व ऋत्विजो सहित सभी ने चिता की प्रदक्षिणा की।[3] इसके बाद उदक क्रिया की गई।[4] तदनन्तर नगर पहुचकर दस दिन तक भूमि पर ही सोकर तथा बैठकर अशौच का पालन किया।[5] बारहवें दिन श्राद्धकर्म किए गए जिसमें भरत ने ब्राह्मणो को सभी प्रकार के अन्न व धन देकर विदा किया।[6] रामचन्द्र दाह-सस्कार तो नही कर पाए परन्तु वे उदक क्रिया विधिपूर्वक करते हैं। उन्होंने उत्तम वल्कल पहनकर इगुदी के फल रखकर[7] मन्दाकिनी के जल से उदक क्रिया की।[8] उन्होंने जलाजलि भर कर दक्षिण दिशा की ओर मुह करके पितलोक को प्राप्त दशरथ को अर्पित की।[9] इस क्रिया मे आगे कनिष्ठ व्यक्ति चलता है। इस समय आगे सीता मध्य मे लक्ष्मण तथा सबसे पीछे राम चले।[10] इसके बाद पिण्डदान किया जिसका अधिकारी पुत्र ही होता है।[11] रामचन्द्र ने बेर मिश्रित इगुदी के ही पिण्ड दिए[12], क्योंकि जिस अन्न का भक्षण

---

1 तत्रैव 2 70 14 16

2 तदेव 2 70 18 तदा हुताशन हुत्वा जेपुस्तस्य तदत्विज ।
जगुश्च ते यथाशास्त्र तत्र सामानि सामगा ।

3 तदेव 2 70 20 प्रसव्य चापि त चक्रुऋत्विजोऽग्निचित नृपम्।
स्त्रियश्च शोकसतप्ता कौसल्याप्रमुखास्तदा ।

4 तदेव 2 70 23 कृत्वोदक ते भरतेन सार्द्धम् ।

5 रा० 2 70 23 भूमौ दशाह व्यनयन्त दु खम ।

6 तदेव 2 71 1 2 द्वादशेऽहनि सप्राप्ते श्राद्धकर्माण्यकारयत् ।
ब्राह्मणेभ्यो धन रत्न ददावन्न च पुष्कलम् ।

7 तत्रैव 2 95 21 आनयेगुदिपिण्याक चीरमाहर चोत्तमम्।
जलक्रियार्थ तातस्य गमिष्यामि महात्मन ।

8 तदेव 2 95 24 ता सुतीर्थां तत कृच्छ्रादुपगम्य यशस्विन ।
नदी मन्दाकिनी रम्या सदा पुष्पितकाननाम् ।

5 95 27 28 दिश याम्यामभिमुखो रुदन्वचनमब्रवीत्।
9 तत्रैव एतत्ते राजशार्दूल विमल तोयमक्षयम् ॥
पितलोकगतस्याद्य मद्दत्तमुपतिष्ठतु ।

10 तदेव 2 95 22 सीता पुरस्ताद्व्रजतु त्वमेनामभितो व्रज ।
अह पश्चाद्गमिष्यामि गतिर्ह्येषा सुदारुणा ।

11 पा० गृ० सू० 3 10 27 पर हरिहर भाष्य

12 रा० 2 95 30 ऐगुद बदरमिश्र पिण्याक दर्भसस्तरे ।

मनुष्य स्वय करता है वही अन पितरा को दिया जाता है।[1] उन्हें वनवास के समय आरण्य भोजन ही प्राप्य था। एक राजा के नाम पर इगुदी पिण्ड दयकर कौसल्या विलाप करती हुई कहती है कि जिसने चार सागर पयन्त पथिवी को भोगा हो वह किस प्रकार इगुदी के पिण्ड का भक्षण करेगा।[2] बालि का और्ध्व दहिक-सस्कार भी नदी के किनारे सुग्रीव ने किया। इस अवसर पर पुत्र अगद को आगे रखकर तारा और सुग्रीव ने भी जलाञ्जलि दी।[3] राम और लक्ष्मण जटायु की मृत्यु के पश्चात उसे जल देते हैं।[4] रावण का अतिम सस्कार भी वदिक रीति से किया गया क्योंकि वह स्वय अग्निहोत्री था।[5] उदक क्रिया म मतक को तिल मिश्रित जल भी दिया जाता था।[6]

अष्टका— रामायण म जब जाबालि नास्तिक मत का अवलम्बन कर वेदो की निन्दा करते हैं तब अष्टका श्राद्ध म दिए जाने वाले अन्न का नाश का उल्लेख भी करते हैं। कोई मृतक अन्न नहीं खा सकता। यदि किसी का खाया हुआ अन्न अन्य के शरीर म पहुचा करता तो अवश्य ही किसी अन्य पुरुष को भोजन खिला देने पर भूख न लगा करती। इससे ज्ञात होता है कि इसम अन्न का प्रयोग होता था। यह हेमन्त और शिशिर की चारा कृष्णपक्षीय अष्टमियो पर अपूप, मास एव

---

1 तदेव 2 95 31 यदन्न पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवता ।

2 रा० 2 97 10 चतुरन्ता मही भुक्त्वा महेन्द्रसदशो भुवि ।
कथमिगुदीपिण्याक स भडक्ते वसुधाधिप ॥

3 तदेव 4 24 24 आज्ञापयत्तदा राजा सुग्रीव प्लवगेश्वर ।
और्ध्वदहिकमायस्य क्रियतामनुरूपत ॥
4 24 43 ततस्त सहितास्तत्र अगद स्थाप्य चाग्रत ।
4 24 44 सुग्रीवतारासहिता सिषिचुर्वालिन जलम् ।

4 तदेव 3 64 35 उदक चक्रतुस्तस्म गध्रराजाय तावुभौ ।
3 68 36 स्नात्वा तौ गध्रराजाय उदक चक्रतुस्तदा। (म० वि०)

5 तदेव 6 111 103 रावणस्याग्निहोत्र तु निर्वापयति सत्वरम् ।

6 तदेव 6 111 120 स्नात्वा चवाद्रवस्त्रेण तिलान्दर्भविमिश्रितान ।
उदकेन च समिश्रा प्रदाय विधिपूवकम् ॥ नि० सा०)

7 रा० 2 100 13 अष्टकापितदेवत्यमित्यय प्रसतो जन ।
अन्नस्योपद्रव पश्यमतो हि किमशिष्यति ॥
यदि भुक्तमिहान्यन देहमन्यस्य गच्छति ।
दद्यात्प्रसवत श्राद्ध न पथ्यशन भवेत ॥

शात्र से इन्द्र विश्वदेव, प्रजापति और पितरा को दिया जाने वाला श्राद्ध है।[1] इसम गामास का विधान होने पर[2] कात्यायनो म इसका लाप हो गया। जिन शाखाओ म मास का विधान नही है, इसका अनुष्ठान होता है।[3]

1 आ॰ गृ॰ सू॰ 2 4 1 हेमन्तशिशिरयोश्चतुर्णामपरपक्षाणामष्टमीष्वष्टका। एकस्या वा। पितृभ्या दद्यात।

पा॰ गृ॰ सू॰ 3 3 3 अपूपमासं तत्र यथामध्यम्।

2 आ॰गृ॰ सू॰ 2 4 13 पशुकल्पेन पशु सगप्य प्रोक्षणोपाकरणवर्ज वपामुत्खिद्य जुहुयात्।

पा॰ गृ॰ सू॰ 3 3 8 9 मध्यमा गवा। तस्य वपा जुहोति।

3 गूप्रकाश, पूर्वोद्धृत ग्रन्थ, पृष्ठ 392

सप्तम अध्याय

रामायणगत आर्ष प्रयोग

आदिकाव्य 'रामायण' मे ऐसे अनेक रूपो का प्रयोग हुआ है जो पाणिनि द्वारा समर्थित नही हैं। ऐसे रूपो को अपाणिनीय या आर्ष कहा जाता है। ऐसे अपाणिनीय रूप वैदिक-साहित्य के अतिरिक्त 'रामायण', 'महाभारत' तथा पौराणिक साहित्य मे मिलते हैं। 'रामायण' मे बहुत से नाम तथा आख्यातगत प्रयोग हैं। यहा उपसर्गों का आख्यातपद से पृथक प्रयोग नही मिलता और निपात भी केवल लौकिक अर्थों मे ही प्रयोग किए गए हैं। वे निपात जो केवल वैदिक अर्थ ही रखते हैं सर्वथा अप्रयुक्त हैं। अधोलिखित पंक्तियो मे नाम तथा आख्यातपदो मे ऐसे प्रयोगो का विश्लेषण प्रस्तुत है

1 नाम

शब्दरूप—'रामायण' मे कुछ हलन्त शब्दो के रूप अजन्त शब्दो के समान मिलते हैं। कुछ शब्दो मे अंतिम व्यञ्जन लुप्त होकर अजन्त के समान व्यवहृत हुआ है, कुछ पर अंतिम व्यञ्जन के साथ 'अ' स्वर का लोप होकर हलन्त शब्द अजन्त के समान बना है।

अत मे 'स' व्यञ्जन वाले शब्दो के रूपो मे 'स' लुप्त हो गया है। पुरूरवस शब्द का पुरूरवम [1] रूप प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार अप्सरस् तेजस मदस, रजस तथा रोधस शब्दो के रूप क्रमश अप्सराणाम[2], गन्धर्वाप्सरसकुले[3], विरजे[4] तिग्म तजो[5], मेदाद्र गात्र[6] तथा रोच्ववद[7] रूप प्रयुक्त हुए हैं।

विहायस्, उच्च श्रवस तथा दिवौकस शब्दो के अंत मे 'स' व्यञ्जन है, इन्हे

1 रा० 7 56 26 प्रतिष्ठाने पुरूरव बुधस्यात्मजमौरसम। (नि० सा०)

2 रा० 1 44 19 षष्टि कोटयोऽभवस्तासामप्सराणा सुवर्चसाम्।

3 तदेव 7 100 7 तस्मिस्तूर्यशत कीर्णे गन्धर्वाप्सरसकुले।

4 तदेव 6 40 444 वसानो विरजे वस्त्रे दिव्याभरणभूषित।

5 तदेव 3 65 23 खड्गिनो दृढधन्वानो तिग्मतजोवपुधरो।

6 तदव 6 55 11 सचुक्षुभे तेन तदाभिभूता मेदाद्रगात्रो रुधिरावसिक्त।

7 तदव 7 32 10 नर्मदा रोधवद्द्रुधवा व्रीडापयति योषित।

'अ' युक्त करके अजन्त के समान रूपों में प्रयुक्त किया गया है, यथा—विहायसम्[1], उच्चैःश्रवसवाहनम्[2] तथा दिवौकस।[3]

पश्चिन तथा वालिन शब्दों के 'न' को लुप्त करके अजन्त रखा गया है, यथा—पश्चिम[4] तथा वालिम।[5]

समस्तपदों में कुछ स्थलों पर अनियमितताएं प्राप्त होती हैं। पाणिनि के नियम के अनुसार राजन्, अहन् तथा सखिन् शब्दों को समासान्त में 'टच्' प्रत्यय से युक्त किया जाता है।[6] इससे 'महाराज' रूप बनता है जबकि 'रामायण' में महाराजा[7] रूप प्रयुक्त है। इसी प्रकार 'युवराजम्' के स्थान पर 'युवराजानम्'[8] रूप मिलता है। इसी के समान राक्षसराजानम्[9], हस्तिराजानम्[10] तथा गध्रराजानम्[11] रूप भी प्रयोग किए गए हैं। तृतीया एकवचन में प्रयुक्त कपिराज्ञा[12], तथा देवराज्ञा[13] रूप भी पाणिनि की दृष्टि से अशुद्ध हैं। यहां कपिराजन् तथा देवराजन् शब्द 'टच्' प्रत्यय के योग से अजन्त बन जाते हैं, जिससे कपिराजेण तथा देवराजेण रूप बनते हैं।

सङ्ख्यावाचक शब्दों में त्रिंशतिम्[14], द्वादशम[15], द्वादशमे[16] तथा षोडशमे[17]

---

1 तत्रैव 6 123 1 हंसयुक्तं महानादमुत्पपात विहायसम्। (नि॰ सा॰)
1 2 2 स जगाम विहायसम्। (म॰ वि॰)
2 तत्रैव 7 23 12 5 तमादिदेवमादित्यमुच्चैःश्रवसवाहनम्। (नि॰ सा॰)
3 तदेव 7 55 9 अभिषिक्तं पुरा स्कन्दं सेन्द्रैरिव दिवौकसः।
6 33 42 द्रष्टुं निर्ययतास्तत्र दस्यार इव दिवौकसः।
4 तदेव 3 13 2 मेनाते राक्षसं पश्चि ब्रुवाणो को भवानिति।
5 तदेव 7 34 23 मुमोक्षयिषवा वालिं रक्षमाणा अभिद्रुता।
6 अ॰ 5 9 91 राजाहःसखिभ्यष्टच्।
7 रा॰ 1 68 5 जनकस्त्वां महाराजाऽऽपृच्छत सपुरस्सरम्। (म॰ वि॰)
8 तदेव 2 4 18 अतस्त्वां युवराजानमभिषेक्ष्यामि पुत्रक।
2 2 15 स रामं युवराजानमभिषिञ्चस्व पार्थिवम्।
9 तदेव 5 1 38 बद्ध्वा राक्षसराजानमानयिष्यामि रावणम्।
10 तदेव 7 35 44 फलन्तं हस्तिराजानमभिदुद्राव मारुतिः।
11 तत्रैव 4 58 2 भूतलात्सहसारोप्य गध्रराजानमब्रवीत्।
12 तदेव 5 1 171 कपिराज्ञा यथाख्यातमसत्त्वमद्भुतदर्शनम्।
13 तदेव 5 1 [illegible] त्वमिहासुरसङ्घाना देवराज्ञा महात्मना।
14 तदेव 6 96 14 विंशति त्रिंशतिं षष्टिं शतशोऽथ सहस्रशः।
15 तदेव 7 54 4 पुत्रः द्वादशमो वीर्ये धर्मे च परिनिष्ठितः।
16 तत्र 7 71 1 ततो द्वादशमे वर्षे शत्रुघ्नो रामपालिताम्।
17 तदेव 4 22 29 ततः षोडशमे वर्षे गालभो निनिपातितः। (नि॰ सा॰)

रूप भी अनियमित हैं, जबकि लौकिक भाषा म त्रिशत द्वादशे तथा षोडशे रूप बनते हैं।

तद्धित प्रत्यय—'रामायण म तद्धितगत अनियमितताए भी प्राप्त होती हैं। इस प्रकार से कुछ तद्धितान्त रूप ह जामदग्नय[1] दाशरथ[2] कक्यी[3] और ककयी।[4] लौकिक भाषा म 'जामदग्न्य' स 'यञ्' प्रत्यय का योग होने पर जामदग्न्य[5] दशरथ मे इञ् प्रत्यय होकर दाशरथी[6] केकय म 'अञ्' प्रत्यय स तथा 'ककय' मे 'अञ्' प्रत्यय से 'कैकेयी' रूप बनता है।[7]

पाणिनि क अनुसार जिन शब्दो के अंत म नख या मुख हो, उनम 'ङीप प्रत्यय नही होता।[8] अत इस दृष्टि से 'रामायण म कुछ स्थलो पर प्राप्त 'शूप णखी' तथा 'शूपणखी रूप ठीक नहीं।[9] इसी प्रकार परवीयासु क स्थान पर परवयासु रूप है।[10] स्वसृ शब्द का द्वितीया एकवचन का स्वसारम्' रूप होता है परतु 'रामायण म 'स्वसाम प्राप्त है।[11] यहा ऋकारान्त शब्द के स्थान पर अकारान्त स्वसा का रूप प्रयुक्त है।

लिगव्यत्यय—'रामायण म प्रहरण, मूल, भाण्ड अथ सत्य अस्त्र तथा शस्त्र शब्द नपुसकलिंग क स्थान पर पुलिंग म, आश्रम, सन्ताप, अभ्यहार, पशु प्रसव सरीसृप, ग्राम भोग अधम समूह, परश्वधा, दोष, प्रयत्न, सागर, भाग वण तथा क्षणद पुलिंग क स्थान पर नपुसकलिंग म और पीडा एव वदना स्त्रीलिंग के स्थान

---

1 रा० 1 74 17 भागव जामदग्नय राजा राजविमदनम। (मै० वि०)
2 तदेव 6 9 21 22, 6 32 29 6 143 4 (नि० सा०)
3 तदेव 6 107 25 स शाप ककयो घोर सपुत्रा न स्पृशेत्प्रभो।
6 109 6 ॥ विना ककयीपुत्र भरत धमचारिणम्।
4 तदेव 6 112 7 ककयावचन युक्त व यमूलफलाशिनम्।
5 अ० 6 1 105 गर्गादिभ्यो यञ्।
6 तदेव 6 1 95 अत इञ्।
7 तदव 6 1 168 जनपदशब्दात्क्षत्रियादञ्।
7 3 2 केकयमित्रयुप्रलयाना यादर य्या।
8 तदेव 6 5 58 नखमुखात्सज्ञानाम्।
9 रा० 1 3 12 3 17 14, 3 21 1
10 तदेव 7 1[illegible] 2 यस्मादपा परवयासु रमत राक्षसाधमा।
11 तदेव 7 12 2 स्वसा शूपणखा नाम विद्युजिह्वाय राक्षम।

पर नपुंसकलिंग में प्रयुक्त हैं महाप्रहरण[1], प्रहरणानि[2], कूलां[3], भाण्डानि[4], सैन्या[5], अस्त्रान्[6], शस्त्रान्[7], अभ्रा[8], आश्रमाणि[9], आश्रमम्[10], सन्तापम्[11], पशूनि[12], अम्भोधरम्[13], अभ्यवहार्याणि[14], प्रसवानि[15], सरीसृपाणि[16], ग्रामाणि[17], महाभोगानि[18], भोगानि[19], अधर्मम्[20], समूहानि[21], परश्वधानि[22], दारम्[23], प्रयत्नम्[24],

---

1 रा० 7 22 35 तेन स्पृष्टो बलवता महाप्रहरणोऽस्फुरत । (नि० सा०)

2 तदेव 7 28 13 ततो नानाप्रहरणाच्छितधारान्सहस्रशः ।

3 तदेव 7 14 1[illegible] सीदन्ति च तदा यक्षा कूला इव जलेन ह । (नि० सा०)

4 तदेव 6 75 10 गजप्रवरयक्ष्याश्च रथभाण्डाश्च सस्वनान् । (नि० सा०)

5 तदेव 6 127 4 राजदारास्तथामात्या सैन्या सेनागणाङ्गना । (नि० सा०)

6 तदेव 5 41 13 गृहीत्वा विविधानस्त्रान्प्रासान्खड्गान्परश्वधान् ।

7 तदेव [illegible] 53 20 विविधपुर्विविधा शस्त्रा समरेष्वनिवर्तिन । नि० सा०)

8 तदेव 5 54 34 नीलोत्पलाभा प्रचकाशिरेऽभ्रा । (नि० सा०)

9 तदेव 1 60 10 आश्रमाणि च पुण्यानि मार्गमाणो महीपति ।

10 तदेव 7 77 6 तस्मिन्सर समीपे तु महदद्भुतमाश्रमम् । (नि० सा०)

11 तदेव 5 32 15 सन्तापयसि मा भूय सन्ताप तन्न शोभनम् ।

12 तदेव 4 34 13 रमा मा चागत राज्य धनधान्यपशूनि च ।

13 तदेव 4 26 14 भिन्नाञ्जनचयाकारमम्भोधरमिवोत्थितम् ।

14 तदेव 4 50 5 शुचीन्यभ्यवहार्याणि मूलानि च फलानि च ।

15 तदेव 4 40 47 विपक्वशालिप्रसवानि भुक्त्वा प्रहर्षिता सारसचारुपंक्ति ।
(म० वि०)

16 तदेव 6 10 16 सरीसृपाणि दृश्यन्ते हव्येषु च पिपीलिका । (नि० सा०)

17 रा० 2 51 4 पश्य यत्तो ययौ शीघ्र ग्रामाणि नगराणि च ।

18 तदेव 6 14 9 महाभोगानि मत्स्याना करिणा च करानिह ।

19 तदेव 6 14 9 भोगिनो पश्य भोगानि मया भिन्नानि लक्ष्मण ।

20 तदेव 3 8 2 अधर्मं तु सुसूक्ष्मेण विधिना प्राप्यते महान् ।

21 तदेव 3 33 23 मुनीनां च समूहानि शुष्यमाणानि तीरत ।

22 तदेव [illegible] 60 33 स शूलनिस्त्रिंशपरश्वधानि व्याविद्धदीप्तानलसप्रभाणि ।

23 तदेव 5 26 5 नैवाग्नि नून मम दारमन ।

24 तदेव 5 44 12 प्रयत्न महदास्थाय त्रिदशानामपि निग्रह ।

निशास्तिस्र' के साथ द्विवचन 'अभिजग्मतु' तथा 'हरिपुंगवा के साथ द्विवचन की क्रिया 'उत्पतेतु है।

2 कृदन्त

'रामायण' म प्रयुक्त स्तुवान'[1] पाणिनि की दृष्टि से शुद्ध नही है। √ष्टुञ स्तुत्यर्थक अदादिगण की है, जबकि 'श्नु प्रत्यय का प्रयोग स्वादिगण म होता है[2] तथा इस 'श्नु को यण हो होता है।[3] इससे √ष्टुञ का 'सुवान' रूप बनता है, जबकि √ष्टुञ का 'स्तुवान रूप बनेगा।

अदन्त के आगे 'शानच (आन्)' प्रत्यय हो तो मुक (म) का आगम होता है।[4] 'रामायण मे इसका अपवाद मिलता है। यथा—चिंतयान,[5] भ्रामयाण,[6] वधयाण,[7] वेदयान,[8] विस्मयान,[9] कामयान,[10] शोभयान[11] त्रासयाण[12] चतयान,[13] उदीरयाण[14] लोभयान[15] विस्फारयाण,[16] आह्वयान,[17] तथा प्रार्थयान।[18]

'रामायण म बहुत से स्थलो पर नुम (न) का प्रयोग नही मिलता परिगजतीम,[19] असहनी,[20] गच्छती[21] अनुधावतीम्,[22] जनयती,[23] अनुगच्छती[24] जीवतीम[25] अनुशोचतीम,[26] अपश्यती,[27] शोचतीम[28] विलपतीम्[29] गजती[30] परिसपती,[31]

---

1 रा० 6 78 4 स्तुवानो हूयमाणश्च।
2 अ० 3 1 73 स्वादिभ्य श्नु।
3 तदेव 6 4 87 हुश्नुवो सार्वधातुके।
4 तदेव 7 2 82 आने मुक।
5 रा० 1 82 2 1 44 4, 2 58 53 7 51 2 7 72 1 1 (नि० सा०), 7 68 9, 7 76 15
6 तदेव 7 32 4। 7 तदेव 7 99 19 (नि० सा०)। 8 तदेव 6 55 19
9 तदेव 6 59 95 (नि० सा०)। 10 तदेव 5 20 37, 6 5 10
11 तदेव 1 21 7। 12 तदेव 2 102 17। 13 तदेव 2 101 7
14 तदेव 3 74 29। 15 तदेव 3 42 5
16 रा० 4 46 9, 5 42 3। 17 तदेव 6 83 39। 18 तदेव 6 82 13
91 तदव 1 25 18। 20 तदेव 2 12 89 (म० वि०)
21 तदव 2 32 8 (म० वि०)। 22 तदेव 2 35 44। 23 तदेव 2 89 16
24 तदव 3 12 4। 25 तदेव 3 11 19। 26 तदव 3 44 9
27 तदेव 3 52 45 (म० वि०)। 28 तदेव 3 72 26 (म० वि०)
29 तदेव 4 20 22 (म० वि०)। 30 तदव 5 22 22। 31 तदेव 5 23 9

शोचता[1] रन्ती।[2]

'रामायण' म प्रयुक्त 'प्रणष्ट'[3] शब्द अनियमित है। √नश स्वय √णश स बनन के कारण[4] √नश क 'न' को 'ण' म परिवतन का माग अवरुद्ध हो जाता है, अत 'प्रनष्ट' रूप बनता है।

पाणिनि के अनुसार अनञ्पूव समास म 'क्त्वा' के स्थान मे 'ल्यप' आदेश हो जाता है। 'रामायण' म ऐसा न होने पर भी 'ल्यप' का प्रयोग मिलता है गह्य,[5] स्थाप्य,[6] उप्य,[7] त्यज्य,[8] वन्द्य,[9] दष्य,[10] रूप्य,[11] योज्य[12] पूज्य,[13] लक्ष्य,[14] मुच्य,[15] छाद्य,[16] सञ्चूय,[17] अचिन्त्य[18]। इसके विपरीत निम्न रूपो मे 'क्त्वा' के स्थान

---

1 तदेव 5 24 2। 2 तदेव 5 17 3। 3 तदेव 5 38 5

4 अ० 8 4 36 नशे पान्तस्य।
अ० 7 1 37 समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्।

5 रा० 1 28 1, 1 48 6 1 74 2 2 78 10 3 49 20 3 49 25 3 52 5, 3 64 13, 3 65 19, 3 70 1, 4 43 14, 4 50 14, 5 16 12, 5 35 58, 5 38 19, 5 55 16, 5 58 157 (नि० सा०), 5 60 10 5 65 12, 6 16 15 (नि० सा०), 6 22 62 (नि०सा०), 6 33 38, 6 40 24, 6 55 28 6 57 47 6 61 24 6 61 34 6 86 6 6 89 20 8 111 110 (नि० सा०), 6 100 14, 6 123 32 (नि० सा०), 6 114 8, 7 9 2 7 18 14 7 32 53, 7 32 72, 7 34 21 (नि० सा०), 7 34 32 (नि० सा०), 7 34 37 (नि० सा०) 7 61 9

6 तदेव 6 68 5, 6 111 12 (नि० सा०), 7 9 7, 7 12 12, 7 20 19 (नि० सा०), 7 31 43 (नि० सा०), 7 56 12 7 108 11 (नि०सा०) 7 110 28 (नि० सा०)

7 तदेव 1 26 1, 1 47 9 2 15 1, 2 52 84 (म० वि०)

8 तदेव 1 57 1, 3 57 3 3 57 24

9 तदेव 5 37 5 6 19 22 (नि० सा०) 7 4 13 7 43 11, 7 45 18, 7 45 10

10 तदेव 1 47 11 1 75 22 6 89 11 (नि० सा०), 7 23 33 (नि० सा०), 7 35 69 (नि० सा०)

11 तदेव 2 91 12। 12 तदेव 6 61 34। 13 तदेव 7 59 50

14 तदेव 7 15 1। 15 तदेव 7 40 25 (नि० सा०)

16 तदेव 5 19 3 (नि० सा०)। 17 तदेव 5 29 14। 18 तदेव 5 33 40

म 'ल्यप्' नही हुआ है समचिन्त्वा,[1] सन्त्यक्त्वा,[2] विसर्जयित्वा,[3] उपासित्वा,[4] प्रज्वालयित्वा[5] प्रापयित्वा[6] सवनयित्वा,[7] निहत्वा[8] प्रतपित्वा,[9] निवदयित्वा[10] उत्थापयित्वा,[11] सभाजयित्वा,[12] उपाश्रयित्वा,[13] विचायित्वा,[14] आश्वासयित्वा,[15] निवेशयित्वा,[16] आपृष्ट्वा,[17] आरोपयित्वा,[18] निवर्तयित्वा,[19] आनयित्वा,[20] सचोदयित्वा[21] प्रसादयित्वा,[22] निपातयित्वा,[23] विपादयित्वा,[24] निदशयित्वा,[25] प्रदशयित्वा,[26] सक्षोदयित्वा,[27] विमुच्य्वा[28] विमोचयित्वा,[29] विष्टम्भयित्वा,[30] अपवाह्यित्वा[31] परितोपयित्वा,[32] निपीडयित्वा,[33] प्रलोभयित्वा,[34] उत्तम्भयित्वा[35] विसर्पयित्वा,[36] परिचिन्तयित्वा ।[37]

3 आख्यात

पाणिनि के अनुमार यदि धातु अनुदात्तेत हो या ङित्' हो तो 'त' के स्थान पर

---

1 रा० 7 31 40 । 2 तदेव 7 79 7
3 तदव 1 8 21, 1 8 22, 2 10 34 (मै० वि०) 4 37 2, 6 39 35 (नि० सा०), 7 82 19 ।
4 तदव 1 1 76 7 34 29, 51 21 (नि० सा०) । 5 तदेव 7 34 39
6 तदव 4 57 34 । 7 तदेव 1 15 24 ।
8 तन्व 5 51 40, 6 66 25 (नि० सा०) 6 100 50 (नि० सा०)
9 तन्व 6 68 3 (नि० सा०)
10 तदव 1 1 74 (म० वि०) 3 1 18 4 38 36 6 109 26
11 तदेव 2 66 23 । 12 तदेव 2 107 18 । 13 तदेव 7 17 35
14 तदेव 7 46 21 (नि० सा०) । 15 तदव 2 89 22 (म० वि०)
16 तदेव 2 89 22 (म० वि०) 4 38 37
17 तदेव 1 71 91 1 73 1, 1 73 2 । 18 तदेव 1 66 17
19 तदव 2 67 27 । 20 तदेव 6 111 22 (नि० सा०)
21 तदेव 4 36 33
22 रा० 4 30 40 । 23 तदव 6 60 43 । 24 तदव 6 60 49
25 तदव 6 74 27 । 26 तदेव 3 30 22 । 27 तदेव 6 101 43 (नि० सा०)
28 तदव 7 111 24 (नि० सा०) । 29 तदेव 5 58 156 (नि० सा०)
30 तदव 5 34 33 । 31 तदव 4 28 39 (म० वि०)
32 तन्व 4 30 57 (म० वि०) । 33 तदव 4 31 57 (नि० सा०)
34 तदव 3 30 18 (म० वि०), 3 42 8 (म० वि०)
35 तन्व 3 41 43 । 36 तन्व 4 62 2 । 37 तदेव 5 48 42 (नि० सा०)

आत्मनेपद पत्यय का योग होता है[1] तथा यदि धातु स्वरितत एव 'ञित' हो और इसका फलकत गामी हो तो भी आत्मनेपद होता है।[2] होता याज्या से यजन करता है' यहा स्वगफल यजमानगामी होने से आत्मनेपद नही होगा। 'रामायण' म इन नियमा क अनुसार आत्मनेपद का प्रयोग नही मिलता।

निम्न धातुओ के अनुदात्तेत् या ङित होने पर भी उनका परस्मैपद प्रत्ययो म प्रयोग किया गया है। युध[3] सह,[4] वध[5] त्वर,[6] लभ[7] चेष्ट[8] इक्ष[9] वत,[10] प्लु[11] रम्[1] भय[13] पद्[14] क्षम्,[15] तज[16] मृज्,[17] जम्भ,[18] अधि+इङ[19] दिव्[20], ध्वस[1] अय[°] नुद[-3] कम्[24] सेव[25] गह्,[-6] परि+स्वज[7] यत्,[28], उद्—विज।[9]

इसी प्रकार कुछ परस्मैपदी धातुए आत्मनेपद म प्रयोग की गई हैं वप,[30]

---

1 अ० 1 3 13 अनुदात्तङितात्मनेपदम्।

2 तदेव 1 3 72 स्वरितञित कर्त्रभिप्राये क्रियाफले।

3 रा० 6 24 38, 6 28 21, 6 34 11, 6 41 21 6 69 20, 6 60 13, 7 27 17, 7 30 14, 7 32 59, 7 38 5

4 तदेव 2 55 3 3 62 5 4 53 9 4 61 13, 4 66 14, 6 51 43

5 तदेव 7 12 24

6 तदेव 1 48 22 1 51 23 6 48 41 नि० सा०, 6 151 31 नि० सा०, 6 123 32 नि० सा० 7 108 7 नि० सा०

7 तदेव 2 52 23 3 52 24 5 18 10, 5 18 29, 6 78 54

8 तदेव 7 28 38 नि० सा०

9 तदेव 4 39 37, 5 36 40 5 65 22, 7 75 18, 7 93 12

10 रा० 5 1 135, 618 8, 6 24 31, 6 104 25 (नि०सा) 7 71 20 (नि० सा०)।

11 तदेव 6 14 29, 7 35 28(नि० सा०)। 12 तदेव 7 70 8(नि० सा०)

13 तदेव 4 3 17, 4 3 37 (म० वि०)।

14 तदेव 5 26 8, 7 5 30 (नि० सा०)।

15 तदेव 4 52 22 6 16 19 (नि० सा०)।

16 तदेव 5 24 28 (नि० सा०)।

17 तदेव 4 42 10। 18 तदेव 3 23 20। 19 तदेव 7 2 31।

20 तदेव 4 24 44 (नि० सा०)। 21 तदेव 7 30 36 (नि० सा०)

22 तदेव 2 106 29 (म० वि०)। 23 तदेव 6 24 35।

24 तदेव 2 40 11। 25 तदेव 2 39 9। 26 तदेव 4 14 12।

27 तदेव 2 37 32। 28 तदेव 6 86 3 (नि० सा०)।

29 तदेव 2 60 9, 6 18 13, 7 34 3। 30 तदेव 4,38 2।

वद,[1], अह[2] गाम[3] पत,[4] स्वप्[5] गै[6] अट,[7] लिग,[8] शस[9] पृच्छ,[10] वध,[11] त,[12] जागृ[13] जीव[14] गम,[15] दृश्[16] वस[17] लप्[18] इष (इच्छ)[19], रक्ष, [20] भू,[21] खाद [22] व्रज्। [23]

जब √ह्वे ञ धातु आङ् उपसग-युक्त हो तो यह आत्मनेपद हो जाती है।[24] 'रामायण' म यह परस्मपद म प्रयुक्त है चाह्वयत, [25] समाह्वयेत,[26] समुपाह्वयत,[27] आह्वायति। [28] देवपूजा के वाक्य म √स्था आत्मनपदी हो जाती है।[29] 'रामायण' मे 'आदित्यमुपतिष्ठति तश्च सूर्यो भिपूजित [30] वाक्य म पूजा के अथ मे 'उपतिष्ठति

1 तदव 7 36 9 5 10 7। 2 तदेव 2 56 9, 6 99 3।
3 रा० 1 72 10, 4 4 21 (म वि०), 5 2 46 (म० वि०) 5 35 26, 6 60 80 (नि० सा०) 7 95 13 (नि० सा०)।
4 तदेव 6 55 88 8 67 41। 5 तदव 2 21 28।
6 तदेव 1 61 19। 7 तदेव 2 90 7। 8 तदेव 2 58 26।
9 तदेव 3 58 13 3 59 16, 3 67 7।
10 तदेव 1 51 4, 1 67 5। 11 तदेव 6 40 22।
12 तदेव 1 22 16 1 34 4। 13 तदेव 2 80 4।
14 तदेव 1 74 9, 2 58 21, 5 38 10, 5 64 11।
15 तदेव 1 22 17, 1 28 14, 1 67 17, 2 20 28 (म० वि०), 3 4 2, 3 60 22, 5 56 26, 6 101 39।
16 तदेव 1 38 8, 2 47 4 (म० वि०), 3 60 35 (मं० वि०) 6 4 34, 6 82 38, 7 32 8 7 69 28 7।
17 तदेव 1 49 4 1 75 14, 4 20 16।
18 तदेव 6 82 25।
19 तदेव 1 9 13 1 37 10 2 104 6, 3 7 9 3 55 14, 4 61 15।
20 तदेव 7 4 11। 21 तदेव 1 26 26 2 80 42।
22 तदेव 7 54 5। 23 तदेव 4 12 29, 5 39 9।
24 अ० 1 3 31 1 3 31 स्पर्धायामाङः।
25 रा० 6 14 3 ततस्तु निनाद घोर कृत्वा युद्धाय चाह्वयत।
26 तदेव 7 55 16 यदा तु युद्धमाकाक्ष यदि कश्चित्समाह्वयेत्।
27 तदेव 7 23 6 राक्षसस्त्वा समागम्य युद्धाय समुपाह्वयत।
28 तदव 7 34 3 गत्वाह्वयति युद्धाय वालिन हेममालिनम।
6 26 42 त्वमाह्वयति युद्धाय क्रोधनो नाम वानर।
29 सि० कौ० 2692 पर वार्तिक — 'उपाद्देवपूजासगतिकरणमित्रकरणपथिष्विति वाच्यम।
30 रा० 4 41 36

परस्मपद प्रयुक्त है।

'प्र' तथा 'उप' उपसर्गयुक्त/क्रम आत्मनेपदी होती है।[1] 'रामायण' म यह परस्मपद म प्रयुक्त है।[2] 'आङ्' उपसर्ग√पृच्छ आत्मनेपदी होती है,[3] जबकि 'रामायण' मे इसका 'आपच्छाम'[4] रूप प्रयुक्त है। 'वि' उपसर्ग√जी आत्मनेपदी होती है[5] जबकि 'रामायण' मे विजेष्यति,[6] विजेष्यसि[7] तथा पराजयेत[8] प्रयुक्त हैं।

√युज जब अजन्त उपसर्ग युक्त होती है तो आत्मनेपदी होती है।[9] इसके अनुसार 'प्र' तथा 'नि' उपसर्ग युक्त√युज् आत्मनेपदी होगी, परन्तु 'रामायण' म यह परस्मपदी प्रयुक्त है नियोक्ष्यति,[10] विनियोक्ष्यामि,[11] प्रयुञ्जीयात्।[12]

सन त√ज्ञा √श्रु, √स्म √दृश आत्मनेपदी होती हैं।[13] 'रामायण' म इसका अपवाद मिलता है जिज्ञासामि,[14] शुश्रूषति,[15] शुश्रूष शुश्रूषेत।[16]

सनन्त√युध आत्मनेपदी होती है।[17] 'रामायण' म इसका भी अपवाद है।—

---

1 अ० 1 3 42 प्रोपाभ्या समर्थाभ्याम।

2 रा 1 14 3 तत प्राक्रमदिष्टि ता पुत्रीया पुत्रकारणात।
तदेव 7 77 18 न्याहतु मुपचक्राम भार्गवो नहुषात्मजम्। (नि० सा०)
7 58 22 आरोढुमुपचक्राम विमानवरमुत्तमम। (नि० मा०)

3 सि० कौ०, 2688 पर—वार्तिक, 'आङि नु प्रच्छयो'।

4 रा० 7 37 14 आपच्छामो गमिष्यामो हृदिस्थो न सदा भवान।

5 अ० 1 3 19 विपराभ्या जे।

6 रा० 5 1 133 त्वा विजेष्यत्युपायेन विषाद वा गमिष्यति।

7 तदेव 6 60 82 पश्चादपि महाबाहो शत्रू युधि विजेष्यसि।

8 तदेव 3 57 15 जातो वा जायमानो वा सयुगे य पराजयत्।

9 सि० कौ० 2735 पर—वार्तिक 'स्वराद्यन्तोपसर्गादिति वाच्यम।

10 रा० 1 1 75 चातुर्वर्ण्य च लोकेऽस्मिन्स्वे स्वे धर्मे नियोक्ष्यति।

11 तदेव 2 20 31 विनियोक्ष्याम्यह बाणा नृवाजिगजमसु।

12 तदेव 1 4 3 चिन्तयामास कोन्वेत प्रयुञ्जीयादिति प्रभु।

13 अ० 1 3 57 ज्ञाश्रुस्मदृशा सन।

14 रा० 2 35 21 हाम ते नृपते सौम्य जिज्ञासामीति चाब्रवीत्। (म० वि०)

15 तदेव 7 79 14 मुहश्चाकृदविज्ञश्च न शुश्रूषति पूवजान (म० वि०)
6 107 27 राम शुश्रूष भद्र त सुमित्रानन्दवधन।
2 18 21 शुश्रूष मामिहस्थ स्व चर।

16 तदेव 2 10 26 भरत पालयेद्राज्य शुश्रूषच्च पितुर्यथा।

17 अ० 1 3 62 पूर्ववत् सन।

युयुत्सत[1]। सम अव प्र तथा वि उपसर्ग √स्था आत्मनेपदी होती है।[2] 'रामायण' म सतिष्ठति,[3] सतिष्ठत,[4] तथा व्यतिष्ठन,[5] रूप प्रयुक्त हैं।

प्रथम-पुरुष एकवचन म जुहाव रूप बनता है। 'स विधिवत्पावक जुहवे द्र जित[6] इस पद्यांश म प्रयुक्त 'जुहव' रूप अपाणिनीय है। 'विहास्यति' के स्थान पर 'विजहिष्यति'[7] का प्रयोग √हा म अकारण द्वित्व को प्रदर्शित करता है। इसी प्रकार जहि, उपाधेहि करोमि ददामि तथा ब्रवीमि के स्थान पर जहीहि[8] उपादधा[9] कुर्मि,[10] ददमि[11] तथा ब्रूमि[12] प्रयोग भी अपाणिनीय हैं। √शास का अनुशास्यते प्रयुक्त रूप है[13] जबकि 'अनुशिष्यते' रूप बनता है। 'बिभ्यसे'[14] रूप भी अशुद्ध है क्योंकि 'शयन प्रत्यय जोड़कर आत्मनेपद रूप उचित नहीं है।—दश मे कोई सार्वधातुक प्रत्यय लगे तो वह 'पश्य म परिवर्तित हो जाती है जबकि रामायण' म पश्येत् के स्थान पर द्रक्ष्येत्'[15] का प्रयोग किया गया है।

'रामायण' म 'त्वम के साथ प्रयुक्त चिक्षेप रूप अशुद्ध है।[16] यहा चिक्ष

1 रा० 6 41 21 त्वरयस्व बल शीघ्र कि चिरेण युयुत्सत।
2 अ० 1 3 22 समवप्रविभ्य स्था।
3 रा० 4 33 41 कस्ते न सतिष्ठति वाड निदेशे।
4 तदेव 7 75 10 तप उग्र समातिष्ठत्तापयन्सव देवता।
5 तदेव 4 14 1 वक्षरात्मानमावत्य व्यतिष्ठन्गहने वने।
6 रा० 6 67 4
7 तदेव 5 11 29 कुमारोऽप्ययमदस्तस्माद्विजहिष्यति जीवितम।
8 तदेव 4 24 33 तेनैव बाणेन हि मा जहीहि। (म० वि)
9 तदेव 2 35 28 लोकभर्तारमसदममुपादधा। (म० वि०)
10 तदेव 2 12 36 अजलि कुर्मि ककेयि पादौ चापि स्पशामि त। (म० वि०)
5 20 20 न त्वा कुर्मि दशग्रीव भस्म।
7 78 20 आहार गहित कुर्मि स्वशरीर द्विजोत्तम। (नि० सा०)
11 तदेव 1 28 15 प्रस्वापन प्रशमन ददमि सौम्य च राघव।
[illegible] 47 21 अम्बाया ददमि शोकमननकम।
5 53 9 शरीरमिह सत्वाना ददमि सागरवासिनाम।
6 112 15 अहमप्यत्र त ददमि वर शस्त्रभृता वर।
12 तदेव 3 12 17 अतश्च त्वामह ब्रूमि।
4 7 14 हित वयस्य भावेन ब्रूमि नोपदिशामि त।
13 तदेव 3 9 21 अनिष्टोऽनुशास्यते।
14 तदेव 3 44 28 कथ तेभ्यो न बिभ्यसे।
15 तदेव 3 56 20 तणमध्यस्थ कथ द्रक्ष्येत मन्गुरूम। (म० वि०)
16 रा० 5 65 13 [illegible] त्व प्रदीप्त चिक्षेप दभ त वायस प्रति।
ततस्तु वा[illegible] दीप्त स दर्भोऽनुजगाम ह॥ पर (ति०) आप प्रयोग।

पिया रूप का प्रयोग विहित है। कुछ ऐसे रूप हैं जहां द्वित्व नहीं मिलता प्रविशु,[1] शसु,[2] कुछ प्रयोगों में द्वित्व दृष्टिगोचर होता है ददशतु,[3] विससजतु[4] पस्पशतु,[5] विचक्ततु[6] प्रममाजु,[7] ववपु,[8] मुमोचतु[9]। रामायण' मे प्रयुक्त 'अवभ्रमत[10] के स्थान पर लौकिक भाषा में 'अवीभ्रमत रूप बनता है। इसी प्रकार 'अग्रहीष्टाम' के नाम पर अग्रहीताम[11] रूप प्रयुक्त है।

'रामायण में अनेक स्थलों पर किसी अन्य गण के प्रत्यय विकरण का प्रयोग किया गया है।—आस √शीङ्,[12] √भज √हन तथा √नाम अदादिगण, √हिंसि और √रुध रुधादिगण तथा √मद √बन्ध और √स्तम्भ क्र्यादिगण की धातुएं हैं। 'रामायण में ये भ्वादिगण के समान 'अ विकरणयुक्त प्रयुक्त हैं उपासन्ते उपासत[13] पर्युपासत,[14] उपासत,[15] समुपासत,[16] शयामहे,[17] प्रमार्जामि,[18] उपहिंसथा[19]

1 तदेव 5 20 40 प्रविशुस्ता गृहोत्तमम।
2 तदेव 5 51 22 शसुर्देव्यास्तदप्रियम।
3 तदेव 7 69 39 (नि० सा०)
4 तदेव 3 68 1 गिरिप्रदरमासाद्यपावके विससजतु।
5 तदेव 6 67 23 सूयमक्वाभैर्नैव पस्पशतु शर।
6 तदेव 6 67 30 भल्लरनेकविचक्ततु।
7 तदेव 2 96 16 प्रममाजू रज पृष्ठाद्रामस्यायतलोचना।
8 तदेव 6 45 35 ववपू रुधिर चास्य सिषिचुश्च पुर सरान।
9 तदेव 7 23 (प्र० 3)49 क्रोधेन महताविष्टो शरवप मुमोचतु (नि० सा०)
10 तदेव 1 43 9 तत्रवाऽवभ्रमद्देवी सम्वत्सरगणान्बहून। (मैं० वि०)
11 तदेव 1 4 44 अग्रहीता तत पादौ मुनिवेषौ कुशीलवौ।
12 रा० 1 13 13 उपासते च नान ये सुमृष्टमणिकुण्डला।
7 37 19 सुग्रीवप्रमुखा राममुपासन्ते महौजस। (नि० सा०)
7 37 21 शिरसा वन्द्य राजानमुपासन्त विचक्षणा। (नि० सा०)
7 42 1 तत्रोपविष्ट राजानमुपासन्ते विचक्षणा।
13 तदेव 7 37 20 उपासते महात्मान धनेशमिव गुह्यका। (नि० सा०)
14 तदेव 1 32 12 तपस्य तमृषि तत्र गन्धर्वी पर्युपासते।
7 49 5 निहत्याद्राघव क्रुद्ध स देव पर्युपासत।
15 तदेव 6 5 23 आश्वामिनो लक्ष्मणेन राम सन्ध्यामुपासत।
16 तदेव 6 42 1 कृत्वा वसुमती राम वत्सर समुपासत।
17 तदेव 6 54 23 शयामहे वा निहता पृथिव्यामल्पजीविता।
18 तदेव 6 53 2 रामस्याद्य प्रमार्जामि निर्वैरो हि सुग्रीवभव।
19 तदेव 3 19 8 वसन्तौ दण्डकारण्ये किमथमुपहिंसथ।

हिंसामि[1] हिंसते,[2] अनुशाससि[3] अनुशासामि,[4] अ वशासत [5]उपरोधते,[6] प्रमदन्ति,[7] ब ध,[8] व्यपाहनत्[9] व्याहनत[10] हनध्वम [11] अभ्यहनत [12] सस्तम्भ ।[13]

नी जी दह तथा वस अनिट धातुए हैं, जबकि रामायण म सेट प्रयोग की गई हैं ायिष्यति,[14] नयिष्यमि [1] नयिष्यामि,[16] आनयिष्यं त,[1] आन यिष्यामि [18] आनयितुम,[19] आनयिष्यामहे [0] व्यपनयिष्यामि,[21] व्यपनयिष्यति

---

1 तदेव 4 65 17 न त्वा हिंसामि मुश्रोणि माभूत्ते मनसो भयम ।
2 तदेव 4 52 24 ध्रुव नो हिंसते राजा सर्वा प्रतिगतानित ।
3 तदेव 6 51 23 कि मा त्वमनुशाससि ।
4 रा० 2 103 25 न याचे पितर राज्य नानुशासामि मातरम् ।
5 तदेव 7 30 49 पुनस्त्रिदिवमाक्रामद वशासच्च देवराट ।
6 तदेव 7 65 6 द्विजोऽयमुपरोधते ।
7 तदेव 2 108 17 कलशाश्च प्रमदन्ति हवने समुपस्थिते ।
8 तदेव 3 54 19 इद शरीर नि सज्ञ ब ध वा घातयस्व वा ।
9 तदेव 3 49 18 पुन व्यपाहन्छीमा पक्षिराजो महाबल ।
10 तदेव 5 46 27 शरप्रवेग व्याहनत्प्रवद्धश्चचार मार्गे ।
11 तदेव 3 26 25 शस्त्रनानाविधाकारहनध्व सवराक्षसा । (म० वि०)
12 तदेव 6 90 16 हरीनभ्यहन क्रुद्ध पर लाघवमास्थित । (नि० सा०)
13 तदेव 4 1 115 सस्तम्भ राम भद्र ते मा शुच पुरुषोत्तम ।
14 तदेव 2 12 87 मत्युरक्षमणीय मा नयिष्यति यमक्षयम । (म० वि०)
5 59 65 ततस्त्वा मामको मुष्टिनयिष्यति यमक्षयम । (नि० सा०)
15 तदेव 2 48 25 नहि मे जीवमानस्य नयिष्यसि शुभामिमाम ।
2 27 19 अथ मामेवमव्यग्रा वन नव नयिष्यसि ।
16 तदेव 7 13 37 चतुरा लाकपालांस्ता नयिष्यामि यमक्षयम ।
17 तदेव 4 38 35 निहत्य रावण युद्धे ह्यानयिष्यामि मैथिलीम । (म० वि०)
6 3 32 सप्राकारा सभवनामानयिष्यं ति राघव ।
18 तदेव 5 1 38, 5 1 39 2 73 9 2 73 11, 4 6 5, 4 6 11, 6 4 24,
19 तदेव 3 4 4 3 41 47 3 60 2 6 40 29
20 तदेव 4 44 10 आनयिष्यामहे सीता हनिष्यामश्च रावणम ।
21 तदेव 2 10 39 तत्तेव्यपनयिष्यामि नीहारमिव रश्मिवान् ।
22 तदेव 5 37 14 यस्ते युधि विनित्यारीञ्छोक व्यपनयिष्यति ।
5 54 7 यस्त युधि विनिर्जित्य शोक व्यपनयिष्यति ।

नयिता,[1] विनयिष्यन्त [2] जयिष्यसि [3] जयिष्यामि [4] विजयिष्यते[5], निर्दहिष्यामि,[6] वसिष्यामि,[7] वसिष्ये।[8]

पाणिनि के अनुसार लुङ् लङ् तथा लृङ् लकारों में 'अट्' आगम होता है।[9] इन्हीं लकारों में अजादि धातुओं में आट् आगम होता है।[10] इसके पश्चात् 'तिप्' के इकार का लोप होने पर 'अभवत्' रूप बनता है।[11] रामायण में अनेक स्थलों पर इसका अभाव है प्रदहात,[12] प्रमाजयत,[13] अवरोहत,[14] सान्त्वयत,[15] समयथन,[16] उपलक्षयताम,[17] मन्त्रयन,[18] अभिपूजयन,[19] पीडयन्न,[20] सादयन,[21] अवतारयत,[22]

---

1 रा० 5 33 76 अचिरात्त्वामितो देवि राघवो नयिता ध्रुवम्।
2 तदेव 2 63 3 आयास विनयिष्यन्त सभाया चक्रिरे कथा।
3 तदेव 2 26 3 यरमित्रा प्रसह्याजौ वशीकृत्य जयिष्यसि।
6 52 12 राक्षसा राघव त्व त कथमेको जयिष्यसि।
4 तदेव 6 56 15 कथमिन्द्र जयिष्यामि कुम्भकर्ण हते त्वयि।
5 तदेव 7 20 31 त्रैलोक्य विजित येन त कथ विजयिष्यसे। (नि० सा०)
6 तदेव 6 47 6 निर्दहिष्यामि बाणौघैवन दीप्तैरिवाग्निभि।
7 तदेव 7 77 14 वसिष्यामि न सन्देह सत्येनेतद्ब्रवीमि व।
8 तदेव 7 77 1 त्रिरात्र दर्पपूर्णासु वसिष्ये दर्पघातिनी।
9 अ० 6 4 71 लुङ् लङ्लृङ्क्ष्वड्दात्त।
10 तदेव 6 4 42 आडजादीनाम।
11 तदेव 3 4 100 इतश्च।
12 रा० 4 60 14 जटायुन प्रदहात।
13 तदेव 4 7 15 मुखमश्रुपरिक्लिन्न वस्त्रान्तेन प्रमाजयत।
14 तदेव 2 7 8 कलासशिखराकारात्प्रासादादवरोहत।
15 तदेव 2 26 24 आधाविष्टा तु वदेही काकुत्स्थो बहु सान्त्वयत्।
6 63 4 कुम्भस्ता सान्त्वयच्चमूम्।
16 तदेव 6 28 3 अमित्रविषय प्राप्ता समवेता समयथन।
17 रा० 6 92 9 रामरावणौ शरान्धकारे समरे नापलक्षयतां तदा।
18 तदेव 6 116 22 मन्त्रय रामवद्धयय वत्तय नगरस्य च।
19 तदेव 1 25 25 काकुत्स्थ सुराश्चाप्यभिपूजयन।
20 तदेव 1 65 21 नपपुङ्गवा रोषेण महताविष्टा पीडयन्मिथिला पुरीम्।
21 तदेव 1 65 23 तना देवगणान्सर्वास्तपसाह प्रसान्यम्।
22 तदेव 7 65 22 तत पान्मधमश्च द्वितायमवतारयत।

उदीरयन[1] परिधावत[2] पतत,[3] विनिष्पतत[4] पातयत[5] अभिनिष्पतत[6] समभिद्रवन[7] योजयत,[8] समवतयत्,[9] समभिवतत।[10]

माङ का प्रयोग होने पर अट' या 'आट नही होता।[11] इस प्रकार 'मा भवान् अभूत' न होकर 'मा भवान् भूत आदि वाक्य बनत हैं। 'रामायण मे 'मा शब्द' का प्रयाग होने पर भी अट आगम क प्रयोग मिलत हैं

"मा निपाद प्रतिष्ठा त्वमगम शाश्वती समा।[12]
समये तिष्ठ सुग्रीव मा बालि पथमन्वग॥[13]

यहा 'मा के योग म अगम तथा अन्वग रूप प्रयुक्त हैं।

रामायण म प्रवाह यन्ति[14], अदीप्यन्त[15] तथा कुत्सयते[16] रूप ऐसे हैं जहा अ' विकरण का प्रयोग हुआ है तथा इ को गुण हो गया है। इनक स्थान पर प्रवाहयन्ति अदीपयन्त तथा कुत्सयत रूप होने चाहिए। इसी प्रकार कारयिष्यति उदीक्षय' तथा इच्छयामि का प्रयोग निम्न वाक्या में अनावश्यक प्रतीत होता है—

'सा नून विधवा राज्य सपुत्रा कारयिष्यति।[17] सुखी भव महाबाहो कञ्चित्कालमुदीक्षय।[18] अनाजप्तस्तु सोमित्र प्रवष्टु नेच्छयाम्यहम्।[19] इन वाक्या

---

1 तदेव 2 61 3 एते द्विजा सहामात्य पथग्वाचमुदीरयन।
2 तदव 7 28 17 तत्र तत्र विपयस्त समन्तात्परिधावत।
3 रा० 1 17 11 पुष्पवृष्टि खात्पतत।
4 तदेव 7 60 9 तेजो मया मरीच्यस्तु सवगात्रविनिष्पतत।
5 तदेव 6 69 8 महती पातयञ्छिलाम।
6 तदेव 3 11 19 तत शिष्य परिवतो मुनिरप्यभिनिष्पतत।
7 तदेव 7 21 24 सक्रुद्धा राक्षसेन्द्रमभिद्रवन।
8 तदेव 5 38 30 ब्रह्मणोऽस्त्रेण योजयत। (नि० सा०)
9 तदेव 6 86 20 सवतयत्सुसक्रुद्ध पितुस्तुल्यपराक्रम।
10 तदव 4 38 8 एतस्मिन्नन्तरे चव रज समभिवतत।
4 38 19 बत कोटिसहस्राभ्या द्वाभ्या समभिवतत।
11 अ० 6 7 74 न माङ योगे।
12 रा० 2 15। 13 तदेव 4 33 18
14 रा० 2 52 57 कथ रथ त्वया हीन प्रवाह यन्ति हयोत्तमा।
15 तदेव 52 56 153 तदा दीप्यन्त म पुच्छ हनत कामयुष्टिभि।
16 तत्र 7 42 18 कथ रामो न कुत्सयत।
17 तत्र 2 12 75 (म० वि०)। 18 तदेव 7 37 प्र० 3 2 (नि० सा०)
19 तदव 7 59 प्र० 1 25 (नि० सा०)

में पूर्वोक्त रूपों के स्थान पर 'करिष्यसि', 'उदीक्षस्व' तथा 'इच्छामि' प्रयोग होने चाहिए। एक स्थल पर 'विक्रयस' के स्थान पर 'विक्रयसे'[1] रूप प्रयोग किया गया है।

पाणिनि ने 'आपुक्' तथा 'पुक्' प्रत्यय कुछ ही धातुओं को कहे हैं।[2] शाकटायन 'कथापयति' तथा 'गणापयति' रूप भी स्वीकार करते हैं।[3] भट्टोजिदीक्षित ने 'अर्थापयति' तथा 'वेदापयति' रूप भी कहे हैं।[4] 'रामायण' में तर्जापयति[5] भर्त्सापयति,[5] तथा क्रीडापयति[6] तिङन्त तथा 'जीवापित'[7] कृदन्त रूप भी प्रयुक्त हैं।

4 संधि

'रामायण' में अनेक स्थल ऐसे हैं जहां संधि होने के स्थलों पर भी संधि नहीं की गई है। बहुत से स्थलों पर स्वच्छन्द रूप से विच्छेद किया गया है। एक शब्द में संधि होना आवश्यक माना गया है। संहिता और संधि में भी अन्तर है। पाणिनि ने संहिता को परम सन्निकर्ष माना है।[8] वर्णों का अतिशय सामीप्य अथवा अर्धमात्राधिककालव्यवधानभाव संहिता होता है। ऐसे स्थलों पर संधि स्थान ले लेती है यदि वक्ता विश्राम नहीं लेता तो संधि हो जाती है। इस प्रकार एक वाक्य में जहां विराम की आवश्यकता नहीं वहां संधि आवश्यक है। धातु अथवा उपसर्गों में भी संहिता होने पर संधि नित्य है। इसके विपरीत जहां विराम हो अर्थात् वर्णों के उच्चारण का अभाव हो, वहां संधि नहीं होती। इसे 'अवसान' संज्ञक माना गया है।[9] पादान्त में संधि में स्वच्छन्दता हो सकती है। संधि दो प्रकार की मानी गई है—आन्तरिक एवं बाह्य। आन्तरिक संधि का सम्बन्ध धातुओं तथा नामपदों के अन्तिम वर्णों एवं तदुत्तरवर्ती प्रत्ययों से है। बाह्य-संधि पदों के अन्तिम अथवा आदि वर्णों में स्थान लेती है।[10] 'रामायण' में बहुत से

---

1 तदेव 6 59 66 सकृत् प्रहरदानी दुर्बुद्धे किं विक्रयस। (नि० सा०)

2 अ० 7 3 36 अर्तिह्रीव्लीरीक्नूयीक्ष्मायाता पुग्णौ।

3 सि० कौ० 2574 पर वृत्ति, शाकटायनस्तु कथादीनां सर्वेषां पुकमाह तन्मते कथापयति गणापयतीत्यादि।

4 तदेव 2677 पर वार्तिक 1758 अर्थवेदयोरप्यापुग्वक्तव्य।

5 रा० 6 25 9 तर्जापयति मां नित्यं भर्त्सापयति चासकृत्।

6 तदेव 7 32 18 नर्मदा राघवदरुद्धवा क्रीडापयति योषित।

7 तदेव 7 67 27 ब्राह्मणस्य तु धर्मेण त्वया जीवापित सुत।

8 अ० 1 4 109 पर सन्निकर्ष संहिता, द्र० बालमनोरमा व्याख्या

9 तदेव 1 4 110 विरामोऽवसानम्।

10 मक्डानल, वैदिक व्याकरण, पृष्ठ 26

स्थलो पर सधि का अभाव है

'रामायण' म समस्तपदो म कुछ स्थलो पर सधि नही मिलती । वदिक भाषा म तितउ, प्रउग और मुऊति आदि आन्तरिक विच्छेद क उदाहरण हैं। 'रामायण' म आन्तरिक विच्छेद क निम्न उदाहरण प्राप्त होत हैं—परमऋषि[1], मदवगन्धवऋषियक्षराक्षस[2] राक्षसऋक्षवानरा[3], परमऋषिणी ।[4] इन सभी उदाहरणो म 'ऋ' का अर् नही हुआ है ।

बाह्य-सधि विच्छेद भी दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है—एक तो छन्द के उसी पाद में तथा दूसरा पादो क मध्य । दो पादो के मध्य विच्छेद क बहुत से उदाहरण हैं । यदि अ, इ, उ ऋ या ल से आगे कोई सवर्ण आ जाए तो दीघ हो जाता है ।[5] रामायण म बहुत स स्थलो पर दीघ नही हुआ है

आ दीघ का अभाव—

1 सुतीक्ष्ण चाप्यगस्त्य च अगस्त्यभ्रातर तथा ।[6]
2 अनसूयासमाख्या च अगराजस्य चापणम ।[7]
3 सुन्द तु निहत राम अगस्त्यमपिसत्तमम ।[8]
4 आपतन्ती तु ता दृष्ट्वा अगस्त्यो भगवानपि ।[9]
5 कुशाम्ब कुशनाभ च असूतरजस वसुम ।[10]
6 तस्य पुत्रोऽशुमा नाम असमञ्जस्य वीयवान ।[11]
7 अथ धन्वन्तरिर्नाम अप्सराश्च सुवचस ।[12]
8 वायव्य मथन चैव अस्त्र हयशिरस्तथा ।[13]
9 दशयत महाभाग अनयो राजपुत्रयो ।[14]
10 अत्यद्भुतमचिन्त्य च अतर्कितमिद मया ।[15]
11 सुदशन शखणस्य अग्निवण सुदशनान ।[16]
12 धृवमद्य पुरी राम अयोध्याऽऽयुधिना वर ।[17]
13 कौशल्या पुत्रहीनेव अयोध्या प्रतिभाति म ।[18]

---

1 रा० 1 12 39 । 2 तदव 7 35 65 । 3 तदव 7 40 31 (नि० सा०)
4 तत्रव 7 98 22 (नि० सा०) । 5 अ० 6 1 101 अक सवर्णेदीघ ।
6 रा० 1 1 33 । 7 तदेव 1 3 11 । 8 तत्रैव 1 24 9
9 तदेव 1 25 12 (म० वि०)
10 रा० 1 31 1 । 11 तदव 1 37 22 । 12 तत्रैव 1 44 18
13 तदव 1 55 10 । 14 तदव 1 66 11 । 15 तदेव 1 66 21
16 तदव 1 69 28 । 17 तदव 2 47 29 । 18 रा० 2 53 13

14 ये त्वयाग्नयो नरेन्द्रस्य अग्न्यागारादवहिष्कृता ।[1]
15 ततस्ते सहितास्तत्र अगद स्थाप्य चाग्रत ॥[2]
16 पद्मक सरलश्चैव अशोकश्चैव शोभिताम् ।[3]
17 त्वया नाथवती नाथ अनाथा इव दृश्यते ।[4]
18 तपसा सत्यवाक्येन अनन्यत्वाच्च भर्त्तरि ।[5]
19 वद्धगोधाङ्गुलित्रश्च अवध्यकवचो युधि ।[6]
20 अमोघ क्रियता राम अय तत्र शरोत्तम ।[7]
21 तस्मात्तद्बाणपातेन अप कुक्षिष्वशोषयत् ।[8]
22 हनुमन्त त्वमारोह अगद त्वय लक्ष्मण ।[9]
23 तव दर्शनकामेन अह प्रस्थापित प्रभो ।[10]
24 हीन मा मन्यसे केन अहीन सर्वविक्रमै ।[11]
25 स्वबलस्य च घातेन अगदस्य बलेन च ।[12]
26 निमेषान्तरमात्रेण अगद कपिकुञ्जर ।[13]
27 इक्ष्वाकुकुलजातेन अनरण्येन मत्पुरा ।[14]
28 प्रजघो वालिपुत्राय अभिदुद्राव वेगित ।[15]
29 अदृष्ट प्रतिकारेण अव्यक्तेनासता सता ।[16]
30 अथवा पुत्रशोकेन अहत्वा रामलक्ष्मणौ ।[17]
31 एतस्मिन्नन्तरे तस्य अमात्य शीलवाञ्शुचि ।[18]
32 द्विविदश्चैव मन्दश्च अगदो गन्धमादन ।[19]
33 अमोघ दर्शन राम अमोघस्तव सस्तव ।[20]
34 कुमुदश्चोत्पलश्चैव अन्यश्चैव मुगर्धिम ।[21]
35 ततस्त प्रत्यभिज्ञाय अर्जुनाय न्यवेदयत्।[22]

---

1 तदेव 2 70 13। 2 तदेव 4 24 43। 3 तत्रैव 4 26 17
4 तदेव 5 38 40 (नि० सा०)। 5 तत्रैव 5 53 23
6 तदेव 6 19 12 (नि० सा०)। 7 तत्रैव 6 22 33 (नि० सा०)
8 रा० 6 22 38 (नि सा०)। 9 तत्रैव 6 22 82 (नि० सा०)
10 तत्रैव 6 32 36 (नि० सा०)। 11 तत्रैव 6 27 5
12 तदेव 6 51 1 (नि० सा०)। 13 तत्रैव 6 53 34 (नि० सा०)
14 तदेव 6 60 8 (नि० सा०)। 15 रा० 6 76 22 (नि० सा०)
16 तदेव 6 70 27। 17 तत्रैव 6 92 52 (नि० सा०)
18 तदेव 6 92 60 (नि० सा०)। 19 तत्रैव 6 99 5 (नि० सा०)
20 तदेव 6 117 30 (नि० सा०)। 21 तत्रैव 7 11 42 (नि० सा०)
22 रा० 7 35 15।

36 अद्य मे कुशल देव अद्य मे कुशल व्रतम ।[1]
37 अद्य मे सफल ज म अद्य मे सफल तप ।[2]
38 मत्तो महायुधाना च अवध्योऽय भविष्यति ।[3]
39 सुग्रीवेण सम त्वस्य अद्रोह छिद्रवजितम ।[4]
40 अह त्यक्त्वा च त वीर अयशा भीरुणा जन ।[5]
41 वत्सोऽद्य पूर्वमि द्रेण अन्तर प्रतिपालय ।[6]
42 एवमुक्तस्तु देवेन अभिवाद्य प्रदक्षिणम ।[7]
43 पूर्व ममभवत्तत्र अगस्त्यो भगवानपि ।[8]
44 दु खानि च बहूनीह अनुभूतानि पार्थिव ।[9]
45 अधम विन्म काकुत्स्थ अस्मिन्नर्यं नरेश्वर ।[10]
46 मत्प्रसादाच्च राजे द्र अतीत न स्मरिष्यति ।[11]
47 मूलस्य तु मत सौम्य अप्रमयमनुत्तमम ।[12]
48 काल काल तु मा वीर अयोध्यामवलोकितुम ।[13]
49 इत्येवमुक्त स नराधिपेन अवाक्शिरा दाशरथाय तस्मै ।[14]
50 ततोऽभिवादयामास अगस्त्यमपि सत्तमम ।[15]
51 यदा तु तद्वन श्वेत अगस्त्य स महानपि ।[16]

अ' तथा 'आ' का दीर्घाभाव—

1 अथ वष सहस्रे ण आयुर्वेन्मय पुमान् ।[17]
2 मिथिलोपवने तत्र आश्रम प्रविवेश ह ।[18]
3 तदागच्छ महातेजा आश्रम पुण्य कमण ।[19]
4 विश्वामित्र पुरस्कृत्य आश्रम प्रविवेश ह ।[20]
5 चित्रमाल्यागरागश्च आयसाभरणोऽभवत ।[21]
6 आज्ञया तु नरे द्रस्य आजगाम कुशध्वज ।[22]

---

1 तत्रैव 7 33 11 । 2 तदेव 7 33 11
3 तदेव 7 36 18 । 4 तदेव 7 33 39 (नि० सा०)
5 तदेव 7 48 13 (नि० सा०) । 6 तत्रैव 7 55 10 (नि० सा०)
7 रा० 7 56 11 (नि० सा०) । 8 तदेव 7 57 5 (नि० सा०)
9 तदेव 7 54 13 । 10 तदेव 7 55 2 । 11 तदेव 7 57 36
12 तदेव 7 67 22 (नि० सा०) । 13 तदेव 7 72 15 (नि० सा०)
14 रा० 7 66 17 । 15 तत्रैव 7 67 16 । 16 तदेव 7 69 18
17 तत्रैव 1 45 31 (म० वि०) । 18 तदेव 1 47 11 । 19 तदेव 1 48 12
20 तदेव 1 48 12 । 21 रा० 1 57 9 । 22 तदेव 1 69 6

7 कुशलं प्रश्नमुक्त्वा च आस्यतामिति सोऽब्रवीत ।[1]
8 तं देशं समतिक्रम्य आश्रमं सिद्धसेवितम् ।[2]
9 ततः क्षतवेगेन आपुपूरे तदा बिलम् ।[3]
10 तानि सर्वाणि रामाय आनीय हरियूथपा ।[4]
11 किमग्नौ निपताम्यद्य आहास्विद्वडवामुखे ।[5]
12 हृष्टा पादपशाखाश्च आनिन्युर्वानरर्षभा ।[6]
13 गुहाभ्य शिखरेभ्यश्च आशु पुप्लुविरे तदा ।[6]
14 प्रशमश्च क्षमा चैव आर्जवं प्रियवादिता ।[8]
15 यो हि शत्रुमवज्ञाय आत्मानमभिरक्षति ।[9]
16 अहं तु रथमास्थाय आगमिष्यामि सयुग ।[10]
17 रावणस्तु समासाद्य आदित्याश्च वसूंस्तदा ।[11]
18 दृष्टस्त्वं स तदा तेन आश्रमे परमर्षिणा ।[12]
19 नीत सन्निहितश्चैव आयवर्ण महाद्युती ।[13]
20 नरराक्षसयोस्तत्र आरब्धं रोमहर्षणम् ।[14]
21 गम्यतामिति चोवाच आगच्छ त्वं समरे यत्न ।[15]
22 अभिषेचनं सपूज्य आश्रमं प्रविवेश ह ।[16]
23 समारानभिषेकस्य आनयध्व समाहिता ।[17]
24 कृतोऽन्ता नरव्याघ्र आदित्यं पर्युपासत ।[18]

गुण-सन्धि—अवर्ण से इ, उ तथा ऋ परे होने पर संहिता में क्रमश ए, ओ तथा अर् आदेश होते हैं[19] परन्तु 'रामायण' में अनेक स्थलों पर इसका अभाव मिलता है—अ या 'आ' से परे 'इ' या 'ई' होने पर 'ए' गुणाभाव—

1 मूर्ध्नि राममुपाघ्राय इदं वचनमब्रवीत ।[20]
2 यतस्व मुनिशार्दूल इत्युक्त्वा त्रिदिवं गत ।[21]

---

1 तदेव 3 11 23 । 2 तदेव 4 42 31 । 3 तदेव 4 45 6
4 तदेव 5 38 37 । 5 तदेव 5 53 9
6 रा० 5 55.22 । 7 तदेव 6 4 19 । 8 तदेव 6 14 15
9 तदेव 6 63 20 (नि० सा०) । 10 तदेव 6 90 6 (नि० सा०)
11 तदेव 7 29 31 । 12 तदेव 7 30 20 । 13 रा० 7 30 48 (नि० सा०)
14 तदेव 7 32 50 । 15 तदेव 7 41 14 (नि० सा०)
16 तदेव 7 59 17 (नि० सा०) । 17 तदेव 7 65 10
18 तदेव 7 72 20
19 अ० 6 1 87 आद्गुण । 20 रा० 1 25 21 । 21 तदेव 1 62 21

3 धनुदशय रामाय इति होवाच पार्थिवम ।[1]
4 वत्स राम धनु पश्य इति राघवमब्रवीत ।[2]
5 विदित त महाराज इक्ष्वाकुकुलदवतम ।[3]
6 यथेषा रमते राम इह सीता तथा कुरु ।[4]
7 नागेन्द्र इव नि श्वस्य इद वचनमब्रवीत ।[5]
8 प्राकृतश्चाल्पसत्त्वश्च इतर क सहिष्यति ।[6]
9 बाहुभ्या सपरिष्वज्य इद वचनमब्रवीत ।
10 ककेय्या वरदानेन इद च विकृत कृतम ।[8]
11 एषकालात्ययस्तात इति वाक्यविदा वर ।[9]
12 कस्त्व केन च कार्येण इह प्राप्तो वनालय ।[10]
13 अयमेको महाराज इन्द्रजित्क्षपयिष्यति ।[11]
14 धमप्रधानस्य महारथस्य इक्ष्वाकुवशप्रभवस्य राम ।[1]
15 शालानुधम्य शलाश्च इद वचनमब्रुवन ।[13]
16 सौमित्रि सपरिष्वज्य इद वचनमब्रवीत ।[14]
17 स्तूयमानो हयमाणश्च इद वचनमब्रवीत ।[15]
18 तस्य राक्षसराजस्य इक्ष्वाकुकुलनन्दन ।[16]
19 प्रयत्नवन्तौ तत्कम ईहतुबलदर्पितौ ।[17]
20 यदि तावच्छिशारस्य ईदशो गतिविक्रम ।[18]
21 पुत्रस्तस्यामरशेन इन्द्रेणाथ निपातित ।[19]
22 समद्धश्चाश्वमेधश्च इष्ट्वा परमदुजय ।[20]
23 आसीद्राजा निमिर्नाम इक्ष्वाकुणा महात्मनाम ।[21]
24 तत पितम्माम त्र्य इक्ष्वाकु हि मनो सुतम ।[22]
25 सोमश्च राजसूयन इष्ट्वा धर्मेण धमवित ।[23]

---

1 तदेव 1 66 1 । 2 तदव 1 66 12 । 3 तदेव 1 69 14
4 रा० 3 12 4 । 5 तदेव 3 31 12 (नि० सा०) 6 तदेव 3 62 5
7 तदेव 4 39 10 । 8 तदेव 4 55 15 । 9 तदेव 4 59 21
10 रा० 5 3 23 (नि० मा०) । 11 तदेव 6 7 18 (नि० सा०)
12 तदेव 6 14 12 (नि० सा०) । 13 तदेव 6 11 6 । 14 तदेव 6 23 1
15 तदेव 6 78 4 । 16 तदेव 7 19 20 (नि० सा०)। 17 रा० 7 34 18
18 तदेव 7 35 27 । 19 तदव 7 35 59
20 तदेव 7 51 23 (नि० सा०) । 21 तदेव 7 55 4 (नि० सा०)
22 तदेव 7 55 8 (नि० सा०) । 23 तदेव 7 74 7

26 बुधस्य समवण च इलापुत्र महावलम ।[1]

'अ' से आगे 'उ' या 'ऊ' होने पर 'ओ' गुणाभाव—

1 यक्षिण्या घोरया राम उत्सादितमसह्यया ।[2]
2 सिद्धे कर्माणि देवेश उत्तिष्ठ भगवान्निति ।[3]
3 रुद्रया प्रतिरूपाय उमा लोकनमस्कृताम् ।[4]
4 निरग्नि त परिष्वज्य ऊरुर्भार्या महौजस ।[5]
5 विचेष्टमानामादाय उत्पपाताथ रावण ।[6]
6 स्नात्वा तौ गृध्रराजाय उदक चक्रतुस्तदा ।[7]
7 न्यबुद रक्षसामत्र उत्तरद्वारमाश्रितम् ।[8]
8 नानाधातुविचित्रश्च उद्यानरुपशोभितम ।[9]
9 त लक्ष्मण प्राञ्जलिरभ्युपेत्य उवाच राम परमार्थयुक्तम् ।[10]
10 स वक्ष वनमालोक्य उत्पपात तदागद ।[11]
11 क्षमस्वाद्य दशग्रीव उष्यता रजनी त्वया ।[12]
12 शिशुक त समादाय उत्तस्थौ धातुरग्रत ।[13]
13 वसिष्ठस्य तु वाक्येन उत्थाप्यप्रकृतिजाम् ।[14]

वृद्धि-सन्धि— अ' या आ से परे ए, एं', 'ओ' तथा 'औ होने पर ऐ' तथा औ वृद्धि होती है ।[15] रामायण मे अनेक स्थलो पर इसका भी अभाव है 'अ' से परे ए' होने पर ऐ वृद्धि का अभाव—

1 रात्रौ लकाप्रवेश च एकस्यापि विचिन्तनम ।[16]
2 इक्ष्वाकुणा कुले देव एष मे अस्तु वर पर ।[17]
3 भूमिरस्याहिताग्नेश्च एकपत्नीव्रतस्य च ।[18]
4 बालश्चाकृतबुद्धिश्च एकपुत्रश्च मे प्रिय ।[19]
5 इदानी मा कृथा वीर एव विधमरिन्दम ।[20]
6 निर्जिता स्मेति या सूत एष म सुनिश्चय ।[21]
7 एते हनुमता तत्र एकेन विनिपातिता ।[22]

---

1 रा० 7 80 24 । 2 तदेव 1 23 29 । 3 तदेव 1 28 8
4 तदेव 1 34 19 । 5 तदेव 1 72 26 । 6 तदेव 3 47 21
7 रा० 3 68 36 (म० वि०) । 8 तदेव 6 3 27
9 तदेव 6 39 25 (नि० सा०) । 10 तदेव 6 47 44
11 तदेव 6 58 7 । 12 तदेव 7 32 30
13 रा० 7 36 1 । 14 तदेव 7 97 11 । 15 अ० 6 1 88 वृद्धिरेचि ।
16 रा० 1 3 16 । 17 तदेव 1 41 19 । 18 तदेव 2 58 37
19 रा० 4 18 54 (म० वि०) । 20 तदेव 6 41 4 (नि० सा०)
21 तदेव 7 19 3 । 22 तदेव 7 35 3 ।

9 यक्षपन्नगगन्धर्वयासु रूपविद्याधरीषु च ।[1]

10 ततो यज्ञे समाप्ते तु ऋतुना पट समत्ययु ।[2]

पूर्वरूप-सन्धि—पदान्त में 'ए' अथवा 'ओ' हो तथा उससे परे 'अ' या आ जाए तो अय' और 'अव्' का बाध होकर पूर्वरूप हो जाता है।[3] रामायण' में कुछ स्थलों पर इसका अभाव है—

1 न च पश्यामहेऽश्व त अश्वहर्तारमेव च ।[4]

2 एकतामगमन् सर्वे असुरा राक्षसै सह ।[5]

3 तस्तव रामयुद्धिदृष्ये अभिरूप कृते मम ।[6]

4 मम कौशिक भद्र ते अयोध्या त्वरिता रथ ।[7]

5 उपक्लृप्त यदेतन्मे अभिषेकार्थमुत्तमम ।[8]

6 इति तेन वय सर्वे अनुनीता महात्मना ।[9]

7 राक्षसेन्द्रो जनस्थाने अवध्य सुरदानव ।[10]

8 त्वरते कार्यकाला मे अहश्चाप्यतिवर्तत ।[11]

9 अरण्य मुनिभिर्जुष्ट अवनेया भविष्यसि ।[12]

10 शून्य चव सौमित्रे अवस्थितमिव लक्षये ।[13]

11 भ्रातर मुख्य राज्ये अभिषिच्य महीपतिम ।[14]

12 माधमामन्त्र्य भद्र ते अनुभाक्तु महात्मवम ।[15]

13 पुत्रे स्थित्न दुराधर्षे अयोध्या पुनरागमत ।[16]

14 सर्वाणि रामगमन अनुजग्मुहि तान्यपि ।[17]

अयादि-सन्धि—यदि ए ऐ, ओ, तथा औ से आगे कोई स्वर हो तो क्रमश 'अय' अव' आय तथा आव' हो जाते हैं।[18] 'रामायण' में कुछ स्थलों पर इस नियम का भी अभाव मिलता है

1 अहो तपसा स्म भद्र ते इति शुश्राव राघव ।[19]

2 एकवशति यूपान्ते एकविंशत्यरत्नय ।[20]

3 सौमदा नाम भद्र ते ऊर्मिलातनया तदा ।[21]

---

1 रा० 1 16 5 । 2 तदेव 1 18 7 (नि० सा०)

3 अ० 6 1 109 एङ पदान्तादति । 4 रा० 1 40 9 (नि० सा०)

5 तदेव 1 45 41 (नि० सा०) । 6 तदव 1 51 22 । 7 रा० 1 66 24

8 तदेव 2 22 4 (नि० सा०) । 9 तदेव 2 87 17 (नि० सा०)

10 तदेव 4 61 6 । 11 तदेव 5 1 117 । 12 तत्रैव 7 46 9 (नि० सा०)

13 रा० 7 46 14 (नि० सा०) । 14 तदेव 7 69 9 ।

15 तदेव 7 91 10 (नि० सा०) । 16 तदव 7 92 13 ।

17 तदेव 7 109 21 (नि० सा०) । 18 अ० 5 1 78 एचोऽयवायाव ।

19 रा० 1 13 12 । 20 तदेव 1 13 20 । 21 तत्रैव 1 32 12

4 एव भवतु भद्र ते इक्ष्वाकुकुलवर्धन [1]
5 सीता रामाय भद्र तं ऊर्मिला लक्ष्मणाय च[2]।
6 लक्ष्मणागच्छ भद्र तं ऊर्मिलामुद्यता मया[3]
7 व्यक्त रामाभिषेकार्थे इहायास्यति धर्मराट्[4]।
8 दातुमिच्छति कर्तव्य उपस्थितमिद तव[5]।
9 ते तु तस्मि महावक्षे उषित्वा रजनी शुभाम्[6]।
10 आगच्छागच्छ शीघ्र व आर्यपुत्र सहानुज[7]।
11 स कदाचिच्चिरालोके आससाद महामुनिम्[8]।
12 हृतापि तद्ह न जरा गमिष्ये आज्य यथा मक्षिकयावगीर्णम्[9]
13 त्व वयस्योऽसि हृद्यो मे एक दु ख सुखच नौ ।[10]
14 मद्य घो न कृपा चक्रे आर्यको य ममेति स[11]।
15 सीता श्रुत्वाभिधान मे आशामेष्यति जीविते[12]।
16 त्रिविध पुरुषा लोके उत्तमाधममध्यमा[13]
17 यथाहमुपविष्टास्ते आसनेष्वपिपुगवा[14]।
18 सुवेश राक्षस जाने ईशानवरदर्पितम्[15]।
19 एवमुक्त्वा गता सर्वे ऋषयस्ते यथागतम्[16]।
20 स नष्टा गा क्षुधार्तो व अन्विषस्तत्र ह[17]।
21 एते द्विजर्षभा सर्वे आसनेषूपवेशिता[18]।
22 दिश तु वरमेत मे इप्सित परम मम[19]।
23 इहैव वस दुर्मेधे आश्रमे सुसमाहिता[20]।
24 अथ नष्टे सहस्राक्षे उद्विग्नमभवज्जगत[21]।
25 निवेश्य ते पुरवर आत्मजौ सनिवेश्य च ।
26 वस वा वीर भद्र ते एवमाह पितामह[23]।

'रामायण' में कही-कही उसी पाद मे भी स्वर-सधि का अभाव मिलता है

1 तदेव 1 41 21 । 2 तदेव 1 70 21 । 3 तदेव 1 72 18 ।
4 रा० 2 12 22 । 5 तदेव 2 21 14 (नि० सा०) । 6 तदेव 2 48 1
7 तदेव 3 43 3 (नि० सा०) । 8 तदेव 3 41 42 । 9 तदेव 3 45 43 ।
10 तदेव 4 5 17 (नि० सा०) 11 रा० 5 60 25 ।
12 तदेव 6 4 5 (नि० सा०) । 13 तदेव 6 6 6 ।
14 तदेव 7 1 15 (नि० सा०) । 15 तदेव 7 6 20 ।
16 तदेव 7 36 62 (नि० सा०) । 17 तदेव 7 53 10 (नि० सा०) ।
18 रा० 7 74 4 (नि० सा०) । 19 तदेव 7 67 10 । 20 तदेव 7 74 13 ।
21 तदेव 7 77 4 । 22 तदेव 7 90 18 । 23 तदेव 7 94 14 ।

दीर्घ-सन्धि का अभाव—

1 हत्वा अश्वानपातयत्[1]।
2 वा आस्थित[2]।
3 रावणस्तत्र आगत[3]।
4 एवा दीना अनाथवत्[4]।

6 'अ' आगे 'इ' या 'ई' होने पर गुण-सन्धि का अभाव—

1 चित्रकर्म इवाभाति[5]।
2 इन्द्र इन्द्रेति[6]।
3 स विहाय इम लोकम्[7]।
4 मदमस्य इल सुत[8]।
5 उवाच इलसन्निधौ[9]।
6 वत्स राम इमा पश्य[10]।
7 सर्वान्नो नय ईश्वर[11]।

अ से आगे 'उ' या 'ऊ' होने पर 'ओ' गुण का अभाव—

1 वामरूपण उन्मत[12]। 2 प्रणिपत्य उमा देवीम[13]।

'आ' से आगे 'इ' या 'ई' होने पर 'ए' गुण का अभाव

धर्मात्मा इति[14]	अनाथा इव[15]
चन्द्रमा इव[16]	सा इहाहृता[17]
हता इन्द्रजिता[18]	गगा इव[19]
तेजसा इव[20]	सीता इति[21]
मान्धाता इति	सा इला[23]

'आ' से आगे 'उ' तथा 'ऊ' होने पर 'ओ' गुणाभाव—

1 तदेव 6 66 30। 2 रा० 7 36 43 (नि०सा०)।
3 तदेव 7 31 10 (नि० सा०)। 4 तदेव 7 49 5 (नि० सा०)।
5 तदेव 7 28 41 (नि० सा०)। 6 तदेव 7 35 42 (नि० सा०)।
7 तदेव 7 61 19 (नि० सा०)।
8 रा० 7 81 7। 9 तदेव 7 81 16। 10 तदेव 7 97 10।
11 तदेव 7 97 14। 12 तदेव 3 47 4। 13 तदेव 7 87 21 (नि० सा०)।
14 तदेव 1 20 7। 15 तदेव 5 38 40 (नि० सा०)। 16 तदेव 5 1 83
17 रा० 6 12 28 (नि० सा०)। 18 तदेव 6 71 7
19 तदेव 7 31 36 नि० सा०)। 20 तदेव 7 36 36 (नि० सा०)
21 तदेव 6 84 7 (नि० सा०)। 22 तदेव 7 59 5। 23 तदेव 7 79 9

अपाय वा उपाय वा[1]

'अ' या 'आ' तथा 'ए' के मध्य वृद्धि का अभाव—

अवश्या एवम् एषा एव[3]

एव एव[4] सर्वा एव[5]

'इ' तथा 'आ' के मध्य यणभाव—

त्वयि आत्मगतान्[6]

'ई' तथा 'उ' के मध्य यणाभाव—

छत्री उपानही[7]

'ए' तथा 'अ' के मध्य अयभाव—

बलमध्य अमपणे[8]

'ए' तथा 'इ' के मध्य यणभाव—

वने इक्ष्वाकुकुलदवतम्[9]। रेमे इला[10]। प्रतिष्ठाने इलो राजा[11]।

'ए' तथा 'उ' के मध्य अयभाव—

आवेदे उपसगस्तम्[12]। रथो मे उपनीयताम्[13]

---

1 तत्रैव 3 38 8

2 रा० 7 56 21 (नि० सा०)। 3 तत्रैव 7 69 28 (नि० सा०)

4 तत्रैव 7 69 28 (नि० सा०)। 5 तत्रैव 7 79 21। 6 तत्रैव 4 8 5

7 तत्रैव 3 44 3। 8 रा० 6 30 8 (नि० सा०)

9 तत्रैव 7 57 7 (नि० सा०)। 10 तत्रैव 7 79 1। 11 तत्रैव 7 20 23

12 तत्रैव 2 62 2 (नि० सा०)। 13 तत्रैव 7 22 2 (नि० सा०)

अष्टम अध्याय

उपसहार

प्राचीन काल से ही यह बात प्रसिद्ध रही है कि इतिहास-पुराण से वेदार्थ का उपब हण करना चाहिए।[1] उपब हण का अर्थ क्लिष्ट शब्दार्थ का स्पष्टीकरण ही नहीं है अपितु विशदीकरण भी है। रामायण' की रचना भी वेदो के उप बृहण के लिए हुई।[2] वैदिक वाणी की निगूढता के कारण सर्वसाधारण का प्रवेश उसमें असम्भव जैसा था। वैदिक भाषा का सन्देश पहुचाने के लिए लोकभाषा एव लोकरुचि का समन्वय नितान्त आवश्यक था। आदिकवि महर्षि वाल्मीकि ने वैदिक देवताओ को लोकरुचि की अनुरूपता देकर सर्वप्रथम सर्वसुलभ बनाया है। वैदिक संस्कृति का महान् सन्देश इस काव्य रचना मे श्रुतिगोचर होता है।[3]

वैदिक-साहित्य के बाद 'रामायण' का ही स्थान आता है। इसका काल वैदिक साहित्य से पश्चात परन्तु 'महाभारत' से पूर्व ठहरता है। अपाणिनीय प्रयोग इस बात के सूचक है कि 'रामायण' की रचना पाणिनि के काल षष्ठ शतक इस्वी पूर्व से पहले हो चुकी थी। इसके अध्ययन से एक अन्य बात सामने आती है कि 'रामायण' कुशीलवो द्वारा गाई जाती रही, जिससे इसका परिवर्तन तथा परिवर्धन होता रहा। इसमे कौन-सा अश प्रक्षिप्त है तथा कौन से मूल यह निर्णय कर पाना यद्यपि कठिन काय है तथापि समग्र 'बालकाण्ड' को प्रक्षिप्त मानना उचित नहीं है क्योकि इस काण्ड मे भी कुछ स्थल ऐसे हैं जिनका सबध मूल कथा से है। 'अयोध्या काण्ड' मे 'युद्ध-काण्ड' तक भी कुछ स्थल प्रक्षिप्त प्रतीत होते है। 'उत्तर-काण्ड' तो प्रक्षिप्त है ही।

'रामायण' मे वेद के लिए वेद के अतिरिक्त ब्रह्म, श्रुति, अध्याय तथा स्वाध्याय शब्दो का प्रयोग हुआ है। जहा ऋषियो एव मनुष्यो के घरो मे वेद ध्वनि गूजती थी, वहा राक्षसो के घरो मे भी वेद मन्त्रो का उच्चारण होता था। यहा वेदो को सत्य तथा अक्षय्य माना गया है। जो पुरुष वेद धर्म की मर्यादा का उल्लघन करके पापाचरण करता है उसे सज्जनो मे मान नहीं मिलता।[4] सत्यपालन तथा

---

1 महा०, आदिपर्व 1 267 इतिहासपुराणाभ्या वेद समुपबृहयत्।

2 रा० 1 4 6 वेदोपबृहणार्थाय तावग्राहयत्प्रभु।

3 गगाधर मिश्र, वैदिक एव वैदोत्तर भारतीय-सस्कृति पृ० 213

4 रा० 2 101 3 निर्मर्यादस्तु पुरुष पापाचारसमन्वित।
मान लभते सत्सु भिन्नचारित्रदर्शन॥

भूता पर दया करना ही राजाओ का आचरण है। राजा का राज्य सत्य पर ही अधिष्ठित है। सारा ससार सत्य के आधार पर ही प्रतिष्ठित है।[1]

'रामायण मे हनुमान ऋक, यजु तथा साम के ज्ञाता हैं और व्याकरण का भी पूर्ण ज्ञान रखते हैं। राम और लक्ष्मण हनुमान के विद्वान होने का ज्ञान उनके शुद्ध उच्चारण से ही कर लेते हैं। यद्यपि यहा किसी एक ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद का नाम नही मिलता तथापि पात्रो के यज्ञज्ञान तथा आध्यात्मिक ज्ञान से इनकी सत्ता का आभास मिलता है। 'रामायण म प्रयुक्त 'षडग' शब्द स वद के छ अगो की सत्ता का ज्ञान होता है। कुश तथा लव द्वारा गीत रामायण को सुनाने के लिए पौराणिक, शब्दवेत्ता, स्वरज्ञ, लक्षणज्ञ, सगीतज्ञ, नगम, पादाक्षर समासज्ञ छन्दोग, ज्योतिर्विद क्रिया कल्पन, वेदवेत्ता, चित्रज्ञाता, सूत्रज्ञाता तथा नृत्यगीतादि के ज्ञाता विद्वानो को बुलाया गया। इसमे वेद तथा वेदागो के सभी पक्ष आ जाते हैं।[2] 'रामायण म तैत्तिरीय, कठ तथा कलाप शाखाओ के आचार्यों का उल्लेख हुआ है।[3]

'रामायण मे देवताओ के चरित्र भी परिवर्तित हुए है। वेदो म इन्द्र बहुत बलवान देव हैं। 'रामायण म इन्द्र का चरित्र इस प्रकार का नही है। यहा वे देवताओ के नायक अवश्य हैं परन्तु राक्षसो स त्रस्त हैं। इन्द्र बार-बार ब्रह्मा अथवा विष्णु के पास सहायता मागने क लिए उपस्थित होना पडता है। यहा ब्रह्मा विष्णु तथा शिव अधिक बलवान तथा शक्तिमान हैं। देव मनुष्य, असुर, राक्षस गन्धर्वादि सभी इनकी आराधना करत हैं। इन्ही तीन देवो म से किसी एक से वर प्राप्त करके राक्षस देवो तथा मनुष्यो को त्रस्त करत हैं। वर देने म ब्रह्मा का प्रथम स्थान है। इनका स्थान वृद्ध पितामह के समान है। ब्रह्मा वरदान के कारण ही सम्पूर्ण रामायण की कथा चलती है। उदाहरण के लिए रावण न ब्रह्मा स अवध्य होने का वर प्राप्त करके देवो मनुष्यो और राक्षसो म प्रथम स्थान प्राप्त कर लिया था, देवो पर विजय प्राप्त कर ली थी। देवगण भी उसी क अधीन होकर काय करत थ। रावण न कुबेर से उसकी नगरी तथा पुष्पक विमान का अपहरण किया। कुबेर नगरी बाद म लका के नाम स प्रसिद्ध हुई। इसे मनुष्यो स अवध्य होने का वर नही मिला था। देवताओ के अनुरोध पर मनुष्य राम क रूप मे विष्णु ही रावण के वध के लिए पृथिवी पर अवतीर्ण होते हैं। विष्णु यहा सर्वाधिक शक्तिशाली हैं। इनकी व्याप्ति सर्वत्र है। पुराणो म विष्णु का स्वरूप सर्वाधिक

---

1 तत्रैव 2 101 10 सत्यमेवानृशस च राजवृत्त सनातनम्।
तस्मात्सत्यात्मक राज्य सत्य लोक प्रतिष्ठित ।

2 रा० 7 94 5 9 (नि० सा०)

3 तत्रैव 2 22 15 18 (मै० वि०)

आश्रम म भरत और उसकी सेनाओ का अभूतपूर्व सत्कार करते हैं। भृगु विष्णु को अपनी पत्नी की हत्या से बाधित होकर पृथिवी पर जन्म ग्रहण करन का शाप देत हैं। चारो वेदो क ज्ञाता वसिष्ठ कुल-पुरोहित हैं। विश्वामित्र क्षत्रिय रह हैं जो तप करके ब्रह्मर्षि पद प्राप्त करते हैं। विश्वामित्र के वंश का यहा पूर्ण विवरण प्राप्त होता है। विश्वामित्र यज्ञवलि के लिए आनीत शुन शेप की रक्षा करत हैं। ऋषियो मे सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान वसिष्ठ का प्राप्त है। य अधिकतर राजाओ के यज्ञ करत हैं। ऋत्विक ऋषि ब्राह्मण ही होना चाहिए क्षत्रिय नहीं। क्षत्रिय ऋषि द्वारा प्रदत्त हवि को देव ग्रहण नही करत हैं।

'रामायण' म कतिपय वदिक-आख्यान आए हैं। अधिकाश आख्यान परिवर्तित एव परिवर्धित हैं। इनमे इन्द्र तथा वत्र, वसिष्ठ-विश्वामित्र शुन शेप' पुरूरवा उवशी' तथा सष्टयुत्पत्ति सम्बन्धी आख्यान आत हैं। कुछ एस आख्यान भी हैं वेदो म जिनका सकेत मात्र उपलब्ध होता है परन्तु 'रामायण' म विस्तत रूप मे उपलब्ध होत हैं। अगस्त्यवसिष्ठोत्पत्ति', गौतम अहल्या तथा इन्द्र' और इला इस श्रेणी क आख्यान हैं। रामायण' म इन आख्याना का उपब हण हुआ है। इसक साथ इनका वदिक स्वरूप भी बना हुआ है।

रामायण' म श्रौत एव गह्य दोना प्रकार के याग वर्णित हैं। श्रौत-यागा म सब प्रमुख अश्वमेध है। यह याग कवल चक्रवर्ती सम्राट बनन के अभिलाषी राजाओ द्वारा ही नही अपितु पुत्र प्राप्ति पुरुषत्व एव स्वर्ग प्राप्ति की अभिलाषा वाले राजाओ द्वारा भी किया जाता था। यह याग विष्णु अथवा शिव का प्रसन्न करने के लिए इन्ही देवों को उद्देश्य करके किया जाता था। इन्द्र न तजप्राप्ति क लिए यह याग विष्णु को उद्देश्य करक किया था। जबकि इल ने पुरुषत्व प्राप्ति क लिए यह याग शिव को उद्देश्य करके किया था। इसके बाद राजसूय का स्थान आता है परन्तु रामायण क समय इसका महत्त्व कम हो गया था। इस यज्ञ का केवल दशरथ ही कर सके थे। राम इस याग का विचार इसम होन वाले विनाश का दखत हुए त्याग देत हैं। अयोध्या के कुछ ब्राह्मणो द्वारा वाजपय-यज्ञ करने का सकेत रामायण म मिलता है। नित्य कर्मों मे अग्निहोत्र प्रमुख है। इस ऋषियो क अतिरिक्त सामान्य गहस्थ भी करत थे। अमावस्या एव पूर्णिमा के दिन किया जाने वाला दशपूर्णमास भी रामायण के समय प्रचलित था।

रामायण म बहुत स गह्य-यागा तथा कृत्या का विधान भी मिलता है। सस्कारा म जातकम नामकरण उपनयन समावतन विवाह तथा अन्त्येष्टि प्रमुख हैं। अतिथि सत्कार क समय दिया जाने वाला मधुपक भी उस समय प्रचलित था। जन्म क बारह दिना के पश्चात ब्राह्मणो को धन देत हुए नामकरण किया जाता था। विवाह वदिक मन्त्रा स सम्पन्न किया जाता था। उपनयन तथा समावतन सस्कारो का विस्तत वणन नहीं है। इनका अनुष्ठान ब्रह्मचर्याश्रम म **होता था।**

मृत्यु के पश्चात् उदक-कर्म तथा पिण्ड दान की प्रथा थी। लोग प्रथम गृह प्रवेश के समय वास्तु शान्ति करते थे। दैनिक-चर्या में स्नान के बाद सन्ध्या का स्थान था। पूर्व-सन्ध्या तथा उत्तर-सन्ध्या के पश्चात् सूर्यार्घ्य देने की प्रथा थी। विवाह के समय आहिताग्नि की स्थापना की जाती थी, जिसमें यज्ञों का विधान किया जाता था।

'रामायण' में बहुत से स्थलों पर ऐसे प्रयोग मिलते हैं जो पाणिनि की दृष्टि से ठीक नहीं हैं। अनेक स्थलों पर संधि की स्थिति उत्पन्न होने पर भी संधि नहीं की गई। नामगत प्रयोगों में बहुत से स्थलों पर अव्यवस्था है। अजन्त शब्दों के रूप हलन्त के समान तथा हलन्त रूप अजन्त के समान बने हैं। कृदन्त रूपों में अव्यवस्था मिलती है। कतिपय स्थलों पर उपसर्ग रहित धातुओं में ल्यप् तथा उपसर्ग-सहित धातुओं में क्त्वारूप मिलते हैं। विशेषण तथा विशेष्य में लिंग और वचन समान होते हैं किंतु रामायण में बहुत से स्थलों पर ऐसा नहीं किया गया है। आत्मनेपदी धातुएं परस्मैपद में तथा परस्मैपदी धातुएं आत्मनेपद में प्रयुक्त हैं। इसी प्रकार अनिट तथा सेट धातु भी अव्यवस्थित हैं। लङ्, लुङ तथा लृङ् लकारों में अट तथा आट आगमों से रहित रूप मिलते हैं। 'रामायण' में उपसर्ग धातुओं से अलग प्रयोग नहीं किए गए हैं ऐसे निपात भी प्राप्त नहीं होते जो केवल वेद में ही प्रयुक्त होते थे। ये आर्ष प्रयोग पाणिनि से रामायण के पूर्ववर्तित्व के संकेतक हैं। रामायण के समय संस्कृत व्यवहार की भाषा थी, अतः प्रयोगों की अनेकरूपता स्वाभाविक है। पाणिनि ने इसे व्यवस्थित कर दिया, इसलिए पाणिनि के पश्चात बनने वाले काव्यों में आर्ष प्रयोग नहीं मिलते।

इस प्रकार रामायण में वेदों का प्रभाव लक्षित होता है। इसके बाद महाभारत तथा पुराणों में भी वैदिक-सामग्री प्राप्त होती है। इतिहास-पुराणों के माध्यम से वेद विद्या का उपबृंहण करना चाहिए—इस मान्यता की पूर्ण परीक्षा होनी शेष है।

सहायक ग्रथ-सूची

1 सस्कृत ग्रथ सूची

अग्निपुराण	आनन्दाश्रम-सस्कृत-ग्रन्थावली, पूना, 1957
अथर्ववेद (शौनक-सहिता)	स० विश्वबन्धु, वदिक शोध-सस्थान होशियारपुर, स० 2028
अष्टाध्यायी (पाणिनि)	रामलाल कपूर ट्रस्ट सोनीपत स० 2034
अभिज्ञान शाकुन्तल (कालिदास)	चौखम्बा सस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1975
आपस्तम्ब गृह्य-सूत्र	चौखम्बा सस्कृत सीरीज वाराणसी, 1971
आपस्तम्ब धर्म-सूत्र	स० जी० बूहलर, बम्बई 1871
आपस्तम्ब-श्रौत-सूत्र	स० आर० गर्बे, भाग 1-3, कलकत्ता, 1882 1903
आश्वलायन गृह्य सूत्र	आनन्दाश्रम-सस्कृत ग्रन्थावली पूना 1937
आश्वलायन श्रौत-सूत्र	आनन्दाश्रम-सस्कृत-ग्रन्थावली पूना 1977
आर्षानुक्रमणी	मित्रसभा बिब्लियोथेका इण्डिका, कलकत्ता, 1892
ईशादिदशोपनिषद	शकर भाष्य सहित, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1978
उपनिषत्सग्रह	स० जगदीशलाल, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 1980
ऋग्वेद	स० काशीकर एव सोनटक्के, वदिकशोधमण्डल पूना 1933 51
ऋग्वेद प्रातिशाख्य (शौनक)	वर्गद्वयवृत्ति एव उव्वटकृत टीका-सहित स० मगलदेव शास्त्री, इलाहाबाद 1931
ऋग्वेद भाष्य भूमिका (सायण)	हरिदत्त शास्त्रीकृत हिन्दी टीकासहित, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1972
ऋक्सर्वानुक्रमणी (कात्यायन)	षड्गुरुशिष्यकृत वेदार्थदीपिका-सहित स० मक्डानल आक्सफोर्ड, लन्दन 1886 स० उमेशचन्द्र शर्मा, विवेक प्रकाशन अलीगढ़, 1977
एतरेयारण्यक	सायणभाष्य-सहित आनन्दाश्रम-सस्कृत-ग्रन्थावली, पूना, 1889

ऐतरेयोपनिषद्	शांकरभाष्य-सहित, आनन्दाश्रम-संस्कृत ग्रन्थावली पूना, 1980
ऐतरेय-ब्राह्मण	सायणभाष्य सहित आनन्दाश्रम-संस्कृत ग्रन्थावली पूना, 1979
कठोपनिषद्	शांकरभाष्य-सहित, गीता प्रेस गोरखपुर सं० 2001
काठक गृह्य-सूत्र	देवपालभाष्य सहित, कैलेन्ड लाहौर, 1925
काठक-संहिता	सं० श्री पाद दामोदर सातवलेकर स्वाध्यायमण्डल पारडी सूरत 1957
काण्व-संहिता	सं० रत्नगोपाल भट्ट, वाराणसी, सं० 1965
कात्यायन श्रौत सूत्र	कर्कभाष्य सहित, सं० ए० वेबर चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1972
	सं० विद्याधरशर्मा भाग 1 2 चौखम्बा वाराणसी, 1933
काव्य प्रकाश (मम्मट)	वामनाचार्यकृत 'बालबोधिनी सहित सं० रघुनाथ दामोदर करमरकर, प्राच्य विद्या संशोधन संस्थान पूना 1950
कामसूत्र (वात्स्यायन)	सं० दुर्गाप्रसाद, निर्णय सागर प्रेस बम्बई, 1891
काशिका-वृत्ति	भाग 1 6 तारा पब्लिकेशन, वाराणसी 1967
किरातार्जुनीय (भारवि)	सं० के० पी० परब, बम्बई 1907
कूर्मपुराण	सं० नीलमणि उपाध्याय, कलकत्ता, 1890
कोदण्डमण्डन	सं० तर्क पञ्चानन, वसुमती साहित्य मन्दिर, कलकत्ता
कौशिक-सूत्र	सं० एम० ब्लूमफील्ड मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, 1972
क्षीरतरंगिणी	रामलाल कपूर ट्रस्ट सोनीपत हरियाणा
गरुडपुराण	सं० रामशंकर भट्टाचार्य, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1964
गोपथ ब्राह्मण	सं० गास्ट्रा लीडन, 1919
गौतम धर्म-सूत्र	मस्करीभाष्य सहित सं० श्री निवासाचार्य, मसूर 1987
चरण व्यूह (शौनक)	महिदासकृत टीका सहित, चौखम्बा संस्कृत

	सीरीज, वाराणसी, 1938
छान्दोग्योपनिषद्	नित्यानन्दकृत मिताक्षरा-सहित, आनन्दाश्रम-संस्कृत-ग्रंथावली, पूना 1915
जैमिनीयोपनिषद्ब्राह्मण	सं० रघुवीर, नागपुर 1950
जैमिनीय मीमांसा-सूत्र	सं० केवलानन्द सरस्वती, सतारा, 1948
तन्त्रवार्तिक (कुमारिल)	चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी 1890
ताण्ड्य महाब्राह्मण	सायणभाष्य-सहित, सं० ए० चिन्नस्वामी शास्त्री, काशी-ग्रन्थमाला वाराणसी 1938
तैत्तिरीयारण्यक	सायणभाष्य-सहित, आनन्दाश्रम-संस्कृत ग्रन्थावली, पूना, 1981
तैत्तिरीयोपनिषद्	शांकरभाष्य-सहित, आनन्दाश्रम-संस्कृत-ग्रन्थावली पूना, 1977
तैत्तिरीय-ब्राह्मण	सायणभाष्य-सहित, भाग 1-2, आनन्दाश्रम संस्कृत-ग्रन्थावली पूना, 1934 1938
तैत्तिरीय-संहिता	सायणभाष्य-सहित, भाग 1-2, आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली, पूना, 1978
देवीभागवतपुराण	सं० रामतेज पाण्डेय, पण्डित पुस्तकालय काशी 1976
ध्वन्यालोक (आनन्दवर्धन)	सं० रामसागर त्रिपाठी, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 1973
नरसिंहपुराण	कल्याण, अग्निपुराण-गर्गसंहिता-नरसिंहपुराण वर्ष 65, अंक-1, गीता प्रेस, गोरखपुर
नाट्य शास्त्र (भरत)	सं० बाबूलाल शुक्ल चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी, सं० 2029
निघण्टु	देवराजयज्वकृत-टीका-सहित, गुरु-ग्रन्थमाला, कलकत्ता 1882
निरुक्त (यास्क)	दुर्गवृत्ति-सहित आनन्दाश्रम-संस्कृत ग्रन्थावली, पूना 1921 26
निरुक्त समुच्चय (वररुचि)	सं० युधिष्ठिर मीमांसक प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, अजमेर सं० 2022
न्यायमञ्जरी (जयन्तभट)	विजय नगर ग्रन्थमाला, वाराणसी 1930
पञ्चविंश-ब्राह्मण	बिब्लियोथेका इण्डिका कलकत्ता 1931
पद्मपुराण	आनन्दाश्रम-संस्कृत-ग्रन्थावली पूना 1875
पारस्कर गृह्य-सूत्र	हरिहरभाष्य सहित, चौखम्बा अमरभारती

	प्रकाशन वाराणसी, 1980
पाणिनि शिक्षा	स० मनमोहन घाष, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता
प्रस्थानभेद (मधुसूदन)	चौखम्बा सस्कृत सीरीज वाराणसी
ब्रह्मपुराण	आनन्दाश्रम सस्कृत ग्रन्थावली, पूना, 1895
ब्रह्माण्डपुराण	स० मधुसूदन सरस्वती वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई, 1906
बृहज्जातक (वराहमिहिर)	तेजकुमार प्रस, लखनऊ 1972
बृहदारण्यकोपनिषद्	शाकरभाष्य-सहित गीता प्रस गोरखपुर स० 2012
बृहद्देवता (शौनक)	स० मैक्डानल, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1965
	स० रामकुमारराय चौखम्बा सस्कृत सस्थान, वाराणसी 1983
बौधायन-गृह्य-सूत्र	स० आर० शर्मा, मसूर 1920
बौधायन धम सूत्र	चौखम्बा सस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1981
भगवद्गीता	मधुसूदनी-व्याख्यासहित, चौखम्बा सस्कृत सीरीज वाराणसी 1962
भागवतपुराण	श्रीधरी टीका सहित, स० रामतेज पाण्डेय, पण्डित पुस्तकालय, वाराणसी स० 2013
मत्स्यपुराण	आनन्दाश्रम-सस्कृत-ग्रन्थावली, पूना, 1907
मनुस्मृति	निणय सागर प्रेस बम्बई 1887
महाभारत	स० वी० एस० सुकथणकर एव एस० के० बल्वलकर, भाण्डारकर प्राच्य विद्या सशाधन सस्थान पूना, 1925
महाभाष्य (पतञ्जलि)	प्रदीपाद्योत-व्याख्यासहित चौखम्बा सस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1954
मार्कण्डेय पुराण	एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता, 1862
मुण्डकोपनिषद	शाकरभाष्यसहित गीता प्रेस, गोरखपुर, स० 2001
मुहूर्त चिन्तामणि	सुधा हिन्दी टीकासहित, मास्टर बुक डिपो वाराणसी, 1969
मैत्रायणी सहिता	आनन्दाश्रम-सस्कृत-ग्रन्थावली, पूना, 1942

यजुर्वेद — उव्वटभाष्यसहित, निणय सागर प्रेस, बम्बई, 1929

यजुर्वेदभाष्यविवरण (दयानन्द सरस्वती) — स० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु रामलाल कपूर ट्रस्ट, सोनीपत, 1971

याज्ञवल्क्य शिक्षा — श्री प्रतापसिंह ट्रस्ट माडल टाउन, करनाल, 1967

याज्ञवल्क्य-स्मृति — निणय सागर प्रेस, बम्बई, 1909

योगवासिष्ठ — भाग 1 2 अच्युत ग्रथमाला, काशी, स० 2004 2006

रामायण (वाल्मीकि) — स० पी० एल० वद्य आदि, भाग 1-7, प्राच्य विद्या मन्दिर बडौदा, 1960 1975

औदीच्य सस्करण

तिलकटीकासहित, भाग 1 2 स० वासुदेव लक्ष्मण शास्त्री, निणय सागर प्रेस, बम्बई 1937

इन्डालाजिकल बुक हाउस, वाराणसी, 1983

तिलकरामायणशिरोमणिभूषण व्याख्यात्रयोपेत, भाग 1 7

गुजराती प्रिंटिंग प्रस बम्बई 1912 1920

तारा पब्लिकेशन दिल्ली, 1983

माधवयोगीकृत अमतकतकव्याख्यासहित, भाग 1 5 स० के० एल० वरदाचाय मसूर विश्व विद्यालय, मैसूर, 1965 1975

पश्चिमोत्तरीय-सस्करण

स० भगवद्दत्त एव रामलभ्य, भाग 1 7, श्रीमद्दयानन्द महाविद्यालय, सस्कृत ग्रथमाला लाहोर, 1931 1947

श्रीपाद् दामोदर सातवलेकरकृत हिन्दी टीका साहित्य भाग 1 4स्वाध्याय मण्डल पारडी, सूरत 1958

चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्माकृत हिन्दी टीका सहित भाग 1 10, इलाहाबाद 1958

गीता प्रेस, गोरखपुर, स 2040

लघुशब्देन्दुशेखर (नागेशभट्ट)	सं० गुरुप्रसाद शास्त्री, भार्गव पुस्तकालय वाराणसी, 1936
लाट्यायन श्रौतसूत्र	सं० मुकुन्द झा काशी संस्कृत ग्रंथावली वाराणसी 1932
लिंग पुराण	लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1846
लौगाक्षि-स्मृति	गुरुमण्डल ग्रन्थमाला, कलकत्ता
वराह-पुराण	एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता 1892
वसिष्ठ धर्म-सूत्र	विवरणटीकासहित, चौखम्बा संस्कृत, सीरीज वाराणसी 1972
वाक्य-पदीय (भर्तृहरि)	सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी, 1977
वाजसनेयी संहिता	सं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर स्वाध्याय मण्डल पारडी सूरत सं० 2003
वायु-पुराण	आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रंथावली, पूना 1905
विष्णु-पुराण	निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 1889
वेदान्त सूत्र (बादरायण)	भास्करभाष्य सहित सं० विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्विवेदी, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी 1964
शतपथ-ब्राह्मण	सं० ए० वेबर, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1964
शांखायन-श्रौत-सूत्र	सं० हिलेब्राण्ट, बिब्लियोथेका इण्डिका कलकत्ता, 1888
शारीरकभाष्य (शंकर)	निर्णय सागर प्रेस, बम्बई
शिव-पुराण	वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई 1982
श्लोकवार्तिक (कुमारिल)	सं० द्वारिका प्रसाद, तारा पब्लिकेशन वाराणसी, 1978
श्वेताश्वतरोपनिषद	सं० तुलसीराम शर्मा ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, 1976
षड्विंश-ब्राह्मण	सं० बी० आर० शर्मा केंद्रीय संस्कृत विद्यापीठ, तिरुपति 1967
सर्वदर्शनसंग्रह (माधव)	सं० के० साम्बशिव, त्रिवेन्द्रम् 1938
सिद्धान्त-कौमुदी (भट्टोजिदीक्षित)	बालमनोरमा एवं तत्त्वबोधिनी टीका सहित, भाग 1 4, सं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1979

सुश्रुत संहिता — म० नारायणदास आचाय, चौखम्वा ओरियन्टालिया वाराणसी, 1980

हरिवंश-पुराण — स० पन्नालाल जैन, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, 1944

2 आलोचनात्मक ग्रन्थ सूची

क संस्कृत तथा हिंदी मे उपनिबद्ध ग्रन्थ

उपाध्याय, बलदेव — भारतीय दशन चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी, 1978

वदिक साहित्य और संस्कृति, शारदा सस्थान, वाराणसी, 1980

काणे पी० वी० — धमशास्त्र का इतिहास, अनु०, अजुन चौबे कश्यप, भाग 1 3, हिन्दी समिति सूचना विभाग लखनऊ 1966

गरोला, वाचस्पति — सस्कृत साहित्य का सक्षिप्त इतिहास चौखम्वा विद्याभवन वाराणसी, 1967

चतुर्वेदी गिरिधरशर्मा — पुराण-परिशीलन विहार राष्ट्रभाषा परिषद पटना, 1970

वदिक विज्ञान और भारतीय सस्कृति विहार राष्ट्रभाषा परिषद पटना, 1972

चतन्य, कृष्ण — सस्कृत साहित्य का नवीन इतिहास अनु० विनय कुमार राय चौखम्वा विद्याभवन वाराणसी 1965

चौबे व्रजविहारी — वदिक वाङ मय एक अनुशीलन कात्यायन वदिक साहित्य प्रकाशन, होशियारपुर 1972

त्रिपाठी गया चरण — वदिक देवता उद्भव और विकास, भाग-1, भारतीय विद्या प्रकाशन दिल्ली, 1983

त्रिपाठी ब्रह्मानन्द — व्याकरणशास्त्रेतिहास चौखम्वा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी 1983

द्विवेदी पारसनाथ — वदिक साहित्य का इतिहास चौखम्वा सुर भारती प्रकाशन, वाराणसी 1983

पाण्डेय, सत्यनारायण — सस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास साहित्य भण्डार मेरठ, 1965

अध्ययन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1965

भट्टाचार्य, सत्यव्रत सामश्रमी — ऐतरेयालोचनम एशियाटिक सोसाइटी, सत्य प्रेस पार्क स्ट्रीट, कलकत्ता, 1906

निरुक्तालोचनम, एशियाटिक सोसाइटी, सत्य प्रेस पार्क स्ट्रीट, कलकत्ता 1906

त्रयीपरिचय, अनु०, ओमप्रकाश पाण्डेय हिंदी समिति ग्रन्थमाला लखनऊ, स० 2031

मिश्र, गंगाधर — वैदिक एवं वेदोत्तर भारतीय संस्कृति चौखम्बा सुर भारती प्रकाशन वाराणसी, 1981

मीमांसक, युधिष्ठिर — वैदिक छन्दोमीमांसा रामलाल कपूर ट्रस्ट, सोनीपत, 1979

वैदिक सिद्धान्त मीमांसा, बहालगढ सोनीपत, स० 2033

मक्डानल, ए० ए० — वैदिक देवशास्त्र, अनु० सूर्यकान्त मेहरचन्द लक्ष्मणदास, दिल्ली, 1982

वैदिक व्याकरण अनु० सत्यव्रत, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 1971

राधाकृष्णन, एस० — भारतीय दर्शन भाग 1 2, अनु० नन्दकिशोर गोभिल, राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली 1969

वर्मा, सत्यकाम — संस्कृत व्याकरण का उद्भव तथा विकास, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली 1962

विण्टरनित्स, एम० — भारतीय साहित्य, भाग 1 2, अनु० रामचन्द्र पाण्डेय, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1962

व्यास, शान्तिकुमार नानूराम — रामायण कालीन समाज, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, 1958

रामायणकालीन संस्कृति, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, 1958

शर्मा, मुन्शीराम — वैदिक निबन्धावली, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी 1963

शास्त्री कपिलदेव — वैदिक ऋषि एक परिशीलन, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय कुरुक्षेत्र 1978

शास्त्री, मल्लादिसूर्यनारायण — संस्कृतकविजीवितम् संस्कृत परिषद उस्मानिया

विश्वविद्यालय हैदराबाद, 1960

शास्त्री, शिवनारायण — निरुक्त मीमासा, इण्डोलाजिकल बुक हाउस, दिल्ली, स० 2026

होरा, राजवंशसहाय — सस्कृत साहित्य का बहृद इतिहास, चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन वाराणसी 1978

2 अंग्रेजी ग्रन्थ सूची

Dass, Naveen Chandra — A note on the Antiquity of the Valmiki Ramayana Calcutta 1899

Gore, N A — A Bibliography of the Ramayana Poona 1943

Hariyappa, H L — Regvedic Legends through the Ages, bulletin of the deccan Collage Research Institute Poona, 1951

Hillaberant, Alferd — Vedic Mythology, Vol 1 2 English Trans Shreeramula Rajesh wara Sharma, Moti Lal Banarsi Dass Delhi, 1981

Jacabi H — Das Ramayana, English Trans by S N Goshal, oriental Intitute Baroda, 1960

Mecdonell, A A — A History of Sanskrit litrature, London 1905

Rahurkar V G — The Seers of the Regveda University of Poona, 1964

Singh K P — A Critical study of the Katyayan srauti—sutra Banares Hindu University Varansi 1969

Sharma, Ranashraya — A Socio Political study of Valmiki Ramayana Moti Lal Banarsi Dass, Delhi 1971

Sharma, Satya Vrata, — The Ramayana A Linguistic study, Munshi Ram Manohar Lal Delhi, 1964

Sharma, Umesh Chandra, — The Vishvamitras and vasisthas

Vivek Publication Aligarh 1975

Vaidya C V — The Riddle of the Ramayan Mehar Chand Lachhman Dass, Delhi, 1972

Weber, A — A History of Indian Litrature Chowkhamba sanskrit studies Vol 13 Varanasi 1961

Winternitz, M — A History of Indian Litrature, Vol 1 University of Calcutta Calcutta, 1927

3 कोश

अमरसिंह — अमरकोश चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी, 1970

आप्टे वी० एस० — द स्टूडेण्ट्स संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी मोती लाल बनारसीदास दिल्ली, 1963

भट्टाचार्य, तारानाथ — वाचस्पत्यम् भाग 1 2, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 1962

मैक्डानल, ए० ए०, तथा कीथ ए० बी० — वैदिक इण्डेक्स अनु०, रामकुमार राय, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी 1962

शर्मा, राणाप्रसाद — पौराणिक कोश वाराणसी ज्ञान मण्डल लिमिटेड सं० 2028

सूर्यकान्त — वैदिक कोश, बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी, वाराणसी 1963

'आचार्य पाणिनि पर पूर्ववर्ती वैयाकरणों का दाय' ऋतधरा श्री मदनमोहन मालवीय, शिक्षा संस्थान भाटपारनी देवरिया भाग 6 7, 1972

'वेद-व्याख्या-पद्धति' संस्कृत स्मारिका, भाषा एवं संस्कृति विभाग, हिमाचल प्रदेश, शिमला, 1979

वैदिक विष्णु कल्याण श्री विष्णु अंक, वर्ष 47, अंक 1,

श्री रामचन्द्र का अश्वमेध यज्ञ और उसका महत्व कल्याण रामायणांक, वर्ष 5, अंक 1

□□

डा० सतीश कुमार शर्मा 'आंगिरस'

जन्म — 11 सितंबर '54 को ग्राम बरोग, निकट हवाई अड्डा शिमला, (हि०प्र०) में।

निवास स्थान — ग्राम कल्याण, डाकघर चियोग, तहसील ठियोग जिला शिमला (हि०प्र०) 171209

जन्म — 11 9 54 को ब्राह्मण परिवार में जन्म।

शिक्षा — आचार्य (साहित्य तथा वेद), एम० ए० (संस्कृत) विश्वविद्यालय में प्रथम स्वर्ण-पदक प्राप्त, एम० फिल (संस्कृत) विश्व विद्यालय में द्वितीय स्थान, पी-एच० डी० (हि०प्र० विश्वविद्यालय शिमला)।

प्रकाशित कृतियां —
1 रामायणगत वैदिक सामग्री एक समालोचनात्मक अध्ययन
2 कात्यायनशुल्बसूत्र (सुबोध संस्कृत व हिन्दी व्याख्या) विस्तृत भूमिका आकृति सहित रेखागणितीय विवेचन

अप्रकाशित रचनाएं —
1 आदिकवि और रामायण
2 वैदिक साहित्य से सम्बद्ध विवरण
3 कालपाश (संस्कृत काव्य)

इसके अतिरिक्त विभिन्न पत्रिकाओं में बीस से अधिक शोध-पत्रों का प्रकाशन।

विशेष क्षेत्र — वैदिक-साहित्य, लौकिक-साहित्य, पुराणेतिहास काव्यशास्त्र और ज्योतिष।